हिमज्योति

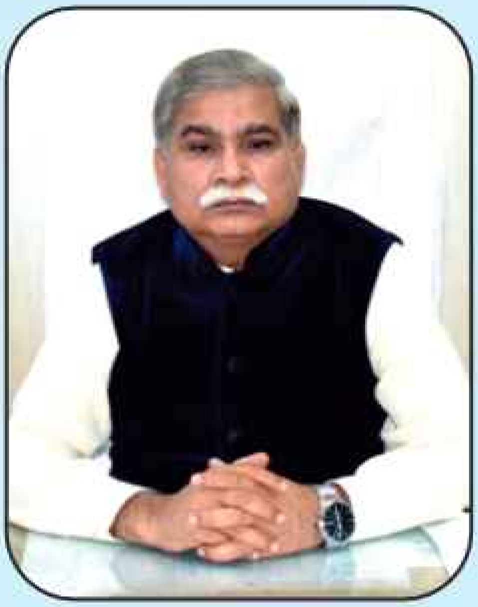

शुभकामनाओं सहित

डॉ. प्रमोद कुमार पाण्डेय

निदेशक

भाकृअनुप-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय

भीमताल-263 136, जिला-नैनीताल (उत्तराखण्ड)

हिमज्योति

भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय

भीमताल-243 136, नैनीताल (उत्तराखंड)

भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय

सम्पादन एवं अनुवाद
अमित कुमार जोशी

आवरण पृष्ठ सज्जा
रविन्द्र पोस्ती

टंकण
ललिता आर्या

संकल्पना, मार्गदर्शन एवं प्रकाशन
डा. प्रमोद कुमार पाण्डेय
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल-263 136, जिला-नैनीताल (उत्तराखण्ड)

रूपरेखा एवं मुद्रण
बाइट्स एण्ड बाइट्स, बरेली
मो. 94127 38797; Email: sandybly@gmail.com

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

ICAR

प्रशस्ति-पत्र

गणेश शंकर विद्यार्थी हिन्दी पत्रिका पुरस्कार 2021

वर्ष 2021 के दौरान 'क' और 'ख' क्षेत्र में स्थित संस्थानों में भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल, नैनीताल द्वारा प्रकाशित हिन्दी पत्रिका ''हिमज्योति'' को द्वितीय पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है।

दिनांक: 16 जुलाई, 2022
नई दिल्ली

(संजय गर्ग)
अपर सचिव (डेयर) एवं सचिव
भा.कृ.अनु.प.

(त्रिलोचन महापात्र)
सचिव (डेयर) एवं महानिदेशक
भा.कृ.अनु.प.

भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
ICAR-DIRECTORATE OF COLDWATER FISHERIES RESEARCH
अनुसंधान भवन, औद्योगिक क्षेत्र, भीमताल-263 136, नैनीताल (उत्तराखंड)
Anusandhan Bhawan, Industrial Area, Bhimtal-263 136, Nainital (Uttarakhand)
An ISO 9001: 2008 Certified

निदेशक की कलम से......

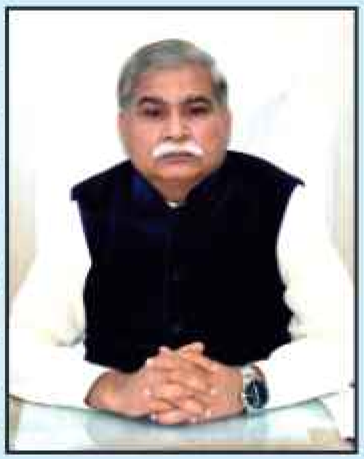

हिन्दी हमारी राजभाषा है। अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी हमारे देश में अपेक्षाकृत अधिक बोली और समझी जाती है। अत: इसमें दो राय नहीं कि मात्स्यिकी विज्ञान की उपलब्धियों को जनमानस तक पहुँचाने तथा इसे प्रचलित करने के लिए मात्स्यिकी अनुसंधान एवं विस्तार कार्यक्रमों में हिन्दी माध्यम की अत्यन्त आवश्यकता है। भाकृअनुप-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय भीमताल, मत्स्य पालन (ठंडे पानी में) का एक राष्ट्रीय संगठन है, जो देश के परिवर्तनशील परिवेश में मत्स्य पालन अनुसंधान एवं प्रसार को नया रूप देने में लगा हुआ है। अत: मात्स्यिकी के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त इस संस्थान का यह दायित्व हो जाता है कि यह मत्स्य एवं मात्स्यिकी विज्ञान से सम्बन्धित विषय पर एक हिन्दी पत्रिका उपलब्ध कराने की दिशा में सार्थक प्रयत्न करे।

संस्थान में इस वर्ष राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने की दिशा में विशेष प्रयास किये गये हैं, जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र में हिन्दी के प्रयोग की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। पत्रिका में निहित पाठ्य सामग्री को देखकर यह कहा जा सकता है कि कृषि एवं संबद्ध विषयों पर आधारित यह पत्रिका गागर में सागर के रूप में अपनी उपयोगिता कृषक समुदाय के लिए सिद्ध करती है। देश के हिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रगतिशील किसानों से लेकर सीमांत कृषकों तक की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही कृषि की उन्नत प्रणालियों पर आधारित वैज्ञानिकों द्वारा लिखित लेखों को पत्रिका में स्थान दिया जाता है। मुझे यह बताने में प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि आकर्षक कलेवर, साज-सज्जा तथा समय के अनुरूप विषयों का चयन दर्शाता है कि किसानों को परम्परागत खेती की मानसिकता से बाहर निकालने एवं उन्हे प्रोत्साहित करने में यह पत्रिका काफी प्रभावी भूमिका निभा रही है। भाकृअनुप-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल, के इस हिन्दी अंक में वैज्ञानिक लेख मत्स्य पालन के क्षेत्र में रूचि रखने वालों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मैं उन सभी से भविष्य में ऐसे सहयोग की कामना रखता हूँ जिससे यह अंक और अधिक उत्कृष्ट बन सकें। विगत् वर्षों में निदेशालय की इस हिमज्योति पत्रिका को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा परिषद की सर्वोत्तम हिन्दी पत्रिका के लिए गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार प्रदान किया जाना इस बात का द्योतक है कि यह पत्रिका अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सफल रही है। इसके लिए मैं निदेशालय के श्री अमित कुमार जोशी, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी (राजभाषा) जो इस पत्रिका के सम्पादक भी हैं, को धन्यवाद देता हूँ जिनकी कड़ी मेहनत एवं लगन से यह सम्भव हो सका। मैं उन सभी सहयोगियों के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस पत्रिका को सफल बनाने में अपना प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया।

शुभकामनाओं सहित।

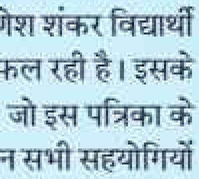

(प्रमोद कुमार पाण्डेय)
निदेशक

सम्पादकीय.......

ऐसे तो अंग्रेजी भाषा की विभिन्न पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं आदि में अलग-अलग बिखरी सामग्रियाँ उपलब्ध होती है, परंतु हिन्दी में ऐसी कोई पुस्तक नहीं है, जिसमें मत्स्य पालन के विभिन्न पहलुओं पर एक जगह वांछनीय सामग्री मिल सके और जिनसे शोधार्थियों को आवश्यक जानकारी प्राप्त हो सके। इस अभाव की पूर्ति हेतु संस्थान के वैज्ञानिकों ने कुछ सराहनीय प्रयास किये है।

यह निदेशालय एक ऐसी संस्था है जहाँ शीतजल की विभिन्न मत्स्य प्रजातियों पर अनुसंधान कार्य किये जाते हैं, साथ ही इस निदेशालय के वैज्ञानिकों के निर्देशन में विभिन्न छात्र-छात्राओं को अनुसंधान कार्य कराये जाते है। हम सभी को ज्ञात है कि कृषि वैज्ञानिकों और किसानों के बीच की दूरी को कम करने में हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस संस्थान ने अपने इस दायित्व का निर्वाह भी पूर्णरूप से किया है। इस संस्थान ने मत्स्य पालन की नई-नई तकनीकों के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दी के महत्व को आत्मसात करते हुए ज्ञान-विज्ञान के अनुसंधान एंव परिणामों के क्षेत्र में हिन्दी के प्रयोग को विशेष महत्व दिया है। संस्थान की वेबसाइट द्विभाषी रूप में सुलभ है और बड़ी संख्या में किसान इसका लाभ उठा रहे है। किसी देश की अस्मिता उसकी भाषा व संस्कृति से जुड़ी होती है। सौभाग्य से हमारा देश भाषा एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक समृद्ध राष्ट्र है। देश के अधिकांश कृषक समुदाय, अनुसंधान कर्मियों एवं प्रसार कर्मिकों से सीधे जुड़ने का माध्यम उनकी ही भाषा में प्रकाशित पत्रिकांऐ है। राजभाषा पत्रिका "हिमज्योति" का प्रकाशन ऐसे ही प्रयासों की कड़ी है। इस पत्रिका में संस्थान के वैज्ञानिकों एवं मत्स्य विशेषज्ञों द्वारा सरल भाषा में लिखे उपयोगी वैज्ञानिक जानकारी से सराबोर लेखों को शामिल किया गया है ताकि मत्स्य पालक इससे लाभान्वित हों। इस पत्रिका को रूचिपूर्ण बनाने के लिए इस अंक में वैज्ञानिक लेखों के अतिरिक्त दूसरे अन्य विषयों यथा कहानियाँ, कविताएं, संस्मरण आदि को भी जगह दी गयी है, ताकि पत्रिका पाठकों को जोड़े रखे।

(अमित कुमार जोशी)
सम्पादक

अनुक्रमणिका

मत्स्य पालन

1. मत्स्य पालन में सूक्ष्मजीवियों की भूमिका 1
पार्थदास, शिवा सी. एवं सुमंत मलिक

2. उत्तराखण्ड के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में समन्वित मत्स्य पालन 6
हेमा तिवारी एवं मालविका दास

3. हिमालयी क्षेत्र में मछली पकड़ने के उपकरण 9
आर.एस. पतियाल, बीजू सैम कमलम् एवं एम. राजेश

4. उच्च हिमालयी क्षेत्र में शीतजल मात्स्यिकी का संरक्षण एवं विकास 11
सुरेश चन्द्रा एवं अमित कुमार जोशी

5. वैश्विक पोषण सुरक्षा में मत्स्य आहार की भूमिका 13
एस. अली एवं एन.एन. पाण्डे

6. प्राकृतिक मत्स्य पालन को बढ़ावा देकर पर्वतीय क्षेत्र की अनुसूचित जाति समुदाय की लचीली आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाना 16
सुरेश चन्द्रा, परवेज़ अहमद गनी एवं रवीन्द्र पोस्ती

7. अरूणाचल प्रदेश में मत्स्य पालन व्यवसाय की संभावना 20
गिरीश चन्द्र, ए.के. त्रिपाठी, आर.सी. शाक्यवार एवं एस.एम. हुसैन

8. जल कृषि उत्पादन में न्युट्रास्युटिकल्स का उपयोग: वरदान या अभिशाप 27
शामना एन., नेहा कुरैशी एवं शिवाजी अरगड़े

9. सजावटी मत्स्य पालन में व्यापार के अवसर 29
नवीन चन्द्रा एवं मुकेश पाण्डेय

10. बदलते परिवेश में जीवन दायिनी कलसा (चाफी) नदी तन्त्र की पारिस्थितिकी तन्त्र 32
भावना गहलोत, रीनी जोशी, सुरेश चन्द्रा एवं देबाजित सर्मा

कृषि

1. मखाना संवर्द्धन (मोनो एवं पॉलीकल्चर) 37
नेहा सनवाल
2. धान में सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रबंधन 40
संतोष कुमार सिंह एवं आराधना कुमारी
3. उड़द की खेती: शाकाहारियों के लिए प्रोटीन का विकल्प 43
संजय कुमार, विद्यापति चौधरी, भारती उपाध्याय एवं आर.के. तिवारी
4. अलसी (तीसी) की खेती 47
विद्यापति चौधरी, संजय कुमार, भारती उपाध्याय एवं आर.के. तिवारी
5. गर्मी के मौसम में दूधिया मशरूम उत्पादन तकनीक 52
अंकुर त्रिपाठी, शिवम त्रिपाठी, एस.आर. सिंह, एम.के. त्रिपाठी, एम.पी. द्विवेदी, नागेन्द्र सिंह, वी.के. सिंह एवं अभिषेक कुमार सिंह
6. ग्रामीण क्षेत्रों में बकरी पालन एक लाभप्रद व्यवसाय 55
अतुल कुमार सचान, राजेश कुमार एवं अभिषेक कुमार सिंह
7. फसल प्रणाली में फसल अवशेषों का महत्व 58
विपिन कुमार, एस.एन. सुमन एवं राकेश कुमार प्रसाद
8. आधुनिक कृषि में पोषक तत्वों का महत्व 64
विपिन कुमार, शिवनाथ सुमन एवं नवनीत कुमार
9. बहुफसली खेती: विधा एक फायदे अनेक 70
शिवनाथ सुमन, विपिन कुमार, संतोष कुमार ठाकुर एवं संजय कुमार
10. समेकित पोषण प्रबंधन में हरी खाद का प्रयोग 73
शिवनाथ सुमन, विपिन कुमार, संतोष कुमार ठाकुर, संजय कुमार एवं संजय तिवारी
11. पर्वतीय क्षेत्रों में कृषिरत महिलाओं हेतु उन्नत कृषि यंत्रीकरण द्वारा अधिक कार्यक्षमता: एक समाधान 77
प्रतिभा जोशी, रेनू जेठी एवं गिरिजेश सिंह महरा
12. समेकित पोषण तत्व प्रबन्धन में जीवाणु खाद का प्रयोग 84
आर.के. पॉडे
13. कुपोषण निवारण हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में पोषण वाटिका द्वारा फल एवं सब्जियों की सामयिक उपलब्धता 88
सुधा जुकारिया एवं शशि तिवारी
14. आत्मनिर्भर भारत हेतु कृषकों में कौशल विकास: चुनौतियाँ एवं अवसर 93
गिरिजेश सिंह महरा, प्रतिभा जोशी एवं रेनू जेठी
15. कुपोषण से कैसे बचें? 100
शशि तिवारी एवं सुधा जुकारिया

16. पोषण वाटिका में अधिक उत्पादन हेतु उन्नत तकनीकें 104
रेनू जेठी, प्रतिभा जोशी एवं गिरिजेश सिंह महरा

17. बकरियों के लिए प्राकृतिक खेती द्वारा हरे चारे का उत्पादन 114
मोहम्मद आरिफ, अरविन्द कुमार, रविन्द्र कुमार, गोपाल दास एवं दिनेश कुमार शर्मा

18. विनाशकारी खरपतवार गाजर घास (पार्थेनियम): प्रभाव व नियंत्रण 118
पार्थ दास एवं अभय कुमार गिरि

19. लाभदायक व सरल व्यवसाय: बकरी पालन 123
अजय सिंह गोदारा, गुरदीप सिंह एवं प्रज्ञा भदौरिया

कविता/कहानी

1. नारी अबला-बेचारी 129
शारदा मालरा

2. सुनो क्या कहता बहता पानी 130
कृष्णा काला

3. मन्नू बाबू की शादी 131
सुभाष चंदर

अन्य

1. सूर्य मन्दिर मार्तण्ड 139
मनोज कुमार जोशी

2. नारी शक्ति: सबल नारी सुन्दर विश्व 142
शारदा मालरा

3. भारत सरकार की राजभाषा नीति: एक जानकारी 143
अमित कुमार जोशी

4. सेला पास में प्रेम और देशभक्ति की गाथा 148
अजय सिंह रावत

5. मछली चित्रित एशियाई डाक टिकट 150
रमेश सोमवंशी

6. हमारे लोकपर्व एवं वैज्ञानिक तर्क 160
हेमन्त बिष्ट

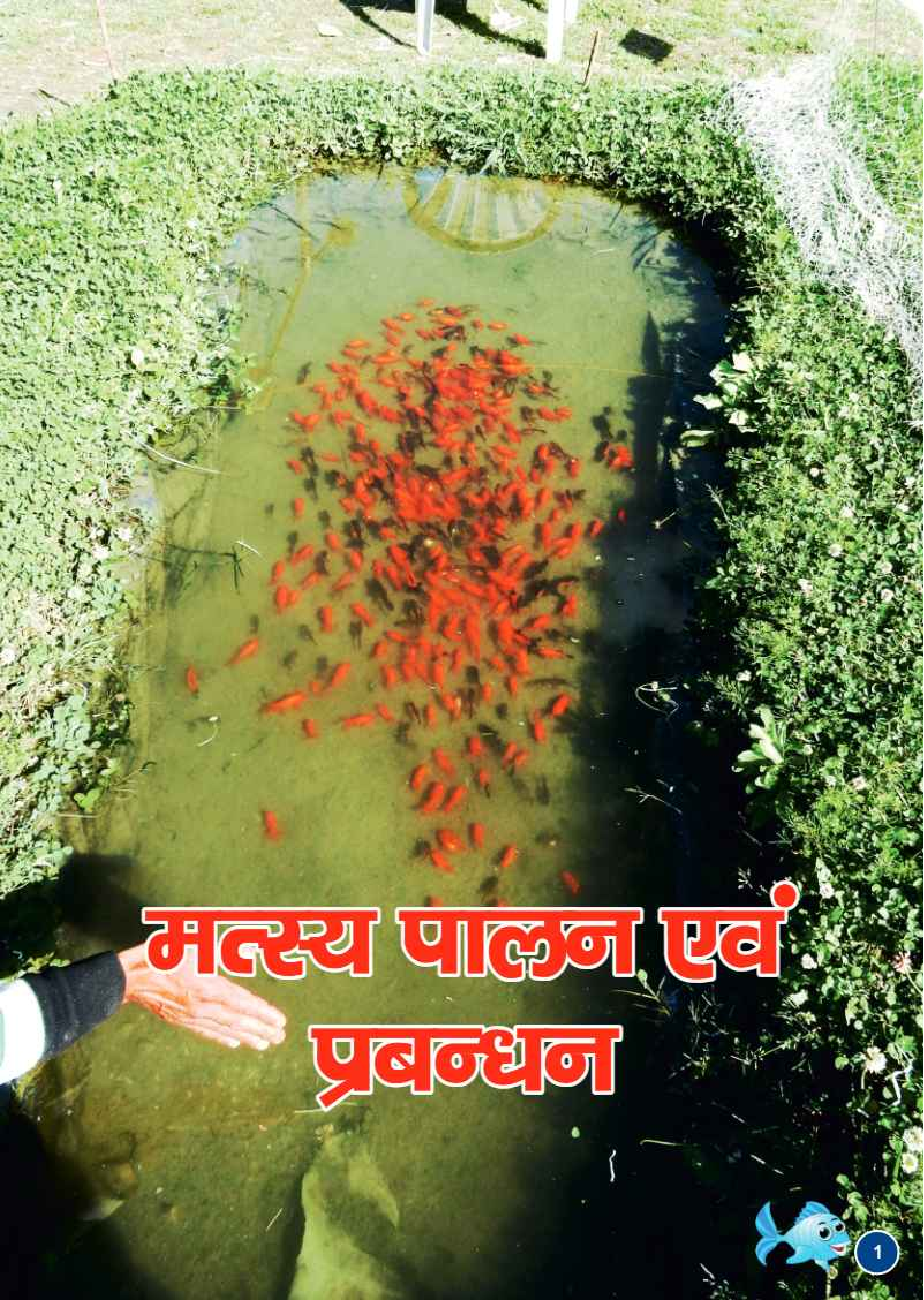

मत्स्य पालन एवं प्रबन्धन

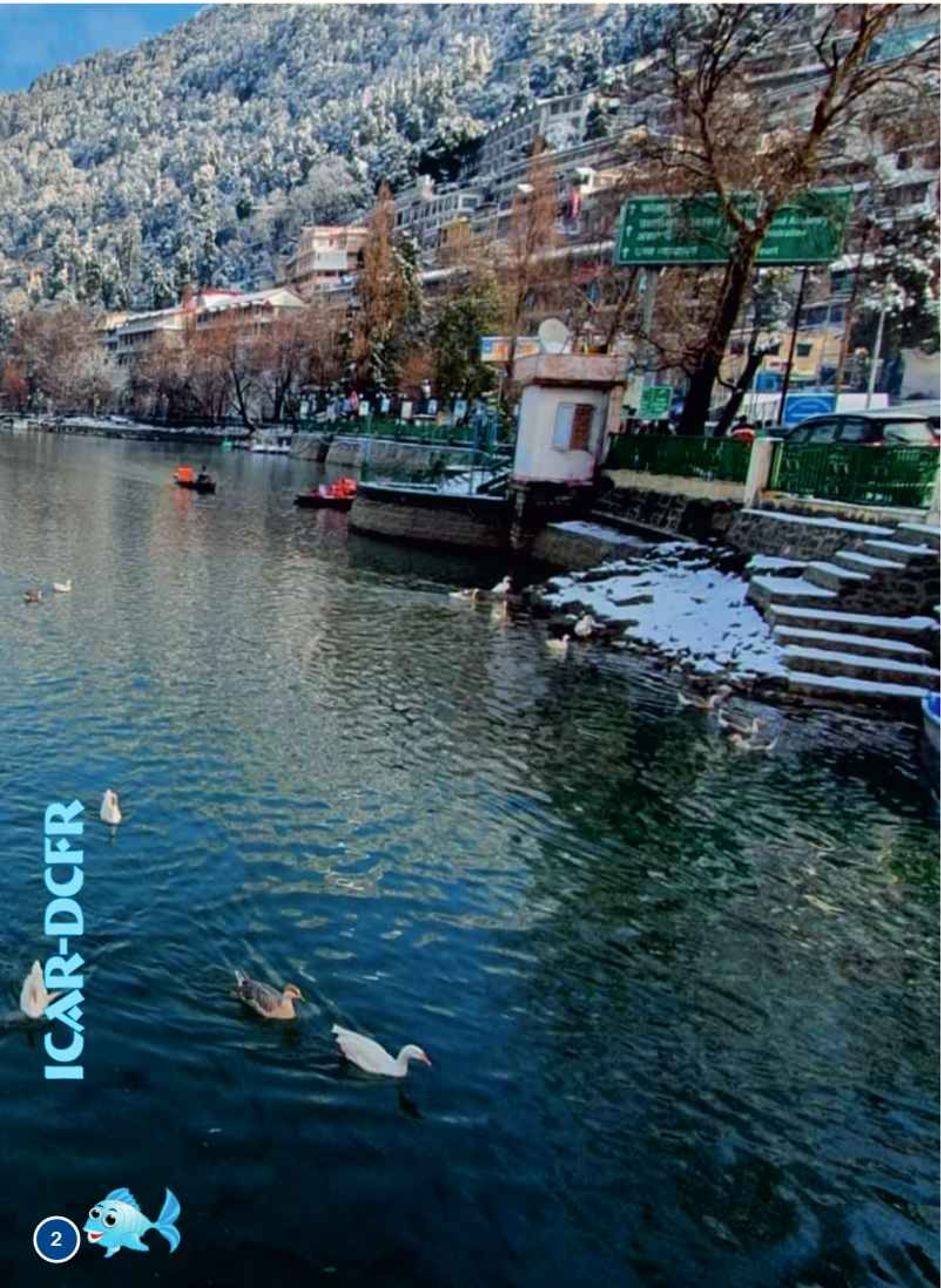

मत्स्य पालन में सूक्ष्मजीवियों की भूमिका

पार्थदास, शिवा सी० एवं सुमंत मलिक
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

प्रस्तावना

भारतीय भौगोलिक क्षेत्र संसार का 2.2 प्रतिशत है परंतु 15 प्रतिशत जनसंख्या का आवास है। विभिन्न प्रकार की खाद्य क्रांतियों के उपरांत भी भारत की 40 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे गुजर बसर करती है। खाद्य सुरक्षा एवं कुपोषण देश के समक्ष एक चुनौती है। इस संदर्भ में मात्स्यिकी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। परंतु जनसंख्या के दबाव में मत्स्य संसाधनों का असावधानी पूर्वक दोहन हो रहा है जिसके कारण प्राकृतिक प्रगहण के अलावा मत्स्य कृषि पर विशेष ध्यान देना होगा। मत्स्य कृषि की सफलता जल का समुचित प्रबंध, उचित भोजन तथा स्वास्थ्य प्रबंध पर निर्भर करता है, जबकि जल संसाधन पहले ही किसी न किसी प्रकार प्रदूषण के शिकार है।

मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से जल प्रबंध के लिए रसायनों तथा जैवरोधी दवाओं का प्रवेश निषेध है अन्यथा इनके स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ते है। इस दृष्टि से जैविक उपचार एक प्रभावशाली विकल्प हो सकता है। सूक्ष्म जीवी वातावरण के प्रत्येक स्तर पर पाए जाते है। यह सोचना बिल्कुल गलत होगा कि सूक्ष्म जीवी हानिकारक ही होते है परंतु सत्यता यह है कि अनगिनत लाभदायक जीवाणु भी होते है। परंतु आवश्यकता है उन्हें पहचानने की ओर उनके आबर्धन की।

जल प्रबंधन में लाभकारी जीवाणुओं का प्रवेश एक अहम भूमिका निभा सकता है। सघन जल कृषि में अधिक स्टॉकिंग एवं उन्नत खाद्यों का प्रयोग किया जाता है जो कि विशेष तय प्रोटीन आधारित होते है। प्रोटीन का जीवाणुओं द्वारा विघटन होकर यह अमोनिया तथा कार्बन–डाई–ऑक्साइड में बदल जाता है। जल गुणवत्ता की दृष्टि से अमोनिया प्रदूषण का घोतक है, परंतु अन्य जीवाणुओं द्वारा अमोनिया को लाभकारी यौगिक नाइट्रेट में परिवर्तित कर दिया जाता है। जो कि तालाबों की प्रारंभिक उत्पादकता बढ़ाने में विशेष योगदान देता है। सल्फर युक्त अमिनो एसिड सल्फर में विघटित हो जाता है। पानी की उपस्थिति में यह हाइड्रोजन सल्फाइड निर्माण होता है। जो कि एक प्रबल विष जैसा कार्य करता है। परंतु जीवाणुओं द्वारा सल्फाइड को कम हानिकारक सल्फेट में बदल दिया जाता है। सर्करा विघटन से पानी की अम्लता बढ़ जाती है। सार यह है कि पानी में जितना कार्बनिक पदार्थ होंगे उतनी ही जीवाणु क्रियाएं बढ़ने के साथ–साथ पानी की गुणवत्ता कम होगी। परंतु लाभकारी जीवाणु के द्वारा कार्बनिक पदार्थ का तली में जमा होने से पूर्व ही हो जाए जिससे अवायु हानिकारक जीवाणुओं को पनपने का मौका ही न मिले। जिससे मछलियों में रोग होने का खतरा भी कम हो जाता है। यदि जल में जीवाणुओं का उचित वर्चस्व है तो पानी में ऑक्सीजन भी उचित मात्रा में घुलती है, जो कि सब मिलाकर आदर्श जल कृषि का घोतक है। इस प्रपत्र में जीवाणुओं के आवर्धन से जैव रोग रोधकता, बायोरिमेडिएसन जैसी लाभकारी प्रकियाओं पर प्रकाश डालना है।

जलीय वातावरण में जीवाणु वृद्वि

जलीय वातावरण में तली जीवाणु वृद्वि दर इस बात पर निर्भर करती है कि लंबी श्रृंखला वाले पोषक तत्व जैसे वसा, स्टार्च, सैलुलोज का दर से विघटन होकर छोटी श्रृंखला वाले तत्वों में परिवर्तित होते हैं। ये पोषक तत्व जलीय वातावरण में मृत एल्गी, अनखाया खाना तथा जलीय जीवों की विष्ठा के रूप में पाए जाते है। जीवाणु जो इन पोषक तत्वों का विघटन करते हैं वे अन्य जीवाणुओं की तुलना में अधिक लाभकारी होते है। हगीनो (1977) के अनुसार सघन केज कल्चर में मछलियॉ केवल 20% भोजन का ही उपयोग कर पाती है, 70% पानी में तथा 10% तलछट अवशेष के रूप में जमा होता है। इस बचे खाने को विघटित करने वाले जीवाणुओं की वृद्वि दर जल के भौतिक एवं

रसायनिक गुणों जैसे pH, DO और फस्फेट पर निर्भर करती है। जीवाणुओं में बैसीलस जीवाणु अन्य जीवाणुओं की तुलना में उपरोक्त क्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। परंतु इसके तलछट में रहने की स्वभाव के कारण जो एक्सो–एंजाइम तली तक ही सीमित रह जाते है जो कि जीवाणु वृद्धि के लिए सहायक है। प्रयोगों से सिद्व हो गया है कि जब चयनित जीवाणु स्ट्रेनों का प्रवेश किया तो अच्छे परिणाम प्राप्त हुए, परंतु स्ट्रेनों का चयन करते समय विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

इन जीवाणुओं में मूल जीवाणुओं के मध्य स्थापित होने की क्षमता होनी चाहिए। ऐसे लाभकारी जीवाणुओं के प्रवेश से पानी की गुणवत्ता में सुधार आता है और झींगों को तली में रहना भी सुरक्षित होता है तथा पानी में ऑक्सीजन स्तर भी बढ़ जाता है। और तो और रोगजनित जीवाणु स्ट्रेन एक विशेष वातावरण में ही सक्रिय रहता है। माफिक स्ट्रेन जल जन्तुओं की वृद्वि में भी सहायक है। यह सब बहुत सावधानी से करना चाहिए क्योंकि स्ट्रेन का चुनाव सघनता तथा प्रवेश का समय अति महत्वपूर्ण है।

लाभकारी जीवाणु आवर्धन

पिछले दशक में सूक्ष्म–पारिस्थितिक एवं जैव प्रौद्योगिकी के श्रेणी में अत्यन्त विकास हुआ है जिसका जलकृषि से भी सीधा संबध है। जैविक उपचार की सफलता जीवाणु स्ट्रेन के चुनाव पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए किसी विशेष कार्य के लिए विशेष स्ट्रेन उनकी उचित संख्या तथा उचित वातावरण का सावधानी पूर्वक चुनाव करना चाहिए। यही सिद्वांत जैविक उपचार एवं प्रोबायोटिक्स पर भी लागू होता है। जीवाणु की प्रभाव क्षमता उस जीवाणु की अन्य जीवाणुओं से प्रतिस्पर्धा की प्रकृति पर निर्भर करता है।

जैविकोपचार आधारित शोधों का विवरण

जीवाणु को तली में चीनी मिट्टी तथा मूँगा पत्थर जिसमे रोम होते हैं,के भीतर प्रवेश करने से जीवाणु अपनी वृद्वि करने के साथ–साथ जो कार्बनिक पदार्थ तली में बैठता है, उसे विघटित कर देते है। जब बैसीलस जीवाणु का स्ट्रेन को तालाब में प्रवेश किया तो तलछट में जहरीला पदार्थ सल्फाइड में कमी तथा रिडोक्स पोटेंसियल बढ़ा पाया (हिरारा आदि)। एक अन्य प्रयोग में जब जीवाणु स्यूडोएल्ट्रोमोनास अन्डीना स्ट्रेन नं. VKM.124 को झींगे के खाने में मिलाकर दिया। झींगों में वजन वृद्वि, रोग रोधक्ता में वृद्वि,तलछट अवशेष में सल्फाइड की कमी तथा तलछट में भारी कमी पाई गई। बैन्थिक जल जंतु तली में जमा विघटित कार्बनिक पदार्थो तथा बैक्टीरिया पर भोजन करते है जिसके कारण तली में हलचल के कारण पानी में उपस्थित ऑक्सीजन तली में मिल जाती है, सामान्यत इस क्रिया को बायोटरबेशन कहते है।

जब केपिटैला स्प. (पॉलिकीट) का तली प्रयोग करने से तलछट में सल्फाइड तथा कार्बनिक पदार्थ खाते हैं तो उसमें उपस्थित जीवाणुओं को वृद्वि करने के लिए अधिक स्थान मिल जाता है और लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में वृद्वि हो जाती है। इसलिए वैज्ञानिक स्यूडोएल्ट्रोमोनास अन्डीना स्ट्रेन नं. TOVKM.124 तथा केपिटैला स्प. (पॉलिकीट) के प्रयोग की सिफारिश करते हैं।

जैविक फिल्टर प्रक्रम में लाभकारी जीवाणुओं का प्रयोग

आजकल सघन जलकृषि में जैविक फिल्टर लगाने का उद्देश्य तालाबों में उचित जल प्रबधन की दृष्टि से किया जाता है। पानी जब बायोफिल्टर से होकर गुजरता है तो यह पानी में सूक्ष्मजीवियों की संख्या में बहुत कमी आ जाती है, परंतु तालाब खुले होने के कारण जीवाणु वायु स्वयं झींगा या खाने के द्वारा पानी मेंआजातेहैऔरवृद्विकरनेलगतेहै।
कमी–कमी यह भी हो सकता है कि हानिकारक जीवाणु अधिक पाए जाए इसलिए इस समस्याएं बचने के लिए लाभदायक जीवाणुओं को स्थापित कर दिया जायें जिससे हानिकारक जीवाणुओं को पनपने से रोका जा सके।

विषाणु जनित रोगों का जैव नियंत्रण

विषाणु से प्रतिद्वन्दिता करने वाले जीवाणुओं का रोग नियंत्रण का सिद्वांत जैव नियंत्रक के रूप में माना जाता है। प्राकृतिक समुद्री जल में विषाणुओं की संख्या 10000 से 100000000 होती है और कम मात्रा में विषाणुओं का पाया जाना अनुमानतः कि प्रतिद्वन्द्वी जीवाणु की उपस्थिति के कारण हो सकता है। इस परिकल्पना के आधार पर जीवाणुओं की प्रतिद्वन्दिता के गुणों का अध्ययन किया। चिनौक सालमन में ईनफैक्सियस हिमोपॉइटिक निकरोसिस वाइरस (आई.एच.एन.वी.) की संख्या में कमी पायी गयी जब स्यूडोएल्ट्रोमोनास अन्डीना नामक जीवाणु से उपचारित किया गया।

भेक पीनियस मोनोडन (एस.जे.एच.एन.वी.), बक्युलोवाईरस तथा वाईरस नामक जीवाणुओं के कारण मृत्यु दर अधिक होती है। परंतु यदि पानी को स्यूडोएल्ट्रोमोनास अन्डीना जीवाणु से उपचारित किया जाये तो यह मृत्यु दर बहुत कम पायी गयी। रोगों की रोकथाम तथा मछलियों में रोगरोधी क्षमता बढ़ाने के लिए स्यूडोएल्ट्रोमोनाज अन्डीना जीवाणु को खाने के साथ भी दिया जा सकता है।

उत्तराखण्ड के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में समन्वित मत्स्य पालन

हेमा तिवारी एवं मालविका दास
मत्स्य विज्ञान महाविद्यालय, गो.ब. पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,पंतनगर

उत्तराखण्ड पर्वतीय क्षेत्र समुद्र तल से मी० से लेकर मी० तक ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य वर्ग मी० के भौगोलिक क्षेत्र में फैला है। उत्तराखण्ड में नदियां, झीले, जलाशय, धारायें आदि जल के प्राकृतिक स्त्रोत प्रचुर मात्रा में होते हुए भी इस क्षेत्र में मत्स्य पालन एक उद्योग के रूप में अभी तक पूर्णरूपेण विकसित नहीं हो पाया है। पर्वतीय क्षेत्रों के लागों का मुख्य व्यवसाय कृषि है, परन्तु वे कृषि के साथ–साथ गौ पालन, बकरी पालन, मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, खरगोश पालन आदि छोटे–छोटे व्यवसाय भी अपनाकर जीविकोपार्जन करते है। यदि कृषकों को इन व्यवसायों के साथ मत्स्य पालन की वैज्ञानिक विधि का प्रशिक्षण दिया जाये तो उनकी आय में अधिक वृद्वि के अवसर होंगे तथा कृषकों, महिलाओं, युवाओं को रोजगार के साधन प्राप्त होंगे एवं कुपोषण की समस्या का भी काफी हद तक समाधान होगा। पर्वतीय क्षेत्र के कृषक वैज्ञानिक विधि से मत्स्य पालन की पद्वति से अनभिज्ञ है, परन्तु मैदानी क्षेत्रों में प्रशिक्षण केन्द्र होने के कारण वहां के कृषक समाकलित तथा संग्रहित मत्स्य पालन को अपनाकर अच्छा व्यवसाय कर रहे है। इन स्थानों पर इनको सरकार द्वारा भी सहायता मिल रही है।

समन्वित मत्स्य पालन

समन्वित मत्स्य पालन अपशिष्ट पदार्थो के पुनरावर्तन की पद्वति पर आधारित है। इस पद्धति में खाद एवं कृत्रिम भोजन पर बिना व्यय के मत्स्य पालन द्वारा मछली की अच्छी पैदावार ली जा सकती है। इसके अंतर्गत पशु पक्षियों के अपशिष्ट एव उत्सर्जी पदार्थो का कुछ अंश मछलियां भोजन के रूप में ग्रहण करती है तथा शेष जल में उनके प्राकृतिक भोजन (प्लवक) की वृद्वि में खाद की तरह काम करता है। समन्वित मत्स्य पालन एशिया के विकसित देशों जैसे चीन, हंगरी, मलेशिया में काफी विकसित है। इस प्रकार के मत्स्य पालन में पशु–पक्षियों/कृषि/बागवानी/मशरूम/रेशम आदि पर आधारित उद्योग से/उत्सर्जी पदार्थो को पुनः मछली उत्पादन में उपयोग में लाया जाता है। इस प्रकार यह पद्वति अपशिष्ट/पदार्थो के पुनरावर्तन एवं उनके निदान की सर्वोतम विधि है। मछली फसल या पशु पालन के ऐकिक संवर्धन की पुरानी धारणा को अब धीरे–धीरे संकलित संवर्धन पद्वति में बदला जा रहा है, जिससे कि छोटे या सीमांत कृषक वर्षभर विभिन्न कार्यक्रमों में जुटे रहे एवं अपनी आजीविका में वृद्वि कर सकें। कृषि/पशु पक्षियों पर आधारित मत्स्य पालन के अंतर्गत धान सह मत्स्य पालन, मुर्गी सह मत्स्य पालन, मशरूम सह मत्स्य पालन, बत्तख सह मत्स्य पालन, शूकर सह मत्स्य पालन, पशुधन सह मत्स्य पालन, खरगोश सह मत्स्य पालन एवं रेशम सह मत्स्य पालन किया जाता है।

धान सह मत्स्य पालन– वह क्षेत्र जो निचली भूमि में स्थित है, जहाँ 3–8 महीने वर्षा का जल थमा रहता है। वहाँ धान सह मत्स्य पालन कर मछली का एक अतिरिक्त उत्पाद भी सुगमता से ले सकते है। इस पद्वति मे कुछ विशेष निर्माण कार्य नहीं करना पड़ता है, सिर्फ खेत के चारों तरफ एक बंधा ही बनाना पड़ता है। धान के खेत में कीचड़ में रहने वाली वायुश्वासी मछलियों का उत्पादन कर सकते है। इसमें भारतीय कार्प की मुख्य प्रजातियों का भी उत्पादन संभव है। केवल कामन कार्प व ग्रास कार्प उपयुक्त नहीं है।

मत्स्य पालन सह कृषि/बागवानी– तालाब के बंधे जो पानी को काफी चौड़े बनाये जाते है। उस जमीन का सदुप्रयोग ग्रामीण, वह पेड़–पौधे जिनकी जड़े ज्यादा गहरी न हो तथा जो छाया न करते हों, उनको उगाकर कर सकते है, जैसे मौसमी फल एवं सब्जियाँ, पपीता, केला आदि। बागवानी की सिचाई के लिये मत्स्य तालाब का पानी जो कि पोषक तत्वों से परिपूर्ण है प्रयुक्त किया जा सकता है।

रेशम सह मत्स्य पालन– यह पद्वति उन क्षेत्रों मे संभव है जहाँ रेशम के कीड़ो की खेती की जाती है। रेशम उद्योग में व्यर्थ पदार्थ जैसे रेशम के कीड़ो का प्यूपा, जिसमें अच्छी मात्रा में प्रोटीन होता है मछली के भोजन के उपयोग में लाया जाता है।

पशु सह मत्स्य पालन– तालाब में गोबर की खाद का प्रयोग बहुत प्राचीन समय से किया जाता रहा है। इस पद्वति में गौशाला को तालाब के निकट बनाकर एक नाली द्वारा तालाब के साथ जोड़ दिया जाये तो प्रतिदिन गौशाला की सफाई के दौरान गोबर व मूत्र को तालाब में सीधे गिराया जा सकता है, जिससे गोबर को गौशाला से उठवाने एवं डलवाने के व्यय से बचा जा सकता है। इस पद्वति मे यदि कृषक गैस जैव संयत्र रखे तो गोबर को पहले संयत्र में डालकर गैस प्राप्त कर उसके पंक (स्लरी) को तालाब मे मछली के भोजन व खाद के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

शूकर सह मत्स्य पालन– शूकर की विष्ठा में काफी अधिक मात्रा में नाईट्रोजन व फास्फोरस की मात्रा विद्यमान होती है जो कि एक बहुत अच्छे खाद के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इस पद्वति द्वारा बिना कृत्रिम भोजन दिये 3000–4000 किग्रा/हे० प्रति वर्ष मत्स्य उत्पादन एवं महीनें में 60–70 किग्रा. शूकर का वजन प्राप्त किया जा सकता है।

बत्तख सह मत्स्य पालन– यह पद्वति काफी प्रचलित है क्योंकि बत्तख एवं स्वंय पानी में रहने वाला पक्षी है। बत्तख के बाड़े को तालाब के ऊपर इस तरह बनाया जाता है कि उसकी विष्ठा सीधे तालाब में गिरती है। इस पद्वति में मत्स्य पालन से 3000–4000 किग्रा० प्रति हे. प्रति वर्ष मत्स्य उत्पादकता एवं अण्डे व मीट अधिक मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है।

मुर्गी सह मत्स्य पालन– इस पद्वति में बाड़े को बंधे पर बनाया जाता है। धुलाई के पश्चात् विष्ठा को सीधे तालाब में डाला जाता है। इससे भी 4500–5000 किग्रा. मछली प्रति हे. प्रति वर्ष एवं अण्डे व मीट भी प्राप्त होता है।

बकरी एवं खरगोश सह मत्स्य पालन– बकरी एवं खरगोश सह मत्स्य पालन को भी काफी संभावनाऐं है क्योंकि इनके उत्सर्जी पदार्थ में भी नाईट्रोजन व फास्फोरस विद्यमान होता है।

उत्तराखण्ड के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में पूर्णरूपेण मत्स्य विकास तभी संभव है जबकि कृषकों/मत्स्य पालकों का विश्वविद्यालय/महाविद्यालय/मत्स्य प्रशिक्षण संस्थान/वनविभाग/बागवानी/कृषि/जल संस्थान तथा स्वयं संस्था से संबध स्थापित हो, तथा ग्रामीण वर्ग को दूरस्थ स्थानों पर जाकर मत्स्य पालन के लिए प्रोत्साहित व जागरूक किया जाए,व उन्हे सरकार से भी सहायता प्रदान की जाये। तभी मत्स्य पालन पर्वतीय क्षेत्र में एक उद्योग का रूप ले पायेगा और तब हमारे ग्रामीण वर्ग की सामाजिक व आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। मत्स्य विकास का सीधा संबध मत्स्य पालक का नई वैज्ञानिक तकनीक व उसके समझने व उसके उपयोग से है। किसानों को मत्स्य पालन की नई तकनीक, लाभप्रद व प्रयोगात्मकता के आधार पर शिक्षा देनी चाहिए। नेशनल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर (1976) ने मत्स्य विकास के लिए कृषकों के परिवार के सदस्यों के लिए विद्यालयों के बाहर अनौपचारिक शिक्षा देने की बात कही है, जो लोग सीधे या अन्य किसी तरीके से कृषि से जुड़े है। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण उत्तराखण्ड में पर्वतीय क्षेत्र के पिथौरागढ़ व अल्मोड़ा जनपद में देखने को मिलता है। इन क्षेत्रों में जन्तु विज्ञान विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़ द्वारा मत्स्य पालन पर काफी कार्य किया जा रहा है, जो कि प्रशंसनीय व सराहनीय है। उन्होनें ग्रामों में मत्स्य पालन के विकास में किसानों को काफी जागरूक व प्रोत्साहित किया है तथा उन्हें अपना भरपूर योगदान दे रही है, जिससे कि वहाँ के लोग मत्स्य पालन को अपनाकर अच्छा व्यवसाय कर अपनी आय में वृद्धि कर सकें।

इसके अतिरिक्त पंतनगर विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों द्वारा भी विभिन्न परियोजनाओं के अन्तर्गत बिना कृत्रिम आहार के एक वर्ष में

6000 किग्रा० प्रति हे. से भी अधिक का मत्स्य उत्पादन किया गया, जो कि संकलित मत्स्य पालन का एक उत्कृष्ट उदाहरण है और इसी प्रकार की एक अन्य परियोजना विश्वविद्यालय द्वारा चलाई जा रही है। यहाँ के वैज्ञानिक गॉवों में जाकर मत्स्य पालन की वैज्ञानिक विधियों के बारे में ग्रामीणें को अवगत कराते रहते हैं। इसके अतिरिक्त मत्स्य महाविद्यालय में समय–समय पर अल्पकालीन प्रशिक्षण, कृषकों व मत्स्य पालकों को दिया जाता है, जिससे ग्रामीण वर्ग अच्छा व्यवसाय कर धनोपार्जन कर रहे है व इस व्यवसाय को स्वेच्छा से अपना रहे हैं।

ICAR-DCFR

हिमालयी क्षेत्र में मछली पकड़ने के उपकरण

आर०एस० पतियाल, बीजू सैम कमलम् एवं एम० राजेश
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

ICAR-DCFR

प्रस्तावना

हिन्दू पौराणिक कथाओं के अनुसार भगवान विष्णु ने मत्स्य का रूप धारण करके पृथ्वी की रक्षा की। इतना ही नहीं मछली और मानव का रिश्ता प्राचीन काल से है। कहीं सुन्दर नैनों वाली स्त्री को मीनाक्षी कहा जाता है तो कहीं मछली को देखना भी शुभ माना जाता है। तुलसीदास जी रामचरित मानस में लिखते है कि भगवान राम की बारात ने जब अयोध्या से जनकपुर की ओर प्रस्थान किया तो सभी प्राकृतिक शुभ संकेत मिल रहे हैं जिनमें मछली का दिखना भी एक है। मछली और मानव का अत्यन्त पुराना रिश्ता है इसे नकारा नहीं जा सकता मछली के पोषक गुण किसी से छिपे नहीं है। आधुनिक युग में मछली एक भोजन ही नहीं अपितु एक उद्योग के रूप में उभर कर आया है जो कि भारत की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उद्योग का ग्लैमर व्यवसायियों तथा अनुसंधान कर्ताओं को भी भा गया कि कैसे उन्नत किस्म के यंत्र बनायें जिससे कि अधिकाधिक मछलियां पकड़ी जा सकें। प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ समय –समय पर ऐसी विभिन्न प्रकार की तकनीकों का विकास किया गया, जिसमें मुख्य रूप से ऐसे नाव और जाल जिनसे वे कम समय में ज्यादा क्षेत्र का दोहन कर अधिक मुनाफा कमाया जा सकें। इस प्रकार की विधियों में ट्रोलिंग एवं पर्ससिनिंग मुख्य थे। समय के प्रवाह और अधिक बचत के लोभ के कारण अधिकाधिक यांत्रिकृत क्रियाशील का मत्स्य प्रगहण यन्त्रों का विकास, मत्स्योत्पादन में एक क्रान्ति तो लाया परन्तु जल संसाधनों की जैव विविधता को एक अप्रत्याशित क्षति पहुँचा गया। सामान्यतः मत्स्य प्रग्रहण यन्त्र दो प्रकार के होते है–क्रियाशील एवं स्थिर। क्रियाशील यन्त्रों का अभिप्राय मछलियों को घेरकर जबरदस्ती पकड़ना तथा स्थिर प्रग्रहण यन्त्रों के उपयोग से मछली को चकमा देकर उसी से गलती कराकर पकड़ना। इस अध्याय मे पर्वतीय क्षेत्रों मे प्रयुक्त होने वाले मत्स्य प्रग्रहण यन्त्रों के विषय ने विस्तार से चर्चा कि गयी है।

1. फॉसा जाल (Gill Net)

फांसी जाल एक आयताकार जाल होता है, जिसको फ्लोट और सिंकर की सहायता से पानी में एक दीवार के रूप में लगा देते है। इन जालों को बनाने में इस प्रकार का धागा उपयोग में लाया जाता है कि जिससे यह पानी में मछली की नजर में न आये और मछली उस रास्ते से यदि जाये तो उसके गलफड़ों में धागा अटक जाये। यह क्रिया गिलिंग कहलाती है और यदि मछली के मूवमेंट के दौरान यदि मछली के गलफड़े को छोड़कर कोई भी अंग जैसे फिन, पूँछ इत्यादि अटक जाये तो ऐसी क्रिया को एनटेंगलिंग कहते है। कार्य विधि के आधार पर गिलनेट (क्लोम जाल) की तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है।

क. चलायमान फांसी जाल

इस प्रकार के जाल अधिकतर प्रवाही जल संसाधनों में उपयोग किये जाते है। जालों को पानी के बहाव के साथ छोड़ दिया जाता है जबकि मछलियां धार से उल्टी दिशा में गति करती है। इस प्रकार के जालों में फ्लोट की संख्या अधिक रखी जाती है और सिंकर कम या बिलकुल नहीं इस प्रकार के जाल भारतीय नदियों में उपयोग किये जाते है।

ख. स्थिर फांसी जाल

इस तरह के जालों को किसी भी स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है परन्तु जाल में प्रयुक्त पदार्थ तथा फ्लोर एवं सिंकर की संख्या भिन्न हो सकती है। जाल की तली में,बीच में और सतह में स्थिर किया जा सकता है।

ग. घेराव फांसी जाल

इस विधि में जाल को विशेषकर उथले पानी में गोल धारे में स्थिर करके बीच में पानी को जोर से डालकर मछलियों को डराया जाता है जिससे वो वहाँ से भागे और जाल में फंस जायें

इस तरह की विधियाँ जलाशयों तथा नदियों में प्रचलित है।

घ. तीन तड़िया जाल

इस तरह के जाल में तीन तह होती है बाहरी दो तह बड़े कणाकार वाली तथा मीटरी तह छोटे कणाकार की होती है जिसे लिंट कहते है। मछली जब बड़े गण से निकलकर भागने का प्रयास करती है तो छोटे कण वाली तह में पिटकर दूसरी बड़े कण वाली तह से अटक जाती है। इस तरह के फांसी जाल से उपज तो अधिक आती है परन्तु इन जालों को बनाने में अधिक लागत आती है और जांल से फंसी फंसी मछलियाँ निकालने में दुविधा के कारण ये जाल इतना ज्यादा प्रचलन में नहीं हैं।

2. मछली पिंजरा

लकड़ी, बांस की खम्बे, लोहे के सरियों और प्लास्टिक से मछली के पिंजरे बनाये जाते है। इन पिंजरों में मछली घुस तो सकती है, परन्तु निकलने का कोई रास्ता नहीं होता। मछली या तो पिंजरे में रखे लुभावक के लालच में या पिंजरे मे शरण पाने के लिए घुसती है। वैसे भिन्न प्रकार की मछलियों को लुभाने के लिए विभिन्न पिंजरों का प्रयोग किया जाता है। इस विधि का प्रयोग ग्रामीण तालाबों में किया जाता है।

3. कांटा डोर

कांटा डोर मछली,पकड़ने की अत्यन्त प्राचीन पद्वति है। जिसमें काटा एक लुभावक से ढ़क दिया जाता है और जब मछली चारा खाने आती है तो स्वयं भी फंसकर रह जाती है। कांटाडोर का उपयोग या तो छोटे स्तर पर हाथ से मछली पकड़ने के लिए होता है या एक लम्बी डोर को ब्रांचलाईन से हुक जोड़कर उससे लुभावक लगा देते है। पर्वतीय क्षेत्रों में यह विधि बहुयायत प्रचलित है।

क्रियाशील बनाये स्थिर मत्स्य प्रग्रहण विधियाँ

	स्थिर		क्रियाशील
1.	कम लागत पर तैयार किये जा सकते है। जो आम मछुवारे की पहुँच में आते है।	1.	बहुत महंगे होते है।
2.	जल संसाधनों की जैव विविधता को स्थिर रखते है।	2.	जैव विविधता को नुकसान पहुँचाते है।
3.	कार्य की गति सीमित होती है।	3.	कार्य गति कार्य के अनुसार होता है।
4.	मानवीय काम का उपयोग होता है।	4.	ईधन का उपयोग किया जाता है।

निष्कर्ष

स्थिर मत्स्य प्रग्रहण के यंत्रों से मछलियों को उनकी जैविक क्रियाओं के अध्ययनों के आधार पर उन्हीं के द्वारा गलती करा पर पकड़ा जाता है। सामान्यतः स्थिर यंत्र चयनित प्रकृति के होते है इसलिए इनका उपयोग जल संसाधनो के समुचित उपयोग के साथ–साथ उनकी जैव विविधता का कायम रखने में भी सहायक होता है। अन्ततः आर्थिक दृष्टि से ये जाल आम मछुवारों की पहुँच में आते है जो कि प्रौद्योगिकी विकास का मुख्य उद्देश्य है। समय आ गया है, जब क्रियाशील प्रग्रहण यन्त्रों की संख्या पर लगातार स्थिर मत्स्य प्रग्रहण यन्त्रों को प्रोत्साहित किया जाये।

करे प्रेम निज देश से, भाषा अपनी होय,
हिन्दी मन से बोलिए, समझ सके हर कोय।

उच्च हिमालयी क्षेत्र में शीतजल मात्स्यिकी का संरक्षण एवं विकास

सुरेश चन्द्रा एवं अमित कुमार जोशी
भाकृअनुपरि–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में अथाह प्राकृतिक जल सम्पदाएं हैं। जिनमें अनकों नदियाँ, झील, सरोवर एवं प्रवाहित जलस्रोत हैं। इन क्षेत्रों में शीतजल मात्स्यिकी और इनसे जुड़े अन्य रोजगारोन्मुखी कार्यकलापों के विकास की असीम संभावनाएं हैं। इन पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन हेतु प्राकृतिक संसाधन तो प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं परंतु यह संसाधन विखण्डित रुप से विद्यमान है अर्थात जहां जनसंख्या है वहां संसाधन की कमी है और जहां संसाधन है, वहां अल्प जनसंख्या है। यहां की भौगोलिक संरचना भी ऐसी है कि यहां के लोग सामाजिक आर्थिक रुप से मैदानी भागों के निवासियों की अपेक्षा पिछड़ें हुए है। मैदानी भाग में जहां खेती, उद्योग–धन्धे, परिवहन एवं अन्य रोजगार की सुविधाए उपलब्ध हैं, वही पर्वतीय क्षेत्रों में इन सुविधाओं का विकास अपेक्षाकृत कम हुआ है। यहां के लोगों की आजीविका मुख्य रुप से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर ही निर्भर है। विगत कुछ दशकों में, पर्वतीय क्षेत्र के विकास में होने वाले विकास बड़ी परियोजनाओं के कारण इन क्षेत्रों में फैले प्रकृति प्रदत्त नैसर्गिक चीजों एवं अनुकूल परिस्थितिकी तंत्र पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

यहां बड़े–बड़े डैमों का निर्माण कार्य, पनबिजली परियोजनाएं, परिवहन आदि के विकास के कारण देश एवं राज्य के विकास में भी तेजी आ रही है। ऐसे विकास आज की बढती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु की जा रही है। परंतु दूसरी ओर इन विकास कार्यो से यहां के उपलब्ध संसाधनों पर अत्यन्त दुष्प्रभाव पड़ा है, जैसे जंगलों की कटाई से पर्यावरण पर कुप्रभाव, हरियाली उजड़ने से वर्षा की कमी, कई प्रजातियों का लुप्त होना, मिट्टी का अपरदन, पारिस्थितिकी तंत्र पर दुष्प्रभाव इत्यादि। उपरोक्त बातों को मद्दे नजर रखते हुए आज आवश्यकता इन बात की है कि इन संसाधनों को सुनियोजितपूर्वक इस प्रकार उपयोग किया जाए कि इन संसाधनों पर न्यूनतम प्रभाव पड़ते हुए संपदा का संरक्षण भी हो सके और साथ–साथ आजीविका के लिए भी इसका पूर्ण उपयोग हो सके। विशेषकर ऐसे उपयोग अल्प अवधि को ध्यान में न रखकर दीर्घ अवधि हेतु किया जाना आवश्यक है जिससे संसाधनों के उपयोग की निरंतरता बनी रहे। यह देखा गया है कि पर्वतीय क्षेत्र में कृषि एवं उद्योग–धंधों के अभाव में यहां के अधिकांश पढे–लिखे लोग रोजगार की तलाश में मैदानी भाग या अन्य शहरों में चले जाते हैं। स्थानीय रोजगार में महिलाएं अपनी भागीदारी निभाती हैं। अतः यहां मानवीय जनशक्ति विकास में महिलाओं को भी सक्षम बनाना आवश्यक है।

प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित मानव विकास के लिए मानव संसाधन को केन्द्र में रखकर ही विकास का कार्य आगे बढ़ाया जा सकता है। ऐसे रणनिति के दौरान सर्वप्रथम एवं सकेन्द्रित प्रयास प्राकृतिक संपदाओं पर निर्भर स्थानीय लोगों, विशेषकर निर्धन तबके के लोगों को संगठित कर एवं उनके संगठनों के द्वारा उन्हें क्षमतावान करना होगा। फलस्वरुप संगठित, जागरुक एवं प्रबुद्ध लोग ही प्राकृतिक संपदा की रक्षा करने में एवं उनका दायित्वपूर्ण उपयोग करने में अपनी भूमिका रख पाएंगे। पर्वतीय क्षेत्रों में लोगों को खेती–बाड़ी के अलावा कृषि, बागवानी, लघु उद्योग समन्वित पशुपालन, समन्वित मत्स्य पालन की बड़ी संभावनाएं हैं।

यह कार्य अकेले मत्स्य विभाग नहीं कर सकता वरना इसमें विभिन्न सरकारी एवं निजी क्षेत्र की एजेन्सियों को आपस में समन्वय कर एक दूरगामी परियोजना की परिकल्पना करनी होगी तथा इन्हें कार्यान्वयन करने के लिए स्थानीय लोगों में अभिप्रेरणा एवं जागरूकता लानी होगी, ताकि इन योजनाओं को वे स्व स्तर पर कार्यान्वित कर सकें। इस प्रकार के

सकारात्मक प्रयास से विकास को सही दिशा एवं गति मिलेगी। पर्वतीय क्षेत्र की भौगोलिक सुन्दरता अत्यन्त आकर्षक हैं। अतः इसे पर्यटन केन्द्रों के रुप में विकसित करने में मात्स्यिकी की भी भूमिका रहेगी। इस क्षेत्र में रंगीन मछली पालन एवं क्रीड़ा मात्स्यिकी (शिकारमाही) की भी काफी संभावनाएं हैं। पर्वतीय क्षेत्र में मात्स्यिकी के विकास को खाद्य एवं पौष्टिक सुरक्षा एवं आजीविका सुरक्षा से जोड़ना है। मछली एक सस्ता पौष्टिक आहार है और मानव शरीर को स्वस्थ रखने के लिए प्रोटीन की आवश्यकता होती है, जो कि हमें मछली, मांस, दूध आदि से प्राप्त होता है। प्रदेश सरकार एवं डी.सी.एफ.आर. के सहयोग से कई स्थलों पर ऐसे प्रदर्शनों को आयोजित कर सकते हैं, जिससे अपेक्षित परिणाम को लोगों के समक्ष दिखाया जा सके। इससे लोगों के बीच रुचि, उत्साह एवं विश्वास पैदा होगा, जिसके फलस्वरुप स्थानीय लोग ऐसे कार्यों को अपने हित में आगे बढ़ा पाएंगे।

देश में आने वाले दशक में उर्जा की मांग बढ़ेगी और उर्जा के लिए गैर पारम्पारिक उर्जा स्रोत (Non conventional sources of energy) पर निर्भरता बढ़ेगी। ऐसे में छोटी, मध्यम, और बड़ी नवीकरणीय उर्जा (Renewable energy) के उपक्रम बनेंगे जो जलस्रोत एवं प्रवाह पर निर्भर होंगे। ऐसे में मात्स्यिकी एवं मछली पालन के लिए जलाशयों की वृद्दि निश्चित है। मछली पालन हेतु जगह–जगह बरसाती पानी को रोककर एवं संचित कर उसको मत्स्य पालन के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। ऐसे प्रयासों से स्थानीय वातावरण भी हरित किया जा सकता है।

इन क्षेत्रों हेतु मात्स्यिकी विकास के लिए मात्स्यिकी नीति का निर्धारत एवं राज्य में स्थित मात्स्यिकी संस्थानों के बीच के संबंध को मजबूत करना आवश्यक है। इस कार्यो के कार्यान्वयन एवं तकनीकी सहयोग प्रदान करने हेतु शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय एवं अन्य मात्स्यिकी संस्थानों, राज्य सरकारों तथा गैर सरकारी संगठनों आदि के साथ सहयोग करने के लिए हमेशा तैयार है।

वैश्विक पोषण सुरक्षा में मत्स्य आहार की भूमिका

एस० अली एवं एन०एन० पाण्डे
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

वर्तमान में विश्व की अनुमानित जनसंख्या 6.7 बिलियन है और 2050 के अंत तक यह 9 बिलियन तक पहुंचने की उम्मीद है। इसके अलावा यह भी अनुमान लगाया गया है कि लगभग 60 प्रतिशत वैश्विक आबादी एशियाई और उप–सहारा अफ्रीकी क्षेत्र में निवास करेगी। इस परिदृश्य के तहत, उन क्षेत्रों की बढ़ती आबादी के लिए भोजन और पोषण की स्पष्ट मांग होगी जहां बड़ी संख्या में गरीब और कुपोषित आबादी प्रोटीन आधारित भोजन तक सीमित पहुंच रखती है। खाद्य सुरक्षा की धारणा विभिन्न क्षेत्रों के बीच समान भोजन वितरण का सुझाव देती है और संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) की सिफारिशों के अनुसार, पर्याप्त स्वस्थ भोजन की गारंटी के लिए प्रति व्यक्ति 3000 किलो कैलोरी/दिन उपलब्ध होना चाहिए। इसलिए, बढ़ती विश्व जनसंख्या और जनसांख्यिकीय स्थिति के संदर्भ में, उच्च जनसंख्या वाले क्षेत्रों को अपने दैनिक उपभोग में प्रमुख खाद्य सामग्री के रूप में पोषण सुरक्षा के लिये सस्ते प्रोटीन स्रोतों की गंभीर आवश्यकता है। मछली को उच्च प्रोटीन, सूक्ष्म पोषक तत्वों और आवश्यक फैटी एसिड के साथ अच्छे पोषण वाले पशु भोजन के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में मान्यता दी गई है।

सस्ते पशु–स्रोत भोजन के रूप में मछली का सेवन विश्व के अविकसित और विकासशील देशों में सबसे अधिक किया जाता है। विश्व स्तर पर 4.5 बिलियन से अधिक लोग मछली और मछली से संबंधित उत्पादों के सेवन के माध्यम से अपने औसत प्रति व्यक्ति पशु प्रोटीन का कम से कम 15% प्राप्त करते हैं। इसके अलावा, मछली का आय में महत्वपूर्ण योगदान है और एक आँकड़े के अनुसार दुनिया की विकासशील और उभरते देशों की 10% से अधिक आबादी की अप्रत्यक्ष खाद्य प्रतिभूतियां अनिवार्य रूप से मछली द्वारा ही प्राप्त होती हैं। हालांकि, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खाद्य और पोषण सुरक्षा में एक प्रमुख तत्व के रूप में मछली पर सीमित ध्यान दिया गया है।

एक महत्वपूर्ण पोषक भोजन के रूप में मछली का महत्व

सतत विकास के लिए संयुक्त राष्ट्र 2030 के एजेंडे में भूख को समाप्त करने, खाद्य सुरक्षा हासिल करने और कुपोषण को समाप्त करने का लक्ष्य शामिल किया गया है। इस दिशा में स्वस्थ भोजन के रूप में मछली खाद्य और पोषण सुरक्षा में योगदान कर सकती है। भोजन के रूप में मछली कई स्वास्थ्य लाभ वाले कार्यात्मक भोजन की परिभाषा में और प्रोटीन की आवश्यकता प्रदान करने और कुपोषण को कम करने में एक प्रमुख तत्व के रूप में प्रमुख रूप से लाभकारी है। इस प्रकार मछली पशु प्रोटीन के एक प्रमुख स्रोत के रूप में, पोल्ट्री और अन्य भूमि–आधारित पशु प्रोटीन स्रोतों की अपेक्षा आधिक महत्वपूर्ण है। मछली प्रोटीन अन्य स्थलीय जानवरों और पौधों के प्रोटीन की तुलना में अत्यधिक सुपाच्य माना जाता है। पाचन के बाद, प्रोटीन पॉलीपेप्टाइड्स, पेप्टाइड्स और अमीनो एसिड में टूट जाते हैं। इनमें से कई यौगिकों में बायोएक्टिव गुण होते हैं। इसके अलावा, मछली विशेष लिपिड संरचना के साथ संपन्न होती हैं, जिसमें लंबी श्रृंखला वाली पॉली अनसेचुरेटेड फैटी एसिड (एलसी–पीयूएफए) होती है, जिससे बाल विकास और वयस्क स्वास्थ्य के लिए कई लाभकारी प्रभाव प्राप्त होते हैं। अगर देखा जाये तो एंकोवी और सार्डिन जैसी छोटी पेलाजिक प्रजातियों में एलसी–पीयूएफए प्रचूर मात्रा में मौजूद होते हैं, और विशेष रूप से कार्प और तिलापिया जैसी बड़ी मीठे पानी की मछली की तुलना में तुलनात्मक रूप से सस्ती भी हैं। एलसी–पीयूएफए स्ट्रोक, उच्च रक्तचाप या कोरोनरी हृदय रोग जैसी बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। मानव पोषण में ओमेगा–3 (एन –3) फैटी एसिड जैसे डोकोसाहेक्सैनोइक एसिड (डीएचए)

और ईकोसापेंटेनोइक एसिड (ईपीए) आवश्यक तत्व हैं और डीएचए और ईपीए का प्राथमिक स्रोत मछली के ऊतकों से वसायुक्त मछली और तेल हैं।

ओमेगा–3 फैटी एसिड, विशेष रूप से, मछली और मछली के तेल से डीएचए और ईपीए मानव विकास में आवश्यक भूमिका निभाते हैं और कई सामान्य मानव विकारों की रोकथाम में मदद करते हैं। अपने फैटी एसिड सामग्री के अलावा, मछलियां आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों–विटामिन डी और बी (vitamin B&D) और खनिजों (micro & minerals) का भी एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। यह पाया गया कि लिपिड समृद्ध मछली में भी विटामिन ए की अच्छी मात्रा होती है। कुछ छोटी मछलियों जैसे सार्डिन, सीबास, एन्कोवी, तिलपिया में कैल्शियम, फास्फोरस, आयोडीन, जस्ता, लोहा और सेलेनियम जैसे खनिजों की अन्य खाद्य पदार्थों की तुलना में अधिक मात्रा होती है। इस प्रकार कम मात्रा में भी मछली कई सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने में योगदान करती है। उदाहरण के लिए, मछली में मौजूद आयोडीन का उच्च स्तर आयोडीन की कमी को रोक सकता है, जिसे क्रेटिनिज्म (रुका हुआ विकास और मानसिक मंदता) का कारण माना जाता है। मानव शरीर और मन के संतुलित विकास के लिए खनिजों की अनिवार्य रूप से आवश्यकता होती है। विभिन्न खनिजों में, कैल्शियम मानव शरीर में सबसे सामान्य खनिज है और इसका 99% हड्डियों और कोमल ऊतकों में पाया जाता है। रक्त में इसका पर्याप्त स्तर सामान्य शारीरिक क्रियाकलाप के लिए आवश्यक है और कैल्शियम के अपर्याप्त सेवन सें शरीर सामान्य रक्त कैल्शियम के स्तर को बनाए रखने के लिए हड्डी को डिमिनरलाइज कर इसकी आवश्यकता को पूरा करता है। कैल्शियम की कमी से बच्चों में रिकेट्स होता है, जो की एक हड्डी रोग है तथा वयस्कों में, यह अस्थिमृदुता (osteomalacia) एवं ऑस्टियोपोरोसिस का कारण बनता है। फास्फोरस एक आवश्यक खनिज है जो हड्डियों, दांतों, एडेनोसिन ट्राइफॉस्फेट (एटीपी), फॉस्फोराइलेटेड चयापचय प्रक्रिया और न्यूक्लिक एसिड का एक घटक है। इसकी कमी से बच्चों में रिकेट्स और वयस्कों में ऑस्टियोमलेशिया होता है। इसी प्रकार अन्य सूक्ष्म और स्थूल खनिज बच्चों और वयस्कों दोनों की वृद्धि और विकास में महत्वपूर्ण शारीरिक भूमिका निभाते हैं। मछली खनिजों का एक समृद्ध स्रोत होने के कारण मानव शरीर के समग्र विकास के लिए आवश्यक खनिज प्रदान करती है। बड़ी संख्या में प्रकाशित साक्ष्य हैं जो यह सुझाव देते हैं कि मछली के सेवन से स्ट्रोक, उच्च रक्तचाप, कोरोनरी हृदय रोग सहित कई स्वास्थ्य समस्याओं पर सुरक्षात्मक प्रभाव पड़ता है।

खाद्य सुरक्षा और पोषण के संबंध में मछली उत्पादन

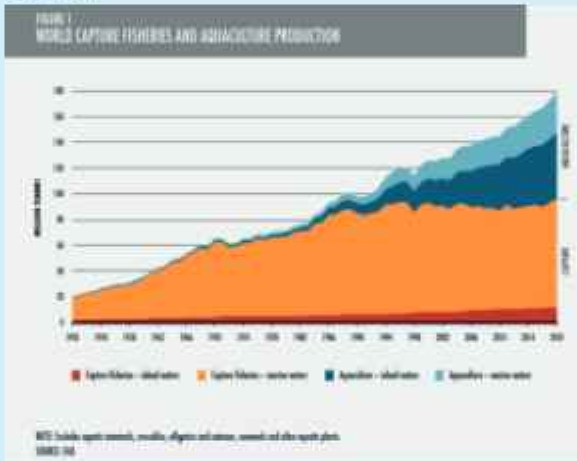

एफएओ (FAO, 2020) के अनुसार, वैश्विक मछली उत्पादन (वर्ष 2018 तक अनुमानित) लगभग 179 मिलियन टन तक पहुंच गया है, जिसमें मत्स्य दोहन द्वारा उत्पादन लगभग 97 मिलियन टन और जलीय कृषि का योगदान 82 मिलियन टन है। 1961 से 2017 तक वैश्विक खाद्य मछली की खपत 3.1 प्रतिशत की औसत वार्षिक दर से बढ़ी है, और यह अन्य सभी पशु प्रोटीन खाद्य पदार्थों (मांस, डेयरी, दूध, आदि) की तुलना में अधिक है, जिसमें प्रति वर्ष 2.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। प्रति व्यक्ति खाद्य मछली की खपत प्रति वर्ष लगभग 1.5 प्रतिशत कीं दर से 1961 में 9.0 किलोग्राम से बढ़कर 2018 में 20.5 किलोग्राम हो चुकी है।

पशु प्रोटीन की खपत के रूप में मछली की आपूर्ति का डेटा यह इंगित करता है कि पशु

प्रोटीन के रूप में मछली की खपत उत्तरी अमेरिका और यूरोप में 10%, अफ्रीका में 17%, चीन में 22% और एशिया में 26% है। मछली उत्पादन एवं खपत में तेजी से वृद्धि के साथ–साथ इसकी वैश्विक मांग ने न केवल इसके दोहन में वृद्धि हुई है बल्कि जलीय कृषि प्रणाली के माध्यम से उत्पादन के अवसर भी खुले हैं। भारत में मछली उत्पादन पिछले तीन दशकों (1990–2020) में लगभग 269% बढ़ा है। भारत का कुल मछली उत्पादन 14.16 मिलियन मीट्रिक टन (एमएमटी) है, जिसमें अंतः स्थलीय मछली उत्पादन लगभग 10.43 एमएमटी है जबकि समुद्री मत्स्य उत्पादन 3.72 एमएमटी है। भारत जलीय कृषि के माध्यम से कुल 7.06 एमएमटी मछली उत्पादन के साथ वैश्विक मछली उत्पादन में दूसरे स्थान पर है और यह दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा जलीय कृषि उत्पादक देश है। घरेलू और वैश्विक बाजार दोनों में मछली की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए, भारत का 2024–25 तक लक्षित मछली उत्पादन 22.0 एमएमटी निर्धारित किया गया है, साथ ही प्रति व्यक्ति मछली की खपत को मौजूदा 9 किलो से बढ़ाकर 12 किलो किया जाना लक्षित है। एक स्वस्थ और समृद्ध भारत के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मछली खाद्य और पोषण सुरक्षा दोनों में योगदान कर सकती है। मछली और मत्स्य उत्पाद पशु प्रोटीन के एक मूल्यवान स्रोत का प्रतिनिधित्व करते हैं और 150 ग्राम मछली एक वयस्क के लिए दैनिक प्रोटीन आवश्यकताओं का लगभग 50–60% प्रदान करती है। मछली ने 2.9 बिलियन से अधिक लोगों को उनके औसत प्रति व्यक्ति पशु प्रोटीन की खपत का लगभग 20% प्रदान किया, और 4.3 बिलियन लोगों को इस तरह के प्रोटीन का लगभग 15% प्रदान किया है। पांच साल से कम उम्र के अनुमानित 41% बच्चे अविकसित (उम्र के हिसाब से कम कद), 38% कम वजन (ऊंचाई के लिए कम वजन) के हैं, जबकि 59% एनीमिक हैं। गौरतलब है कि दुनिया के 40 फीसदी कुपोषित बच्चे भारत से हैं। इसलिए, मछली एक पोषण–संवेदनशील खाद्य पदार्थ कई रूप मे पोषण संबंधी कमियों को दूर करने का एक व्यावहारिक और स्थाई उपाय हो सकती है।

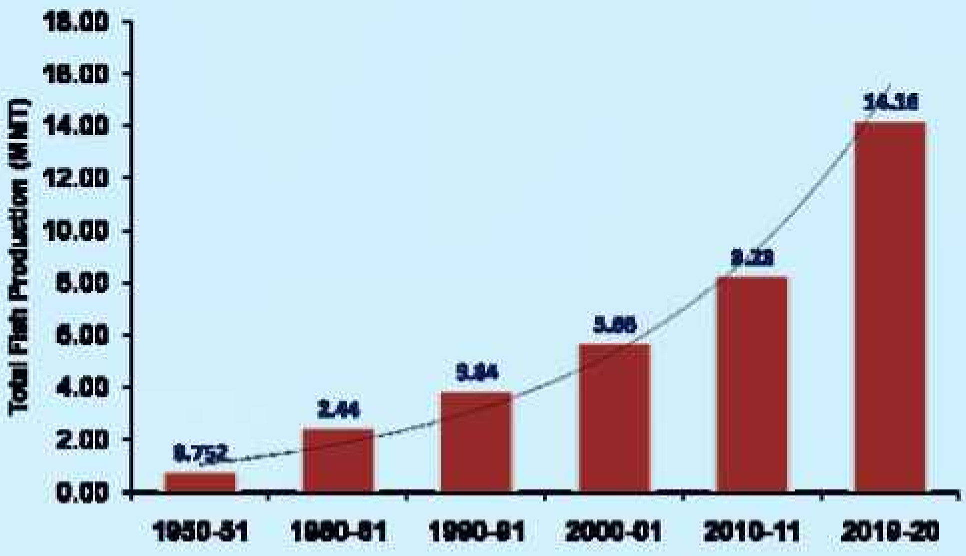

प्राकृतिक मत्स्य पालन को बढ़ावा देकर पर्वतीय क्षेत्र की अनुसूचित जाति समुदाय की लचीली आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाना

सुरेश चन्द्रा, परवेज़ अहमद गनी एवं रवीन्द्र पोस्ती
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

किसानों के बारे में एक कहावत है "कीचड़–जादूगर" जो कि गंदगी को नकदी में बदल देते हैं, यह निर्विवाद रूप से सच है। उत्तराखंड राज्य के नैनीताल जिले के भीमताल ब्लॉक के हरीनगर बस्ती में अनुसूचित जाति के मत्स्य पालकों के एक समूह ने इसे हकीकत बना दिया है। यह बस्ती भीमताल से लगभग 7 किलोमीटर की दूरी पर एक पहाड़ी में स्थित है और लगभग 10 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैली हुई है। ग्रामीण आमतौर पर अपनी आजीविका के लिए कृषि और मवेशियों पर निर्भर होते हैं, जबकि घर के मुखिया मुख्य रूप से दैनिक मजदूरी के काम में शामिल होते हैं। बहुसंख्यक छोटे और सीमांत अनुसूचित जाति के मत्स्य पालक हैं और अल्प आय अर्जित करते हैं। क्षेत्र में मछली पालन को विकसित करने का एक पर्याप्त अवसर एक बारहमासी जल स्रोत, घाटीगाढ़ की उपलब्धता के कारण है, जो भीमताल झील से एक निवर्तमान जल चैनल है जो ऊपर से नीचे तक गांव के पूर्वमें बहती है (चित्र 1)। यह सुनिश्चित करने के अलावा कि ग्रामीणों की पहुँच स्वस्थ्य भोजन तक हो, यह उन्हें अतिरिक्त आय उत्पन्न करने का एक साधन भी प्रदान कर सकता है।

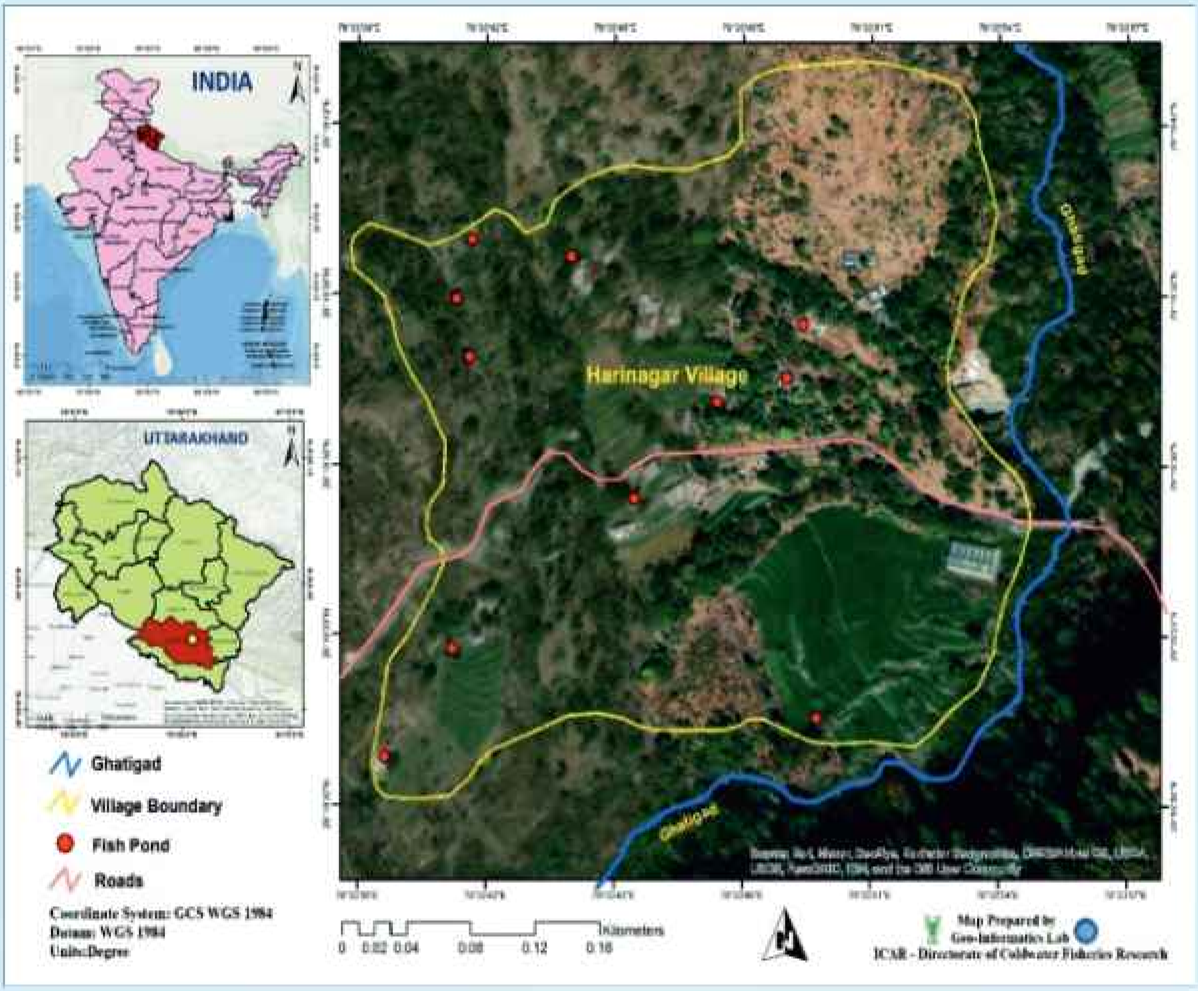

ICAR-DCFR

समूह में लाभार्थियों का चयन मछली पालन के लिए उत्पादन में आत्मनिर्भरता के साथ बाहरी निर्भरता को कम करने, सामाजिक– आर्थिक स्थितियों में सुधार के समग्र लक्ष्य को प्राप्त करने के उददेश्य से किया गया था। प्रत्येक टैंक का आकार पचास से दो सौ वर्ग मीटर तक होता है, जिनमें क्रियाशील कुल तीस तालाब और टैंक थे। समूह की सामाजिक आर्थिक स्थिति, मौजूदा जल और भूमि संसाधनों की आधारभूत स्थिति, और जल कृषि पद्धतियों से संबंधित मुद्दों को पहले एकत्र किया गया। सबसे महत्वपूर्ण समस्याओं को प्राथमिकता देने और उन सीमाओं के समाधान तैयार करने का निर्णय लिया गया। हरिनगर अपेक्षाकृत छोटी घाटी में स्थित है, जो इसे पड़ोसी पर्वतीय क्षेत्रों की तुलना में गर्म बनाता है। गर्मी के महीनों में घाटी में पानी का तापमान 28–29 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच सकता है, तथा यह उस समय में कार्प की खेती के लिए एक उत्कृष्ट स्थान बन जाता है। इस पहल के रूप में भीमताल में डीसीएफआर के द्वारा अंगीकृत किए गए क्षेत्र के कई समुदायों में से हरिनगर गांव उनमें से एक था। आधारभूत जानकारी और क्षेत्र सर्वेक्षण से पता चला है कि मत्स्य पालक तालाब में 25 से 40 मिमी के आकार के छोटे फ्राई के साथ स्टॉक कर रहे थे, जिसमें विदेशी और भारतीय मेजर कार्प्स (आईएमसी) शामिल थे। क्षतिग्रस्त तालाब के तटबंध और पानी का रिसना एक बड़ी समस्याथी, जिसमें 2৽5–3৽0 फीटतकपानी की कम मात्रा, उपलब्ध घरेलू संसाधनों के साथ कभी–कभार आहार देना और वैज्ञानिक मत्स्य पालन का सीमित ज्ञान, जिसमें भोजन एवं स्वास्थ्य निगरानी शामिल थे आदि रिपोर्ट किए गए सामान्य मुद्दे थे। लाभार्थियों की क्षमता निर्माण के लिए मछली पालन पर प्रशिक्षण देना डी৽सीएफ৽आर৽ एक पहला प्रयास था।

शुरुआत में, तीन मत्स्य पालकों जलकृषि पर एक महीने की अवधि के लिए आईसीएआर–डीसीएफआर, भीमताल में भारतीय कृषि कौशल परिषद (एएससीआई) से प्रशिक्षण प्राप्त किया। बाद में, प्राकृतिक आपदाओं के दौरान तालाब की तैयारी, मछली पकड़ने से पहले और बाद में मछली के प्रबंधन एवं उसका मूल्य संवर्धन तथा मछली फार्मों को बचाने सहित विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षण दिया गया। जलवायु, कृषि– गतिविधि और मौसम को ध्यान में रखते हुए, किसानों की प्रतिक्रिया के आधार पर विषयों का चयन किया गया।ग्रामीणों के खाली समय में आपसी परिचर्चा होती थी। जिसने समय के साथ, मत्स्य पालकों की क्षमता, जागरूकता और दृष्टिकोण के सुधार में योगदान दिया।इनलेट और आउटलेट पाइप, पानी की गुणवत्ता निगरानी किट, जाल, आपात स्थिति के समय अतिरिक्त होल्डिंग टैंक, ऑक्सीजन सिलेंडर, त्वरित बाजार परिवहन के प्रावधान और उपयुक्त साइट चयन के मामले में नुकसान को कम करने के लिए अपनाए जाने वाले उपाय, नए तालाब निर्माण आदि की पहचान की गई।

कोविड–19 महामारी के दौरान, लगभग मिट्टी के चार तालाबों का निर्माण किया गया और लगभग सात की मरम्मत श्रमदान के माध्यम से की गई (गाँवों द्वारा समुदाय की सहायता करने और तालाब के वातावरण को बदलने और बदलने में योगदान करने के लिए एक स्वैच्छिक और सहयोगात्मक प्रयास)। अधिकांश तालाब मिट्टी के हैं और एक प्राकृतिक वातावरण प्रदान करते हैं। प्री–स्टॉकिंग मेनेजमैंट में, गोबर, सिंगल सुपरफॉस्फेट (एसएसपी), और सरसों के तेल की खली (एमओसी) को क्रमशः 5,000 किग्राध्हेक्टेयर, 50 किग्राध्हेक्टेयर और 700 किग्राध्हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया गया(तालाब के वास्तविक आकार से कम करके) ताकि प्राकृतिक मत्स्य खाद्य जीवों (फाइटोप्लांकटन और जोप्लांकटन) की वृद्धि को बढ़ावा देने और तालाब के वासस्थल को समृद्ध किया जा सके। इससे कृत्रिम फीड की लागत और उत्पादन लागत को कम करने में मदद मिली। उसके बाद, आईसीएआर–डीसीएफआर के केज–रियर्ड स्टंड कार्प फिंगरलिंग्स को इन तालाबों में 4–5 मछली प्रति एम2 की दर से स्टॉक किया गया। निदेशालय की अनुसूचित जाति उप–योजना (एससीएसपी) कार्यक्रम के तहत, गोद लिए गए अनुसूचित जाति (एससी) के मत्स्य

किसानों को 28% प्रोटीन के साथ पैलेटेड फीड 2–की नियमित आपूर्ति प्राप्त हुई। आय बढ़ाने में मदद करने के लिए लगभग उन्नीस सजावटी सुनहरी मछलियों को कार्प के साथ रखा गया। आत्मनिर्भरता को सशक्त बनाने और विकसित करने के लिए पानी के पाइप (HDPE), जाल और वर्तमान जाल को कवर करने के लिए भी प्रदान किया गया। लगभग 12–18 महीनों के अंत में, स्टॉक किए गए कॉमनकार्प और ग्रासकार्प की औसत वृद्धि 700 से 1100 ग्राम के बीच रही, जिसमें उत्पादन और उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार हुआ।

महत्वपूर्ण वैज्ञानिक गतिविधियों और सर्वोत्तम प्रबंधन प्रथाओं में शामिल हैं:

- तलाव पर्यावरण और भौतिक स्थितियों के बेहतर रखरखाव हेतु तकनीकी मार्गदर्शन के लिए मत्स्य किसानों के साथ नियमित बातचीत
- गुणवत्ता वाले विकसित कार्प अंगुलिकाओं की स्टॉकिंग
- तालाब–पर्यावरण के अनुकूलन हेतु खाद
- नियमित अंतराल पर तालाब की निगरानी
- गोल्ड फिश स्टॉकिंग के माध्यम से प्रजातियों का विविधीकरण
- संतुलित पेलेटेड फीड और घरेलू उप–उत्पादों का उपयोग
- चक्रीकरण, भण्डारण एव प्रग्रहण
- बाजार में आपूर्ति के लिए मांग पर आधारित मछली का उत्पादन
- वैज्ञानिक गतिविधियों के पूर्व, औसत उत्पादन 20–40 किग्रा/100 वर्ग मीटर था
- डेढ़ साल की पालन अवधि में 60–100 किग्रा/100 वर्गमीटर (2.4–2.5 गुना अधिक) की वृद्धि हुयी।

कम समय सीमा में ही बेहतर वृद्धि और अधिक आय की प्राप्ति मत्स्य किसानों को मछलीपालन में लगे रहने को प्रोत्साहित करती है। हालांकि, अध्ययन अवधि के दौरान, बार–बार अत्यधिक बाढ़ आना आम बात थी, जिसके परिणाम स्वरूप मछलियों की मात्रा में अचानक कमी आई।सक्रिय तैयारी जैसे कि एक मजबूत आउटलेट प्रणाली का प्रावधान, उच्चगुणवत्ता वाली मत्स्य प्रग्रहण जाल की उपलब्धता, और अन्य विशिष्ट व्यवस्था वाले स्थल, सीमित कृषि उत्पादन क्षमता वाले पर्वतीय क्षेत्रों में एक स्थायी आय–सृजन व्यवसाय के रूप में मछली पालन को स्थापित करने में सहायता करेंगी।

निष्कर्ष

पर्वतीय क्षेत्रों के कई इलाकों में मछली पालन की अपार संभावनाएं हैं। इन संभावित क्षेत्रों की पहचान और उनके विकास के लिए एक उपयुक्त वेज्ञनिक कार्य–कुशल योजना, स्थानीय जरूरतों और पर्यावरणीय परिस्थितियों को ध्यानमें रखते हुए, स्थानीय प्राकृतिक जल संसाधनों का उपयोग करके ग्राम स्तर पर एक विश्वसनीय आजीविका अवसर पैदा करने में मदद कर सकती है।

ICAR-DCFR

हरीनगर ग्राम में की गईं कुछ गतिविधियों की एक झलक

भीमताल के हरीनगर ग्राम में स्थित मिट्टी के तालाब

मत्स्य पालकों को विकसितकार्प मछली के बीजों का वितरण

मत्स्य पालक अपने तालाबों के लिए सजावटी मत्स्य बीज प्राप्त करते हुए

मूल्य सवंर्द्धित प्रशिक्षण और तालाब प्रबंधन पर मत्स्य पालकों के साथ बातचीत के माध्यम से कौशल क्षमता निर्माण

अरुणाचल प्रदेश में मत्स्य पालन व्यवसाय की संभावना

गिरीश चन्द्र, ए०के० त्रिपाठी, आर०सी० शाक्यवार एवं एस०एम० हुसैन
कृषि महाविद्यालय, केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय (इम्फाल)
पासीघाट अरुणाचल प्रदेश

परिचय

मछली जलीय पर्यावरण पर आश्रित जलीय जीव है तथा जलचर पर्यावरण को संतुलित रखने में इसकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह कथन अपने में पर्याप्त बल रखता है जिस पानी में मछली न हो तो निश्चित ही उस पानी की जल जैविक स्थिति सामान्य नहीं है। शरीर के पोषण तथा निर्माण में संतुलित आहार की आवश्यकता होती है। क्योंकि यह मांसपेशियों, तंतुओं आदि की संरचना करती है।मछलियों में लगभग 70 से 80 प्रतिशत पानी, 13 से 22 प्रतिशत प्रोटीन, 1 से 3.5 प्रतिशत खनिज पदार्थ एवं 0.5 से 20 प्रतिशत वसा पायी जाती है।

कैल्शियम, पोटैशियम, फास्फोरस, लोहा, सल्फर, मैग्नीशियम, तांबा, जस्ता, मैग्नीज, आयोडीन आदि खनिज पदार्थ मछलियों में उपलब्ध होते हैं जिनके फलस्वरूप मछली का आहार काफी पौष्टिक माना गया है। इनके अतिरिक्त राइबोफ्लोविन, नियासिन, पेन्टोथेनिक एसिड, बायोटीन, थाइमिन, विटामिन बी 12, बी 6 आदि भी पाये जाते हैं जो कि स्वास्थ्य के लिए काफी लाभकारी होते हैं। सम्पूर्ण विश्व में लगभग 20,000 प्रजातियां व भारतवर्ष में 2200 प्रजातियां पाये जाने की जानकारी हैं। प्रजातियां उपलब्ध हैं। अरुणाचल प्रदेश राज्य पूर्वोत्तर भारत का एक प्रमुख राज्य है। जहां पर अनेक नदियों में सियांग नदी में लगभग ५० मत्स्य प्रजातियां पायी जाती है।

अरुणाचल प्रदेश में पाये जाने वाले जलस्रोत जैसे– नदी, घाटी, झील, तालाब, पोखर, नालें एवं जलमग्न क्षेत्र आदि मत्स्य पालन के लिए बहुत अधिक अवसर प्रदान करता है पहाड़ी, घाटी एव ग्रामीण क्षेत्रों में व्यावसायिक मत्स्य पालन करने में बहुत कठिन काम होताहै। मछली उत्पादन में वृद्धि किये जाने हेतु अरुणाचल प्रदेश मत्स्य विभाग निरन्तर प्रयत्नशील है। अरुणाचल प्रदेश के पहाड़ी, घाटी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के तालाब, पोखरें और जल प्रणालियां बहुत उपलब्ध हैं जिनमें वैज्ञानिक रूप से मत्स्य पालन अपनाकर मत्स्य उत्पादन में वृद्धि करके लोगों को पोषक और संतुलित आहार उपलब्ध कराया जा सकता है साथ ही साथ अच्छा पैसा भी कमाया जा सकता है।

पालन हेतु उपयुक्त तालाब का चयन

जिस प्रकार खेती के लिए भूमि आवश्यक है उसी प्रकार मत्स्य पालन के लिए तालाब की आवश्यकता होती है। पहाड़ी, घाटी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न आकार–प्रकार के तालाब व पोखरें पर्याप्त संख्या में उपलब्ध होते हैं जो कि निजी, संस्थागत अथवा गांव सभाओं की सम्पत्ति होते हैं। इस प्रकार के जल संसाधन या तो निष्प्रयोज्य पड़े रहते हैं अथवा उनका उपयोग मिट्टी निकालने, मवेशियों को पानी पिलाने, समीपवर्ती कृषि योग्य भूमि को सींचने आदि के लिए किया जाता है। मत्स्य पालन हेतु 0.2 हेक्टेयर से 5.0 हेक्टेयर तक के ऐसे तालाबों का चयन किया जाना चाहिए जिनमें वर्षभर 8–9 माह पानी भरा रहे।

तालाबों को सदाबहार रखने के लिए जल की आपूर्ति का साधन होना चाहिए। तालाब में वर्षभर एक से दो मीटर पानी अवश्य बना रहे। तालाब ऐसे क्षेत्रों में चुने जायें जो बाढ़ से प्रभावित न होते हों तथा तालाब तक आसानी से पहुंचा जा सके। बन्धों का कटा–फटा व ऊँचा होना, तल का असमान होना, पानी आने–जाने के रास्तों का न होना, दूसरे क्षेत्रों से अधिक पानी आने–जाने की सम्भावनाओं का बना रहना आदि कमियां स्वाभाविक रूप से तालाब में पायी जाती हैं जिन्हें सुधारकर दूर किया जा सकता है। तालाब को उचित आकार–प्रकार देने के लिए यदि कही पर टीले आदि हों तो उनकी

मिट्टी निकालकर बन्धों पर डाल देनी चाहिए। कम गहराई वाले स्थान से मिट्टी निकालकर गहराई एक समान की जाती है। तालाब के बन्धें बाढ़ स्तर से ऊंचे रखने चाहिए। पानी के आने व निकास के रास्ते में जाली की व्यवस्था आवश्यक है ताकि पाली जाने वाली मछलियां बाहर न जा सकें और अवांछनीय मछलियां तालाब में न आ सके। तालाब का सुधार कार्य मॉह मार्च व अप्रैल तक अवश्य करा लेना चाहिए जिससे मत्स्य पालन करने हेतु समय मिल सके।

नये तालाब के निर्माण हेतु उपयुक्त स्थल का चयन विशेष रूप से आवश्यक है। तालाब निर्माणके लिए मिट्टी की जलधारण क्षमता व उर्वरकता को चयन का आधार माना जाना चाहिए। ऊसर व बंजर भूमि पर तालाब नहीं बनाना चाहिए। जिस मिट्टी में अम्लीयता व क्षारीयता अधिकहो उस पर भी तालाब निर्मित कराया जाना उचित नहीं होता है। इसके अतिरिक्त बलुई मिट्टी वाली भूमि में भी तालाब का निर्माण उचित नहीं होता है क्योंकि बलुई मिट्टी वाले तालाबों में पानी नहीं ठहर पाता है। चिकनी मिट्टी वाली भूमि में तालाब का निर्माण सदैव उपयुक्त होता है। इस मिट्टी में जल धारण क्षमता अधिक होती है। मिट्टी की पी–एच 6.5–8.0, आर्गेनिक कार्बन 1 प्रतिशत तथा मिट्टी में रेत 40 प्रतिशत, सिल्ट 30 प्रतिशत व क्ले 30 प्रतिशत होना चाहिए। तालाब निर्माण के पूर्व मृदा परीक्षण मत्स्य विभाग की प्रयोगशालाओं अथवा अन्य प्रयोगशालाओं से अवश्य करा लेना चाहिए। तालाब के बंधे में दोनों ओर के ढलानों में आधार व ऊंचाई का अनुपात साधारणतया 2:1 या 1.5:1 होना उपयुक्त है। बंधे की ऊंचाई आरम्भ से ही वांछित ऊंचाई से अधिक रखनी चाहिए ताकि मिट्टी पीटने, अपने भार तथा वर्षा के कारण कुछ वर्षों तक बैठती रहे। बंध का कटना वनस्पतियों व घासों को लगाकर रोका जा सकता है।

इसके लिए केले, पपीते एवं नारियल आदि के पेड़ बंध के बाहरी ढलान पर लगाये जा सकते हैं। नये तालाब का निर्माण एक महत्वपूर्ण कार्य है तथा इस सम्बन्ध में मत्स्य विभाग के अधिकारियों का परामर्श लिया जाना चाहिए।

मिट्टी पानी की जांच

मछली की अधिक पैदावार के लिए तालाब की मिट्टी व पानी का उपयुक्त होना परम आवश्यक है। जनपद स्तर पर मत्स्य विभाग की प्रयोगशालाओं एवं कृषि विज्ञानं केंद्रों द्वारा मत्स्य पालकों के तालाबों की मिट्टी पानी की निःशुल्क जांच की जाती है तथा वैज्ञानिक विधि से मत्स्य पालन करने के लिए तकनीकी सलाह दी जाती है।

तालाब का प्रबन्धन

मत्स्य पालन प्रारम्भ करने से पूर्व यह अत्यधिक आवश्यक है कि मछली का बीज डालने के लिए तालाब पूर्ण रूप से उपयुक्त होना चाहिए।

अनावश्यक जलीय पौधों का उन्मूलन

तालाब में आवश्यकता से अधिक जलीय पौधों का होना मछली उत्पादन के लिए हानिकारक है। यह पौधे पानी का बहुत बड़ा भाग घेरे रहते हैं जिसमें मछली के घूमने–फिरने में असुविधा होती है। साथ ही यह सूर्य की किरणों को पानी के अन्दर पहुंचने में भी बॉधा उत्पन्न करते हैं। परिणामस्वरूप मछली का प्राकृतिक भोजन उत्पन्न होना रूक जाता है और प्राकृतिक भोजन के अभाव में मछली की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त यह पौधे मिट्टी में पाये जाने वाले रासायनिक पदार्थों का प्रचूषण करके अपनी बढ़ोत्तरी करते हैं और पानी की पौष्टिकता कम हो जाती है।

मछली पकड़ने के लिए यदि जाल चलाया जाय तब भी यह पौधे रूकावट डालते हैं। सामान्यतः तालाबों में जलीय पौधे तीन प्रकार के होते हैं– एक पानी की सतह वाले जैसे जलकुम्भी, लेमना आदि, दूसरे जड़ जमाने वाले जैसे कमल इत्यादि और तीसरे जल में डूबे रहने वाले जैसे हाइड्रिला, नाजाज आदि। यदि तालाब में जलीय पौधों की मात्रा कम हो तो इन्हें जाल चलाकर या श्रमिक लगाकर जड़ से

उखाड़कर निकाला जा सकता है। अधिक जलीय वनस्पति होने की दशा में रसायनों का प्रयोग जैसे 2–4 डी सोडियम लवण, टेफीसाइड, हैक्सामार तथा फरनेक्सान 8–10 कि०ग्रा० प्रति हे० जलक्षेत्र में प्रयोग करने से जलकुम्भी, कमल आदि नष्ट हो जाते हैं। कुछ जलमग्न पौधे ग्रास कार्प मछली का प्रिय भोजन होते हैं अतः इनकी रोकथाम तालाब में ग्रास कार्प मछली पालकर की जा सकती है। उपयुक्त यही है कि अनावश्यक पौधों का उन्मूलन मानव–शक्ति से ही सुनिश्चित किया जाय।

अवांछनीय मछलियों की सफाई

पुराने तालाबों में बहुत से अनावश्यक जन्तु जैसे कछुआ, मेंढक, केकड़े और मछलियाँ जैसे सिंघरी, पुठिया, चेलवा, आदि एवं भक्षक मछलियां उदाहरणार्थ पढ़िन, टैंगन, सौल, गिरई, सिंघी, मांगुर, मोपी, मोबी आदि पायी जाती हैं जो कि तालाब में उपलब्ध भोज्य पदार्थों को अपने भोजन के रूप में ग्रहण करती हैं। मांसाहारी मछलियाँ कार्प मछलियों के बच्चों को खा जाती है जिससे मत्स्य पालन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः इनकी सफाई नितान्त आवश्यक है। अवांछनीय मछलियों का निष्कासन बार–बार जाल चलाकर या पानी निकालकर अथवा महुआ की खली के प्रयोग द्वारा किया जा सकता है। महुए की खली का प्रयोग एक हेक्टेयर क्षेत्रफल के एक मीटर पानी की गहराई वाले तालाब में 25 कुंटल की दर से किया जाना चाहिए। इसके परिणाम स्वरूप 6–8 घंटों में सारी मछलियां मरकर ऊपर आ जाती है जिन्हें जाल चलाकर एकत्र करके बाजार में बेचा जा सकता है। महुए की खली का प्रयोग तालाब के लिए दोहरा प्रभाव डालता है। विष के अलावा 15–20 दिन बाद यह खाद का भी कार्य करती है जिससे मछली के प्राकृतिक भोजन का उत्पादन होता है।

जलीय उत्पादकता हेतु चूने का प्रयोग

पानी का हल्का क्षारीय होना म्त्स्य पालन के लिए लाभप्रद है। पानी अम्लीय अथवा अधिक क्षारीय नहीं होना चाहिए। चूना जल की क्षारीयता बढ़ाता है अथवा जल की अम्लीयता व क्षारीयता को संतुलित करता है। इसके अतिरिक्त चूना मछलियों को विभिन्न परोपजीवियों के प्रभाव से मुक्त रखता है और तालाब का पानी उपयुक्त बनाता है। एक हेक्टेयर के तालाब में 250 कि०ग्रा० चूने का प्रयोग मत्स्य बीज संचय से एक माह पूर्व किया जाना चाहिए।

गोबर की खाद का प्रयोग

तालाब की तैयारी में गोबर की खाद की महत्वपूर्ण भूमिका है। इससे मछली का प्राकृतिक भोजन उत्पन्न होता है। गोबर की खाद, मत्स्य बीज संचय से 15–20 दिन पूर्व सामान्यतः 10–20 टन प्रति हे० प्रतिवर्ष 10 समान मासिक किश्तों में प्रयोग की जानी चाहिए। यदि तालाब की तैयारी में अवांछनीय मछलियों के निष्कासन के लिए महुआ की खली डाली गयी हो तो गोबर की खाद की पहली किश्त डालने की आवश्यकता नहीं है।

रासायनिक खादों का प्रयोग

सामान्यतः रासायनिक खादों में यूरिया 200 किलोग्राम, सिंगिल सुपर फास्फेट 250 कि०ग्रा० व म्यूरेट ऑफ पोटॉश 40 कि०ग्रा० अर्थात कुल मिश्रण 490 कि०ग्रा०प्रति हे० प्रतिवर्ष 10 समान मासिक किश्तों में प्रयोग किया जाना चाहिए। इस प्रकार 49 कि०ग्रा० प्रति हे० प्रतिमाह रासायनिक खादों के मिश्रण को गोबर की खाद के प्रयोग 15 दिन बाद तालाब में डाला जाना चाहिए। यदि तालाब के पानी का रंग गहराहराया गहरा नीला हो जाये तो उर्वरकों का प्रयोग तब तक बन्द कर देना चाहिए जब तक पानी का रंग उचित अवस्था में न आ जाये।

मत्स्य बीज की आपूर्ति

तालाब में ऐसी उत्तम मत्स्य प्रजातियों के शुद्ध बीज का संचय सुनिश्चित किया जाना चाहिए जोकि एक ही जलीय वातावरण में रहकर एक दूसरे को क्षति न पहुंचाते हुए तालाब की विभिन्न सतहों पर उपलब्ध भोजन का उपभोग करें तथा तीव्र गति से बढ़ें। भारतीय मेजर कार्प मछलियों में कतला, रोहू एवं नैन तथा विदेशी कार्प मछलियों में सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प एवं कामन कार्प का मिश्रित पालन

विशेष लाभकारी होता है। उत्तम मत्स्य प्रजातियों का शुद्ध बीज, मत्स्य पालन की आधारभूत आवश्यकता है। अरुणाचल प्रदेश मत्स्य विकास निगम की हैचरियों तथा मत्स्य विभाग के प्रक्षेत्रों पर उत्पादित बीज की आपूर्ति मत्स्य पालकों को आक्सीजन पैकिंग में तालाब तक निर्धारित सरकारी दरों पर की जाती है। अरुणाचल प्रदेश को मत्स्य बीज उत्पादन के क्षेत्र में मांग के अनुसार आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य मत्स्य बीज उत्पादन के निजीकरण पर विशेष बल दिया जा रहा है तथा निजी क्षेत्र में 10 मिलियन क्षमता वाली एक मिनी मत्स्य बीज हैचरी की स्थापना के लिए रू० 8.00 लाख तक बैंक ऋण व इस पर 10 प्रतिशत शासकीय अनुदान की सुविधा अनुमन्य है। मत्स्य पालक निजी क्षेत्रों में स्थापित छोटे आकार की हैचरियों से भी शुद्ध बीज प्राप्त कर सकते हैं।

मत्स्य बीज संचय व अंगुलिकाओं की देखभाल

तालाब में ऐसी मत्स्य प्रजातियों का पालन किया जाना चाहिए जो एक पर्यावरण में साथ–साथ रहकर एक दूसरे को क्षति न पहुंचाते हुए प्रत्येक सतह पर उपलब्ध भोजन का उपयोग करते हुए तीव्र गति से बढ़ने वाली हों ताकि एक सीमित जलक्षेत्र से अधिक से अधिक मत्स्य उत्पादन सुनिश्चित हो सके। भारतीय मेजर कार्प मछलियों में कतला, रोहू, नैन तथा विदेशी कार्प मछलियों में सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प व कामन कार्प का मिश्रित पालन काफी लाभकारी होता है। तालाब में मत्स्य बीज संचय से पूर्व यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि तैयारी पूर्ण हो गयी है और जैविक उत्पादन हो चुका है। मछली का प्राकृतिक भोजन जिसे प्लांक्टान कहते हैं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना चाहिए। तालाब के 50 लीटर पानी में एक मि० ली० प्लांक्टान की उपलब्धता इस बात का द्योतक है कि मत्स्य बीज संचय किया जा सकता है।

एक हे० जल क्षेत्र में 50 मि० मी० आकार से कम का 10,000 मत्स्य बीज तथा 50 मि० मी० से अधिक आकार की 5000 अंगुलिकाएं संचित की जानी चाहिए। यदि छह प्रकार की देशी व विदेशी कार्प मछलियों का मिश्रित पालन किया जा रहा हो तो कतला 20 प्रतिशत सिल्वर कार्प 10 प्रतिशत, रोहू 30 प्रतिशत, ग्रासकार्प 10 प्रतिशत, नैन 15 प्रतिशत व कामन कार्प 15 प्रतिशत का अनुपात उपयुक्त होता है। यदि सिल्वर कार्प व ग्रास कार्प मछलियों का पालन नहीं किया जा रहा है और 4 प्रकार की मछलियां पाली जा रही हैं तो संचय अनुपात कतला 40 प्रतिशत, रोहू 30 प्रतिशत, नैन 15 प्रतिशत व कामन कार्प 15 प्रतिशत होना लाभकारी होता है। यदि केवल भारतीय मेजर कार्प मछलियों का ही पालन किया जा रहा हो तो कतला 40 प्रतिशत, रोहू 30 प्रतिशत, नैन 30 प्रतिशत का अनुपात होना चाहिए। कामन कार्प मछली का बीज मार्च, अप्रैल व मई में तथा अन्य कार्प मछलियों का बीज जुलाई, अगस्त, सितम्बर में प्राप्त किया जा सकता है।

मृदा एवं जल का विस्तृत विवरण

मछली की अधिक पैदावार के लिए तालाब की मिट्टी व पानी का उपयुक्त होना परम आवश्यक है। ऐसी मिट्टी जिसमें सैण्ड 40 प्रतिशत तक, सिल्ट 30 प्रतिशत तथा क्ले 30 प्रतिशत हो एवं पी–एच 6.5 से 7.5 हो, मत्स्य पालन हेतु तालाब निर्माण केलिएउपयुक्त होती है। मिट्टी में सैण्ड का प्रतिशत अधिक होने पर तालाब में पानी रूकने की समस्या होती है। अधिक क्षारीय मृदा भी मत्स्य पालन हेतु उपयुक्त नहीं होती है। तालाब की मिट्टी में 50 मि० ग्रा० नाइट्रोजन तथा 6 मि० ग्रा० फास्फोरस प्रति 100 ग्राम मिट्टी एवं एक प्रतिशत आर्गेनिक कार्बन होना चाहिए। यदि उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं आर्गेनिक कार्बन सामान्य से कम है तो निर्धारित मात्राओं में जैविक व रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग करते हुए तालाब को मत्स्य पालन हेतु उपयुक्त बनाया जा सकता है।

तालाब के जल का रंग हल्का भूरा होना उपयुक्त होता है क्योंकि इस प्रकार के जल में मछली का प्राकृतिक भोजन प्लांक्टान उपलब्ध होता है। पानी हल्का क्षारीय होना उपयुक्त होता है। पानी कीपी–एच 7.5 से 8.5 घुलित आक्सीजन 5 मि०ग्रा० प्रति लीटर, स्वतंत्र कार्बन डाइ आक्साइड 0 से 0.5 मि०ग्रा० प्रति लीटर,

सम्पूर्ण क्षरीयता 150–250 मि०ग्रा० प्रति लीटर, क्लोराइड्स 30–50 मि०ग्रा० प्रति लीटर तथा कुल कठोरता 100–180 मि०ग्रा० प्रति लीटर तक होनी चाहिए। मत्स्य पालकों के तालाबों की मिट्टी–पानी का निःशुल्क परीक्षण मत्स्य विभाग की प्रयोगशालाओं द्वारा किया जाता है तथा वैज्ञानिक विधि सेमत्स्य पाल करने हेतु तकनीकी सलाह दी जाती है।

पूरक आहार

मछली की अधिक पैदावार के लिए यह आवश्यक है कि पूरक आहार दिया जाय। आहार ऐसा होना चाहिए जो कि प्राकृतिक आहार की भांति पोषक तत्वों से परिपूर्ण हो। साधारणतः प्रोटीनयुक्त कम खर्चीले पूरक आहारों काउपयोगकियाजानाचाहिए (मूंगफली,
सरसों, नारियल या तिल की महीन पिसी हुई खली और चावल का कनाया गेहूं का चोकर बराबर मात्रा में मिलाकर मछलियों के कुल भार का 1–2 प्रतिशत तक प्रतिदिन दिया जाना चाहिए। मछलियों के औसत वजन का अनुमान 15–15 दिन बाद जाल चलवाकर कुछ मछलियों को तौलकर किया जा सकता है। यदि ग्रास कार्प मछली का पालन किया जा रहा हो तो जलीय वनस्पति जैसे लेमना, हाइड्रिला, नाजाज, सिरेटोफाइलम आदि व स्थलीय वनस्पति जैसे नैपियर, वरसीम व मक्का के पत्ते इत्यादि जितना भी वह खा सके, प्रतिदिन देना चाहिए। पूरक आहार निश्चित समय व स्थान पर दिया जाय तथा जब पहले दिया गया आहार मछलियों द्वारा खा लिया गया हो तब पुनः पूरक आहार दें। उपयोग के अनुसार मात्रा घटाई–बढ़ाई जा सकती है। पूरक आहार बांस द्वारा लटकाये गये थालों या ट्रे में रखकर दिया जा सकता है। यदि पूरक आहार के प्रयोग स्वरूप पानी की सतह पर काई की परत उत्पन्न हो जाय तो आहार का प्रयोग कुछ समय के लिए रोक देना चाहिए क्योंकि तालाब के पानी में घुलित आक्सीजन में कमी व मछलियों के मरने की सम्भावना हो सकती है।

मत्स्य रोग, लक्षण एवं उनका निदान

फिश काटेल रोग

लक्षण

आरम्भिक अवस्था में पंखों के किनारों पर सफेदी आना, बाद में पंखों तथा पूंछ का सड़ना।

उपचार

पानी की स्वच्छता फोलिक एसिड को भोजन के साथ मिलाकर इमेक्विल दवा 10 मि० ली० प्रति 100 लीटर पानी में मिलाकर रोग ग्रस्त मछली को 24 घंटे के लिए घोल में (2–3 बार) एक्रिप्लेविन 1 प्रतिशत को एक हजार ली० पानी में 100 मि०ली० की दर से मिलाकर मछली को घोल में 30 मिनट तक रखना चाहिए।

बैंकियो माइकोसिस

लक्षण

गलफड़ों का सड़ना, दम घुटने के कारण रोगग्रस्त मछली ऊपरी सतह पर हवा पीने का प्रयत्न करती है। बार–बार मुंह खोलती और बंद करती है।

उपचार

प्रदूषण की रोकथाम, मीठे पानी से तालाब में पानी के स्तर को बढ़ाकर या 50–100 कि०ग्रा०/हे० चूने का प्रयोग या 3–5 प्रतिशत नमक के घोल में स्नान या 0.5 मीटर गहराई वाले तालाबों में 8 कि०ग्रा०/हे० की दर से कॉपर सल्फेट का प्रयोग करना।

अल्सर (घाव)

लक्षण

सिर, शरीर तथा पूंछ पर घावों का पाया जाना।

उपचार

5 मि०ग्रा०/ली० की दर से तालाब में पोटाश का प्रयोग, चूना 600 कि०ग्रा०/हे०मी० (3 बारसात–सात दिनों के अन्तराल में), सीफेक्स 1 लीटर पानी में घोल बनाकर तालाब में डाले।

ICAR-DCFR

ड्राप्सी (जलोदर)

लक्षण

आन्तरिक अंगो तथा उदर में पानी का जमाव।

उपचार

मछलियों को स्वच्छ जल व भोजन की उचित व्यवस्था, चूना 100 कि०ग्रा०/हे०की दर से 15 दिन के उपरान्त (2–3 बार)।

प्रोटोजोन रोग "कोस्टिएसिस"

लक्षण

शरीर एवं गलफड़ों पर छोटे–छोटे धब्बेदार विकार।

उपचार

50 पी०पी०एम० फोर्मीलिन के घोल में 10 मिनट या 1:500 ग्लेशियल एसिटिक एसिड के घोल में 10 मिनट इकथियो पथिरिऑसिस (खुजली का सफेद दाग)

लक्षण

अधिक श्लेष्मा का स्त्राव, शरीर पर छोटे–छोटे अनेक सफेद दाने दिखाई देना।

उपचार

7–10 दिनों तक हर दिन, 200 पी०पी०एम० फारगीलन के घोल का प्रयोग स्नान घंटे, 7 दिनों से अधिक दिनों तक 2 प्रतिशत साधारण घोल का प्रयोग।

ट्राइकोडिनिओसिस तथा शाइफिडिऑसिस

लक्षण

श्वसन में कठिनाई, बेचैन होकर तालाब के किनारे शरीर को रगड़ना, त्वचा तथा गलफड़ों पर अत्याधिक श्लेष स्त्राव, शरीर के ऊपर।

उपचार

2–3 प्रतिशत साधारण नमक के घोल में (5–10 मिनट तक), 10 पी०पी०एम० का पर सल्फेट घोल का प्रयोग, 20–25 पी०पी०एम० फार्मोलिन का प्रयोग।

मिक्सो स्पोरोडिऑसिस

लक्षण

त्वचा, मोनपक्ष, गलफड़ा और अपरकुलम पर सरसों के दाने।

उपचार

0.1 पी०पी०एम० फार्मोलिन में, 50 पी०पी०एम० फार्मोलिन में 1–2 बराबर सफेद कोष्ट मिनट डुबोए, तालाब में 15–25 पी०पी०एम० फार्मानिल हर दूसरे दिन, रोग समाप्त होनेतक उपयोग करें, अधिक रोगी मछली को मार देना चाहिए तथा मछली को दूसरे तालाब में स्थानान्तरित कर देना चाहिए।

कोसटिओसिस

लक्षण

अत्याधिक श्लेषा, स्त्राव, श्वसन में कठिनाई और उत्तेजना।

उपचार

2–3 प्रतिशत साधारण नमक 50 पी०पी०एम० फार्मोलिन के घोल में 5–10 मिनट तक या 1:500 ग्लेशियस एसिटिक अम्ल के घोल में स्नान देना (10 मिनट तक)।

लिगुलेसिस (फीताकृमि)

लक्षण

कृमियों के जमाव के कारण उदर फूल जाता है।

उपचार

परजीवी के जीवन चक्र को तोड़ना चाहिए इसके लिए जीवन चक्र से जुड़े जीवों घोंघेया पक्षियों का तालाब में प्रवेश वर्जित, 10 मिनट तक 1:500 फाइमलीन घोल में डुबोना, 1–3 प्रतिशत नमक के घोल का प्रयोग।

आरगुलेसिस

लक्षण

कमजोर विकृत रूप, शरीर पर लाल छोटे–छोटे ध्ब्बे इत्यादि।

उपचार

24 घण्टों तक तालाब का पानी निष्कासित करने के पश्चात 0.1–0.2 ग्रा०/लीटरकी दर से चूने का छिड़काव गौमोक्सिन पखवाड़े में दो से तीन बार प्रयोग करना उत्तम है। 35 एम०एल०साइपर मेथिन दवा 100 लीटर पानी में घोलकर 1 हे० की दर से तालाब में 5–5 दिन के अन्तर में तीन बार प्रयोग करे।

लरनिएसिस (एंकर वर्म रोग) मत्स्य

लक्षण

मछलियों में रक्त वाहिनता, कमजोरी तथा शरीर पर धब्बे।

उपचार

हल्का रोग संक्रमण होने से 1 पी० पी० एम० गैमेक्सीन का प्रयोगया तालाब में ब्रोमोस 50 को 0.12 पी० पी० एम० की दर से उपयोग।

मत्स्य पालन से उत्पादन एवं लाभ

यदि वैज्ञानिक विधि से मत्स्य पालन की जाय तो एक वर्ष में सिल्वर कार्प 1–1.5 किलोग्राम, कतला 1–1.5 किलोग्राम, रोहू 1 किलोग्राम, मृगल 3/4 किलोग्राम, कॉमन कार्प 1–1.2 किलोग्राम और ग्रास कार्प 1–1.5 किलोग्राम वजन की हो सकती है। तालाब से सभी मछलियों को एक साथ निकलने के बाद ले यदि थोड़ी –थोड़ी मछली निकली जाय तो उत्पादन अधिकहोगी,इस तरह एक एकण के तालाब से प्रतिवर्ष लगभग 1500 किलोग्राम मछली का उत्पादन बहुत ही आसानी से प्राप्त की जा सकती है और लगभग रु 50,000/– रूपये का शुद्ध लाभ होता है।

ICAR-DCFR

जल कृषि उत्पादन में न्यूट्रास्युटिकल्स का उपयोगः वरदान या अभिशाप

शामना एन.,नेहा कुरैशी एवं शिवाजी अरगडे
भाकृअनुपरि–केंद्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुंबई

समुद्री मछली उत्पादन में ठहराव के साथ–साथ मछली उपभोक्ताओं की बढ़ती मांग के कारण अधिक मात्रा में मछली उत्पादन को बढ़ाने के लिए जल कृषि पर दबाव बढ़ रहा है। दूसरी ओर घटती औसत प्रति व्यक्ति भूमि जोत और पानी की उपलब्धता के कारण, मछली उत्पादन और आय बढ़ाने के लिए मछली उत्पादक किसानों द्वारा गहन अंतर्देशीय जल कृषि उत्पादन प्रणाली को बड़े पैमाने पर अपनाया जा रहा है। इस प्रकार के सघन मछली पालन में आने वाले भीड़–मध्यस्थ तनाव से मछलियों की प्रतिरोधक क्षमता का दमन होता है। इससे मछलियों में रोग के आक्रमण का खतरा अधिक बढ़ जाता है। इसलिए, जल कृषि के तालाबों में रोग के प्रकोप को नियंत्रित करने के लिए एंटीबॉयोटिक दवाओं का इस्तेमाल दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है।

इन एंटीबॉयोटिक दवाओं के अनियंत्रित उपयोग से एंटीबॉयोटिक प्रतिरोध बैक्टीरिया का विकास होता है, इसके अलावा जलीय प्रणाली और मछली के ऊतकों में एंटीबॉयोटिक अवशेषों का संचय मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा कर सकता है। इसलिए, ऐसी समस्याओं से बचने के लिए इन एंटीबॉयोटिक दवाओं के विकल्प के रूप में न्यूट्रास्युटिकल्स का उपयोग एक आदर्श तरीका हो सकता है। न्यूट्रास्यूटिकल्स में मछली में प्रतिरक्षा–बढ़ाने और वजन बढ़ाने की क्षमता होती है। यह मछली के भोजन का सेवन बढ़ाने, मछली के तनाव–विरोधी और रोगाणुरोधी क्षमता को बढ़ाने में मदद करता है। यह मछली में बिना किसी हानिकारक प्रभाव के परिपक्वता को भी प्रेरित करता है।

जलीय कृषि उत्पादन में न्यूट्रास्युटिकल्स के उपयोग के मुख्य लाभ

1) मछली के वजन वृद्धि को बढ़ावा देने की क्षमता
2) प्रतिरक्षा प्रणाली में सुधार
3) फ़ीड का सेवन बढ़ाना
4) परिपक्वता को प्रेरित करना
5) रोगाणुरोधी क्षमता
6) तनाव से राहत
7) फ़ीड योजक के रूप में उपयोग
8) पर्यावरण के अनुकूल

न्यूट्रास्युटिकल्स का वर्गीकरण

अ) पारंपरिक न्यूट्रास्युटिकल्स

आयुर्वेद में स्पष्ट रूप से चिकित्सीय उद्देश्यों के लिए भोजन के महत्व का उल्लेख किया गया है। पारंपरिक रूप से उपयोग किए जाने वाले सरल, प्रातिक भोजन को पारंपरिक न्यूट्रास्यूटिकल्स के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, जबकि वाणिज्यिक उत्पाद जो पोषक तत्वों से समृद्ध होते थे या प्रजनन और संकरण जैसी नई तकनीकें विशिष्ट पोषक तत्वों को बढ़ाती हैं, उन्हें गैर–पारंपरिक न्यूट्रास्यूटिकल्स के तहत वर्गीकृत किया जाता है।

ब) रासायनिक प्रकृति आधारित न्यूट्रास्युटिकल्स

जलीय कृषि में प्रयुक्त होने वाले रासायनिक प्रकृति आधारित न्यूट्रास्युटिकल्स में बहिर्जात एंजाइम, अमीनो एसिड और पेप्टाइड्स, फैटीएसिड, पॉलीसेकेराइड्स, न्यूक्लियोटाइड्स, विटामिन, खनिज, फाइटोबायोटिक्स, प्रीबायोटिक्स, प्रोबायोटिक्स और सिनबायोटिक्स शामिल है।

न्यूट्रास्युटिकल्स मछली की वृद्धि को कैसे प्रभावित करते हैं?

न्यूट्रास्युटिकल्स एंटीऑक्सिडेंट से भरपूर होते हैं और इसके पूरक उपयोग से चयापचय दर और प्रति लेखन दर को बढ़ाकर मछली के वजन और आकार में वृद्धि होती है (तालिका 1)। पॉली सेकेराइड और ओलिगो सेकेराइड न्यूट्रास्यूटिकल्स फागोसाइटिक गतिविधि द्वारा मछली और शंख में प्रतिरक्षा प्रणाली में सुधार करते हैं। पेप्टि डोग्लाइकन ब्लैक टाइगर झींगा में प्रतिरक्षा–उत्तेजक प्रभाव प्रदर्शित करता है और आहार बीटा–ग्लूकन क्रस्टेशियन में बैक्टीरिया और वायरल संक्रमण के प्रतिरोध को दर्शाता है। मछली और शंख मछली उत्पादन में सैपोनिन, ग्लाइसीराइज़िन और एजाडिरेक्टिन का प्रतिरक्षा बढ़ाने में उपयोगी पाए जाते हैं।

तालिका 1. जलीय कृषि उत्पादन में अनुशंसित न्यूट्रास्युटिकल्स, उनकी खुराक और उनके प्रभाव

कार्यात्मक योजक / न्यूट्रास्युटिकल्स	खुराक	कार्य
एल–ट्रीप्टोफन	1.36 प्रतिशत	मृगल मछली में भीड़–भाड़ के तनाव को कम करना
एन–3 पूफा	2 प्रतिशत	कैटला में प्रतिरक्षा–मॉड्यूलेशन
न्यूक्लियोटाइड्स	0.8 प्रतिशत	एरोमोनस हाइड्रोफिला संक्रमण के खिलाफ प्रतिरक्षा
विटामिन सी	>100 मिलीग्राम / किलोग्राम	प्रतिरक्षा में बढ़ोतरी
विटामिन ई	150 मिलीग्राम / किलोग्राम	नाइट्राइट से होने वाले तनाव को कम करना
विटामिन ई	2000 मिलीग्राम / किलोग्राम	प्रजनन कार्य क्षमता बढ़ाना
पाइरिडोक्सिन / विटामिन बी6	100 मिलीग्राम / किलोग्राम	तनाव शमन
β–ग्लूकन	–	प्रतिरक्षा–मॉड्यूलेशन
बेवाइन लैक्टोफेरिन	1200 मिलीग्राम / किलोग्राम	लवणता से होने वाले तनाव को कम करना
लेवामिसोल	5 मिलीग्राम / किलोग्राम	फागोसाइटोसिस को बढ़ाना
माइक्रोबियल लेवन	1 प्रतिशत	प्रतिरक्षा–मॉड्यूलेशन
साइट्रिक एसिड	3 प्रतिशत	फाइटेज की गतिविधि बढ़ाना
सोडियम एल्गिनेट	2 ग्राम / किलोग्राम	तनाव विरोधी और प्रतिरक्षा उत्तेजना

निष्कर्ष

जल कृषि एक उभरता हुआ उत्पादक क्षेत्र है जो दुनिया की बढ़ती आबादी की प्रोटीन आवश्यकता और खाद्य सुरक्षा में योगदान कर सकता है। किन्तु दुनियाभर में झींगा और मछली उत्पादन में बीमारी का प्रकोप बड़ी मात्रा में झींगा और मछली की फसल को नष्ट कर रहा है। यह मुख्य रूप से मछली और झींगा में कम प्रतिरक्षा के कारण होता है। न्यूट्रास्युटिकल्स का मछली के विकास, प्रतिरक्षा, तनाव विरोधी क्षमता और समग्र उत्पादन वृद्धि पर काम करने का एक संभावित और महत्वपूर्ण संशोधन का विषय है। मानव स्वास्थ्य में न्यूट्रास्युटिकल्स का उपयोग बहुत अच्छी तरह से स्थापित है, पर अभी भी जल कृषि उत्पादन में न्यूट्रास्युटिकल्स का उपयोग प्रायोगिक चरण में ही है। मछली की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में न्यूट्रास्युटिकल्स के उपयोग को महत्व मिल रहा है, लेकिन मछली प्रजातियों के अनुसार विशिष्ट खुराक मानकीकरण, एक या एक से अधिक यौगिकों के सह क्रियात्मक प्रभाव, न्यूट्रास्युटिकल्स क्रिया के तंत्र और न्यूट्रास्युटिकल्स के कुशल वितरण मोड का अध्ययन अभी भी बाकि है ताकि एक्वाफीड में न्यूट्रास्युटिकल्स को शामिल किया जा सके। इसलिए, भविष्य में न्यूट्रास्युटिकल्स टिकाऊ और पर्यावरण अनुकूल जलीय कृषि उत्पादन के लिए एक वरदान साबित हो सकते हैं।

ICAR-DCFR

सजावटी मत्स्य पालन में व्यापार के अवसर

नवीन चंद्रा एवं मुकेश पांडेय

कृषि व्यवसाय प्रबंधन कॉलेज, गो.ब. पन्त कृ. एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर

परिचय

सजावटी मत्स्य पालन, जिसे जलीय कृषि के रूप में भी जाना जाता है, एक सीमित जलीय प्रणाली में पैदा होने वाले विभिन्न पात्रों की आकर्षक, रंगीन मछलियों के विपणन का व्यवसाय है। सजावटी मछलियों को जीवित रत्न भी कहा जाता है। विश्व स्तर पर 33,600 से अधिक मछली प्रजातियां और 2500 से अधिक प्रजातियां ओरनामेंटल मछली श्रेणी से संबंधित हैं। इनमें से अधिकांश सजावटी मछली प्रजातियाँ ताजे पानी में जीवित रहती हैं, पसंदीदा पानी की स्थिति नरम से हल्के से कठोर पानी होती है। सजावटी मछली पालन के लिए आवश्यक औसत तापमान 15 डिग्री से 28 डिग्री सेल्सियस है जिसमें हल्के क्षारीय का पीएच संतुलन होता है।

ओरनामेंटल के लिए सामान्य सीमेंट वाले टैंक, कांच के एक्वैरियम और मिट्टी के बर्तनों का उपयोग किया जा सकता है मछली पालन और किसी विशिष्ट टैंक की आवश्यकता नहीं है। भारत में ओरनामेंटल मछली उत्पादन बहुत अच्छा है। प्रजातियों की समृद्ध जैव विविधता की उपस्थिति, अनुकूल जलवायु परिस्थितियों और सस्ते श्रम की उपलब्धता के कारण संभावित। सजावटी मछली पालन शौकियों को समय पर अपने खेतों को शुरू करने के लिए प्रेरित कर सकता है और इस प्रकार स्वरोजगार के अवसर पैदा कर सकता है। भारत में सबसे अधिक सुसंस्कृत सजावटी मछलियाँ नियॉन टेट्रा, गप्पी, ऑस्कर, मोलीज, जेबरा डैनियोस, प्लेटीज, पर्ल गौरामी, स्वॉर्डटेल, बेट्टा, तोता मछली, एरोवाना मछली, एंजेलफिश आदि हैं।

अर्न्तष्ट्रीय बाजार

सजावटी मछलियों के लिए अर्न्तराट्रीय बाजार का मूल्य लगभग है 5.9 अरब अमेरिकी डॉलर। सालाना लगभग 200 मिलियन सजावटी मछलियां बेची जाती हैं, जिनमें से 80% मीठे पानी हैं और 20% समुद्री हैं। मीठे पानी में 90% बंदी नस्ल और समुद्री में हैं 99% जंगली पकड़े गए हैं। सजावटी मछली व्यापार में 120 से अधिक देश शामिल हैं और बाजार में सजावटी मछलियों की लगभग 1800 प्रजातियाँ उपलब्ध हैं जिनमें से 1000 मीठे पानी हैं। गप्पी प्रमुख प्रजाति है जिसके बाद नियॉन टेट्रा है। सिंगापुर, थाईलैंड, हांगकांग, जापान और मलेशिया मीठे पानी के प्रमुख आपूर्तिकर्ता हैं। दुनिया में सजावटी मछली हैं जबकि इंडोनेशिया, फिलीपींस और श्रीलंका प्रमुख हैं समुद्री सजावटी मछलियों के आपूर्तिकर्ता।

भारत में सजावटी मछली पालन के लिए घरेलू बाजार भारत अभी भी एक सीमांत स्थिति में है और कुल सजावटी मछली व्यापार का केवल 1% योगदान देता है। भारतीय समुद्री उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण के डेटा से पता चलता है कि भारत में दस लाख सजावटी मछली शौकीन हैं। भारत में, आंतरिक व्यापार लगभग 3.26 मिलियन अमेरिकी डॉलर और निर्यात व्यापार लगभग 0.38 मिलियन अमेरिकी डॉलर होने का अनुमान है। सजावटी मछली व्यापार की वार्षिक वृद्धि दर 14% है। इस व्यापार में प्रजनन, जीवित खाद्य संग्रह, व्यापार और निर्यात सहित लगभग 4000 लोग शामिल हैं। 20 पंजीकृत निर्यातक हैं।

प्रजातियों की समृद्ध विविधता और अनुकूल जलवायु, सस्ते श्रम भारत को के लिए उपयुक्त बनाते हैं ओमामेंटल मछली संस्कृति। सजावटी मछलियों की दो श्रेणियों का विपणन किया जा रहा है भारत–विदेशी और देशी। विदेशी किस्मों का घरेलू स्तर पर विपणन किया गया है और 99% के साथ हावी है। भारतीय बाजार में पहले से ही 288 विदेशी किस्में दर्ज की जा चुकी हैं। इन मीठे पानी की मछलियों की 200 से अधिक प्रजातियों को भारत के विभिन्न हिस्सों में पाला जाता है। केरल, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल

मुख्य रूप से भारत में सजावटी मछली पालन करते हैं। ज्यादातर देशी सजावटी मछलियों का निर्यात किया जाता है। पूर्वोत्तर राज्यों, पश्चिम बंगाल, केरल और तमिलनाडु में अत्यधिक क्षमता वाली देशी सजावटी मछलियां हैं। कोलकाता, मुंबई और चेन्नई प्रमुख निर्यात केंद्र हैं,

सजावटी मछली पालन के प्रमुख लाभ हैं:

1. कम प्रयास

सजावटी मत्स्य व्यवसाय सबसे आसान व्यवसायों में से एक है जिसे कोई भी कर सकता है। सजावटी मछली पकड़ने की खेती किसी के पिछवाड़े में मछली को पालने के समान है लेकिन बड़ी मात्रा में। सजावटी मत्स्य पालन व्यवसाय शुरू करने के लिए किसी को एक्वेरियम और मछली के भोजन से परे कुछ भी चाहिए। पहली बार उद्यमी बनने के लिए बड़े स्थान की भी आवश्यकता नहीं होती है। वास्तव में, कृषि–उद्यमशीलता के अवसरों का मूल्यांकन करते हुए, मछली पालन सम्मानजनक क्षमता वाले कम लागत वाले निवेश व्यवसायों में से एक के रूप में सामने आया।

2. कम कार्यबल की आवश्यकता

सजावटी मछली पालन व्यवसाय में इसकी कोई आवश्यकता नहीं है कुछ के साथ एक बड़ा कार्यबल और काम आसानी से किया जा सकता है। इसके अलावा, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है विशेष रूप से प्रशिक्षित श्रमिक। मछली के हस्तांतरण के दौरान ही शारीरिक कार्य की आवश्यकता होती है, अन्यथा कार्य प्रकृति में अधिक पर्यवेक्षी है।

3. उच्च मांग

दुनिया भर में सजावटी मछली की मांग बढ़ रही है। पहली बार उद्यमी अपना व्यवसाय शुरू कर सकते हैं और अपने कार्यस्थल में प्रदर्शित करने के लिए मछली खरीदने वाले कार्यालयों, दुकानों और रेस्तरां को लक्षित करके इसे बढ़ा सकते हैं। इस व्यवसाय में आकर्षक एक्वेरियम और मछली टैंक स्थापित करना शामिल है ताकि लोग उन्हें खरीदने का विरोध न कर सके। इसके अलावा, सुंदर मछलियों को तैरते और खेलते देखना बहुत सुकून देता है जो हर प्रकृति प्रेमी को पसंद आता है चाहे वह युवा हो या बूढ़ा। इस तरह का शौक रक्तचाप को सामान्य स्तर पर रखता है और इसलिए दिल से संबंधित बीमारियों को रोका जा सकता है। बच्चे एक्वेरियम में मछलियों की संख्या गिनकर न केवल नया ज्ञान और कौशल हासिल करते हैं, बल्कि प्रकृति के साथ लगाव की भावना भी विकसित करते हैं।

4. व्यापार की योजना

पहली बार उद्यमी विभिन्न विचारों का उपयोग कर सकता है और सफल सजावटी मछली व्यवसाय बनाने के लिए व्यवसाय योजना बना सकता है और अच्छा मुनाफा कमा सकता है इन सभी विभिन्न प्रकार की ओरनामेंटल मछलियों के बारे में पढ़ने के बाद, यदि आप सजावटी मछली पालन करने में रुचि रखते हैं, तो हमारे पास कुछ हैं ऐसे विचार जिनसे आप शुरुआत कर सकते हैं :

एक्वेरियम

एक्वेरियम उन व्यवसायों में से एक है जिनकी बहुत अधिक मांग है एक्वेरियम जो डिजाइन में सुंदर हैं और उनमें कुछ अनोखा है जो अधिक आकर्षक लगते हैं। एक्वेरियम व्यवसाय में, उद्यमी के पास ग्राहक के आधार पर विभिन्न विकल्प होते हैं, कोई भी व्यक्ति किसी भी कार्यालय या स्थान जहां अधिक लोग आते हैं, मे एक मछली को एक बड़े कस्टम एक्वेरियम में रखने के लिए एक छोटे फ्लास्क से सीधे निर्माण कर सकते हैं। होटल और रेस्तरां।

टैंक

प्रजनन के लिए टैंक बनाना भी ओरनामेंटल शुरू करने के लिए एक अच्छा और लाभदायक विचार हैमछली व्यवसाय। चूंकि ओरनामेंटल मछली व्यवसाय बहुत लाभदायक और प्रचलन में है, इसलिए पहली बबा उद्यमी ईंट की चिनाई, सीमेंट, मिट्टी और प्लास्टिक के टैंक बना सकते हैं क्योंकि वहां अच्छा हैउनके लिए बाजार में मांग। इन टैंकों का उपयोग विभिन्न ओरनामेंटल

मछलियों के प्रजनन के लिए किया जाता है और विभिन्न मछलियों को समायोजित करने और उनके प्राकृतिक आवास को दोहराने के लिए आकार में भिन्न होते हैं। मछलियों की संख्या बढ़ने के साथ ही टैंक का आकार बदलता रहता है।

मछली तालाब

यदि कोई उद्यमी बड़ी संख्या में सजावटी मछलियों वाले बड़े खेत की योजना बना रहा है, तो लेआउट अलग होना चाहिए। उस स्थिति में, मछली का तालाब बनाना बेहतर विचारों में से एक है क्योंकि एक ही स्थान पर प्राकृतिक तरीके से विभिन्न प्रकार की मछलियाँ उगाई जा सकती हैं। किसी नदी या झील के वातावरण की बारीकी से नकल करना भी संभव है। तालाब का स्थान इस तरह के रणनीतिक तरीके से होना चाहिए कि उद्यमी उन शहरों और कस्बों से निकटता का लाभ उठा सके जहां सजावटी मछली की मांग अधिक है। मछली का निर्यात उन देशों में भी किया जा सकता है जहां ओरनामेंटल मछलियों की मांग अधिक है। अधिकांश उद्यमी इस बात से अवगत नहीं हैं कि सजावटी मछली व्यवसाय एक आगामी क्षेत्र है और झींगा और झींगा जैसी अन्य संस्कृतियों की तुलना में कहीं अधिक आकर्षक है। इसके अलावा, पूंजी की आवश्यकता बहुत कम पूंजी होती है और जोखिम भी कम होता है। ग्रामीण लोगों को शिक्षित करना महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत की अधिकांश स्वदेशी मछलियाँ कम कीमत की हैं और जागरूकता की कमी के कारण खाद्य मछली के रूप में सेवन की जाती हैं। उद्यमियों को आकर्षित करने के लिए, बेहतर गुणवत्ता के ब्रूडर उपलब्ध कराना, वैज्ञानिक आहार प्रथाओं और प्रजनन जीव विज्ञान पर किसानों को प्रशिक्षित करना, बीमारियों के समय पर निदान में मदद करने के लिए वैन्स सिटी सेंटरों को मछली रोग विज्ञान प्रयोगशालाओं से लैस करना, बाजार की मांग, ग्राहक वरीयता पर वास्तविक समय की जानकारी का प्रसार करना महत्वपूर्ण है। और विभिन्न विपणन चैनल उपलब्ध हैं।

बदलते परिवेश में जीवन दायिनी कलसा (चाफी) नदी तन्त्र का पारिस्थितिकी तन्त्र

भावना गहलोत, रीनी जोशी, सुरेश चन्द्रा एवं देबाजित सर्मा
भाकृअनुपरि–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

परिचय

उत्तराखण्ड को देवभूमि के नाम से जाना जाता है। उत्तराखण्ड में पंचप्रयाग सप्रसिद्ध तीर्थ स्थलों के साथ–साथ स्थानीय निवासियों की ईमानदारी, देशभक्ति, कठोर परिश्रम की वजह से देवभूमि कहा जाता है। उत्तराखण्ड जिसे सामान्यतः देवभूमि के नाम से भी जानते है। अनेक ऐतिहासिक महत्वों के लिये विश्व प्रसिद्व है। हरे–भरे घने जंगलों के साथ कल–कल करती लगभग 30 नदियों की स्थली देवभूमि उत्तराखण्ड ही है। गंगोत्री एवं यमनोत्री से उद्‌गम होने वाली दो सबसे महत्वपूर्ण गंगा और यमुना की उत्पत्ति भी उत्तराखण्ड से होती है। विश्व का सबसे ऊँचे स्थान पर विराजमान तुंगनाथ मंदिर, चमोली जनपद में स्थित है। देवप्रयाग, कर्णप्रयाग, नन्दप्रयाग, रूद्रप्रयाग एवं विष्णुप्रयाग पर दो नदियों के मिलन स्थान पर मंदिर स्थित है जिन्हें, पंच प्रयाग के नाम से जाना जाता है। योग के लिये प्रसिद्व ऋषिकेश,भारत का सबसे ऊँचा बॉध टिहरी बॉध जिसकी समुद्र स्थल से ऊँचाई 260.5 मी. है। टिहरी गढ़वाल के भागिरथी नदी पर बना है, विश्व का पहला राष्ट्रीय पार्क जिसे जिम कार्बेट नेशनल पार्क कहते है, 1936 में बाद्यो के संरक्षण के साथ शुरू हुआ।

हिन्दू मान्यता के अनुसरण करने वाले नागरिकों के प्रसिद्व मंदिर हरिद्वार, ऋषिकेश, गंगोत्री, यमुनोत्री, भागिरथी, केदारनाथ उत्तराखण्ड में स्थित है। 7816 मी. की ऊँचाई वाली नन्दा चोटी देश में दूसरी सबसे बड़ी चोटी है। फूलों की द्याटी एवं नन्दा देवी अभ्याहरण यूनस्को की धरोहर में गिनी जाती है। साथ ही देश के सबसे प्रसिद्व दो पर्वतारोहण संस्थान मुन्स्यारी एवं उत्तरकाशी में स्थित है। इसके अतिरिक्त देश के आई.ए.एस एकेडमी तथा वन अनुसंधान संस्थान देहरादून में,तेल और प्राकृतिक गैस का मुख्य केन्द्र भी उत्तराखण्ड में स्थित है।

उत्तराखंड राज्य में नदियों, (अलकनन्दा, भागीरथी, मंदाकिनी, गंगा) झरनों, जलाशयों–नानकसागर, बैगुल जलाशय, धौरा जलाशय, तुमड़िया जलाशय, टिहरी जलाशय आदि प्रमुख है। राज्य सरकार को इन जलाशयों की निलामी से लगभग 5–6 करोड़/प्रतिवर्ष की आय अर्जित होती है, और झीलों (भीमताल, सातताल, नैनीताल, रूपकुंड, केदारताल, गरूड़ताल) के रूप में बहुत सारे जल संसाधन हैं। उत्तराखंड में नदियों के प्रमुख स्रोत पश्चिमी हिमालय के ग्लेशियर हैं जो नदियों को आकर्षक बनाते हैं। उत्तराखंड की नदी का ऊपरी भाग ठंडे जल संसाधनों से समृद्ध है। नदी के पारिस्थितिक तंत्र की प्रमुखता मत्स्य पालन करता है। उत्तराखण्ड राज्य के नैनीताल जिला जो कि विश्व प्रसिद्व दर्शनीय स्थल है, यहॉ पर स्थित एक खूबसूरत सा कस्बा है चॉफी,यह स्थान पर्यटन के लिहाज से भी काफी महत्वपूर्ण है,यहॉ पे बहती है कलसा नदी,जिसमें विभिन्न प्रकार की मछलियॉ,प्लवक बहुतायत में पाये जाते है,नदी में वर्षभर पानी रहता है,नदी का उद्‌गम है देवस्थल तथा अंत में यह नदी हल्द्वानी जाकर गौला नदी में मिल जाती है। चॉफी का पर्यावरण जैव विविधता के संवर्धन के लिहाज से काफी उपयोगी है। यह स्थान कृषि के लिये भी काफी उपयोगी है तथा इस स्थान के लोगो की मुख्य आजीविका का साधन भी कृषि है तथा कलसा नदी का इसमें भरपूर योगदान है। कलसा नदी में मुख्यतः स्नो ट्राउट (असेला) काली महासीर, लोच, बेरेलियस, गारा की प्रजातियॉं पायी जाती है। हमारे शोध कार्य के दौरान ऐसा पाया गया कि वर्ष 2019–2021 के बीच में बहुतायत में मछलियॉ (स्नो ट्राउट (असेला) काली महासीर, लोच, बेरेलियस, गारा)

ICAR-DCFR

की सभी प्रजातियॉ बहुत आसानी से मिला करती थी, परन्तु वर्ष 2021 अक्टूबर की आपदा तथा अत्यधिक वर्षा के कारण हमें 2021–2022 के दौरान कलसा नदी में अपेक्षाकृत बहुत कम प्रजातियॉ देखने को मिली, इसका सम्भवतः प्रमुख कारण नदी में काफी सिल्ट,बोल्डर आने की वजह से मछलियों के प्राकृतिक आवास को काफी हानि पहुॅची है, आस–पास के लोगो का अंधाधुंध मछली आखेटन, ब्लीचींग का अत्यधिक प्रयोग ने मछली, अंडे तथा मत्स्य अंगुलिकाओं को भी अत्यधिक क्षति पहुॅचायी है।

चाफी नदी तंत्र

चाफी गॉव

चाफी नदी–जैव विविधता

कलसा नदी की जैव विविधता की संरचना को हॉनि पहुँचने के कुछ मुख्य कारणों का विवरण इस प्रकार हैं:

- मौसम परिवर्तन, बेमौसमी बारिश, अत्यधिक वर्षा, भूस्खलन आदि।
- स्थानीय लोगों द्वारा कृषि उपज बढ़ाने के लिये प्रयोग किये जाने वाले हानिकारक कीटनाशक जो काफी लंबे समय तक मछली की आनुवंशिकता को भी प्रभावित करते है।
- औद्योगिकीकरण, सड़को का निर्माण, इससे निकलने वाला मलबा नदी का रूख बदलता है, जिससे मछलियों को अपने प्राकृतिक आवास नहीं मिल पाते।
- ब्लीचिंग पाउडर, करंट का प्रयोग आखेटन के लिये करना।

हमे स्थानीय लोगों से बात करने पर यह पता चला कि यहॉ पर टमाटर, गोभी, मौसमी फल एवं सब्जियों की अच्छी उपज है, लोग यहॉ पर फसल उपज बढ़ाने के लिये जैविक कीटनाशकों का भी सहारा लेते है,वर्षापात में लिचिंग द्वारा कीटनाशकों के नदी में प्रवेश की संभावना बढ जाती है,, जिसका सीधा असर नदी के परिस्थितिकी तंत्र में देखा जा सकता हैं।

नदी में मत्स्य संवर्धन (संपदा) बढ़ाने के लिये कुछ उपायोगी उपाय

- स्थानीय लोगों को नदी की महत्ता को समझना तथा उसके प्रति जागरूक करना।
- कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से स्थानीय लोगों को अवगत करवाना तथा इसके दूरगामी हानिकारक प्रभावों को बताना।
- अनावश्यक तथा बेलगाम आखेटन को कम करवाना।
- लोगों को जैविक खेती की तरफ आकर्षित करना।
- अपने गॉव तथा नदी के लिये कुछ नियमों को बनाना तथा लागू करवाना।
- नदी के छोटे–छोटे स्ट्रेच जो मछलियों के प्रजनन प्रक्षेत्र है,उनको लोगो के हस्तक्षेप से दूर रखना।

- गॉव के समूहों को नदी की देखभाल का दायित्व देना और इन्हें प्रतिबंधित क्षेत्र घोषित करना।
- मछली के प्रजनन काल में मछली पकड़ने पर पूर्णतया रोक लगवाने से।
- मत्स्य सवर्धन के लिये घर तथा खेत के आस–पास छोटे तालाब बनाकर।
- ब्लीचिंग तथा करंट के लिए सख्त कानून लागू करवाना।

निष्कर्ष

हमारे पारिस्थितिकी तंत्र में हर एक जीव का महत्वपूर्ण स्थान है, चाहे वह एक सूक्ष्म जीव हो या फिर बड़ी मछलियॉं, जलीय पारिस्थिकीय तंत्र में मछली की भूमिका को हम नकारा नहीं जा सकता है इसलिये हमें वैज्ञानिक तथा जैविक तरीको को अपनाकर मत्स्य संवर्धन करना है तथा आने वाली पीढ़ी के लिये एक सुंदर तथा सजग वातावरण को संजोकर रखने से हमारी सुरक्षा के साथ–साथ हमारी जीवन दायनी नदियों का अस्तित्व भी बचा रहेगा।

देश के सबसे बड़े भू–भाग में बोली जाने वाली
हिन्दी राष्ट्र भाषा पद की अधिकारिणी है।
सुभाष चन्द्र बोस

ICAR-DCFR

कृषि

मखाना संवर्द्धन (मोनो एवं पॉलीकल्चर)

नेहा सनवाल
मत्स्य पालन कॉलेज,जीबी पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर

सार

यह लेख एक तालाब में दो फसलों मछली और मखाने को एक साथ मिलाने की तकनीक से संबधित है। इस तरह के पर्यावरण के अनुकूल एकीकरण में दोनों फसलों को परस्पर लाभ होता है। मखाने की फसल के विघटित पौधे कार्बनिक पदार्थ बनाते है, जो प्लवक की आबादी को बढ़ाने के लिए पानी में पोषक तत्व छोड़ते है। ऑर्गेनिक डिटरिटस न केवल नीचे रहने वाली मछलियों (मृगल और कॉमन कार्प) के लिए भोजन के रूप में कार्य करता है, बल्कि जूप्लैंकटन अर्थात् जन्तु प्लवक, कीट लार्वा, नेमाटोड और गैस्ट्रोपोड की वृद्धि विकास के लिए एक उपयुक्त आधार प्रदान करता है। मछलियॉ मखाना कीटों के नियंत्रण में योगदान करती है। इनका मल मखाने की फसल के लिए जैविक खाद का काम करता है। मखाना पानी की सतह पर आवरण के रूप में कार्य करता है और जिससे तालाब के ढके हुए क्षेत्रों में आक्सीजन की मात्रा घुल जाती है।

परिचय

मखाना यूरियाल फेरॉक्स बारहमासी जलीय जड़ी बूटी है। विशाल तैरते पत्तों वाला पानी का पौधा। यह उथले पानी 0.2–2.0 मीटर गहरे में उगता है। इसमें मोटी जड़ समूहों द्वारा मिट्टी में गहराई से जुड़े हुए एक प्रकंद तना होता है। पत्तियाँ ऊपर की ओर हरी और नीचे की ओर बैंगनी लाल होती है। पत्तियॉ कांटेदार,अंडाकार या गोलाकार होती है ,जिनका व्यास 0.2–1.0 मीटर होता है। यह दक्षिण–पूर्व और पूर्वी एशिया के उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों, यूरिल फेराक्स की जंगली आबादी जापान, कोरिया, तत्कालीन यूएसएसआर, उत्तरी अमेरिका, नेपाल, बांग्लादेश और भारत के कुछ हिस्सों तक व्याप्त है। उत्तर बिहार मे कुल जल विस्तार क्षेत्र का लगभग 42% मखाना उगाने के लिए उपयुक्त है। अधिकांश किसान एक फसल के रूप में मखाने की खेती कर रहे है। मखाने की फसल की कटाई के बाद हवा में सांस लेने वाली कुछ मछलियॉ (मगुर, सिंघी, कवाई, गोराई, मड ईल) खरपतवार मछलिया और एकमात्र क्रस्टेशियन (मैक्रोब्राकियम लैमरी) जो आमतौर पर धान के खेतों के माध्यम से तालाबों में प्रवेश करती हैं, को भी किसानों द्वारा अतिरिक्त पशु फसल के रूप में प्राप्त किया जा रहा है।

तालाब में मखाने का चक्र

मछली की फसल चक्र को विभिन्न रूप को वर्गीकृत किया जा सकता है :

- मखाने के बाद मछली की द्वैतियक फसल
- इसकी खेती की अवधी के दौरान मखाने के साथ समवर्ती सम्वर्द्धन (केन्द्रीय रिक्त स्थान, परीधीय रिक्त स्थान)
- सतत् मत्स्य पालन, मछली को विशेष रूप से तैयार तालाबों में अथवा मखानों के पत्तों में स्थानातरित करना

संवर्द्धन विधि

- अत्यधिक पोषक तत्वों की मोटी परत वाले कीचड़युक्त बारहमासी तालाबों में अक्टूबर–नवंबर के समय उगाया जाता है।
- बुवाई के समय 90–100 किलोग्राम बीज/हेक्टेयर की आवश्यकता होती है, जबकि तालाबों में केवल 35 किलोग्राम बीज/हेक्टेयर की आवश्यकता होती है जो कि सलाना बोया जाता है।
- नए तालाबों में बीजो को तालाब की सतह पर प्रसारित किया जाता है जो धीरे–धीरे नीचे तक डूब जाता है और अंत में मिट्टी में अंकुरित हो जाता है।
- अंकुरित बीज फरवरी से मार्च मे अंकुरित होते है।
- इस समय थिनिंग ऑपरेशन किया जाता है और दो पौधों के बीच लगभग 1 मीटर का अंतर रखते हुए उपलब्ध पानी के स्थान पर पौधे रोपे जाते है।

- अप्रैल–मई के दौरान,पानी की पूरी सतह विशाल, फैली हुई, कांटेदार, अण्डाकार पत्तियों से आच्छादित हो जाती है जो पानी की सतह पर तैरती है।
- फल जून में दिखाई देते है। परिपक्क फल अगस्त–सितंबर के आसपास फट जाते हैं और बीज तालाब के तल पर बिखर जाते हैं।
- इस दौरान किसान पत्तों को टुकड़ों में काटकर सड़ने के लिए फेंक देते है।
- नीचे बिखरे हुए बीजों को सितंबर–अक्टूबर के दौरान मैन्युअल रूप से एकत्र किया जाता है।

  बीजों कई ढेरों में जमा करके एकत्रित किया जाता है।

पॉलीकल्चर

एक हेक्टेयर गहराई के क्षेत्र को कवर करने वाले तालाब में कतला, रोहू, मृगल, कॉमन कार्प,सिल्वर कार्प और ग्रास कार्प के कुल 3500–4000 फिंगरलिंग का अनुपात क्रमशः 20:15:25:30:5:5 होना चाहिए। अन्य मछलियों को रखने और मखाना के बीज बोने के 6 महीने बाद ग्रास कार्प का स्ट्रॉक किया जाना चाहिए ताकि प्रचंड फाइटोफेगस ग्रास कार्प द्वारा मखाना की पौध को पोषण न मिले। इस समय तक मखाना के पौधे की पतली अवस्था समाप्त हो चुकी होती है,जिसे ग्रास कार्प आसानी से खा सकती है। 1 वर्ष के बाद ही मछली की पैदावाद प्राप्त करनी चाहिए। इसी प्रकार से मखाने की भी कटाई की जानी चाहिए।

लाभ

- मखाना तालाबों में मछली की शुरूआत से आम तौर पर दोनों फसलों को लाभ हो सकता है।
- जलाशय (तालाब) का सबसे किफायती उपयोग प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि एक ही तालाब का उपयोग मखाना और मछली दोनों के उत्पादन के लिए किया जा सकता है।
- इसके लिए बहुत कम अतिरिक्त श्रम की आवश्यकता होती है क्योंकि मखाना और मछली दोनों की देखभाल एक ही समय में की जा सकती है। इसके अतिरिक्त श्रम लागत की भरपाई निराई के लिए श्रम पर बचत से की जा सकती है,क्योंकि कुछ मछलियॉ खरपतवारों को कम करती है।
- सवर्द्धित तालाब में दिए जाने वाले आहार की तुलना में मछली को दिए जाने वाले परिपूरक आहार की मात्रा कम होगी तथा मत्स्य आहार की मात्रा तालाब की संस्कृति में मछली को दिए जाने की तुलना में कम होगी और अप्रयुक्त फीड़ जैविक खाद के रूप में कार्य करके तालाब की उर्वरता को बढ़ाता है।
- मछलियॉ हानिकारक जीवों जैसे कीड़े और उनके लार्वा को खाती है। मखाना की उपज कीटों के कम दबाव और जैविक उर्वरकों के कारण बढ़ेगी।
- मखाना–मछली पालन जलीय मेजबानों जैसे मच्छरों के लार्वा (मलेरिया) और मीठे पानी के मोलस्क (बिलहार्जिया) को खिलाकर जल जनित रोगो के नियंत्रण में योगदान दे सकता है जिसके फलस्वरूप पानी का बेहतर वातन और मखाना फसल होगी। मछली का मल अतिरिक्त जैविक उर्वरक के रूप में कार्य करेगा।

हानि

- यदि बहुत जल्दी बोया जाता है,तो मछलियॉ युवा मखाने के पौंधों को नुकसान पहुॅचा सकती है।
- मखाने की फसल को नुकसान से बचाने के लिए मछली की प्रजातियों को सावधानी से चुना जाना चाहिए।
- मखाने की विशाल फैली हुई पत्तियॉ पानी की सतह को मई से अगस्त तक घनी छाया में रखती हैं। इस अवधि के दौरान चराई श्रृंखला बाधित हो जाती है क्योंकि सूर्य का प्रकाश पानी की सतह के अंदर प्रवेश नहीं करेगा। ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है जिससे भारतीय और विदेशी कार्प्स के लिए पर्यावरण प्रतिकूल हो जाता है।

परिणाम

सामान्य परिस्थितियों में तलछट में रहने वाली मछलियों की वृद्धि दर सबसे अधिक होती है

सिल्वर कार्प –सामान्य
कार्प–नैन–कतला–ग्रासकार्प–रोहू

लेकिन नियंत्रित तालाबों में सतही फीडरों की वृद्धि दर तलछट में रहने वाली प्रजातियों की तुलना में अधिक होती है–

नैन– सामान्य कार्प –सिल्वर
कार्प–कतला–रोहू–ग्रास कार्प

एक ही तालाब से दो फसलों के उत्पादन मखाने के साथ एकीकृत मछली पालन एक तालाब का सबसे अच्छा आर्थिक उपयोग है।

निष्कर्ष

फसल विविधीकरण की यह प्रक्रिया दोनों में से किसी एक फसल के खराब होने में से किसी एक फसल के खराब होने के जोखिम को भी कम करती है। यह आगे जलीय उत्पादकता को बढ़ाता है और मछली किसानों की आर्थिक स्थिति को बढ़ाने में मदद करता है। ऐसी प्रणाली में दोनों घटक (मछली और मखाना) परस्पर लाभान्वित होते है। मखाना के पौधे प्लवक और पेरिफाइटन के विकास और प्रजनन के लिए यांत्रिक सहायता और उपयुक्त आधार प्रदान करते है। इससे मछलियों के अवैध शिकार से भी बचाव होता है। कार्बनिक पदार्थो का अपघटन प्राकृतिक मछली खाद्य जीवों के रूप में प्लवक,कीडे,नेमाटोड और गैस्ट्रोपोड़ के उत्पादन के माध्यम से जलीय खाद्य श्रृंखला को जीवंत करता है। बदले में, मछलियों का मल पदार्थ प्रणाली की पोषक स्थिति को जोड़ता है। ये मछलियाँ एलोफिला एसपीपी, प्ली लिटुएटा, गैलेरूसेला बिरमानिका और फ्रैंकलिनिएला इंटोन्सा जैसे कीटों को खिलाती है जो गंभीर कीटों के रूप में कार्य करते है। एकीकरण की यह प्रणाली, यदि मछली किसानों द्वारा बड़े पैमानें पर अपनाई जाती है,तो जलीय में बेहतर उत्पादकता प्राप्त करने में मदद मिलेगी।

शिक्षा की जड़ कड़वी है
पर उसके फल मीठे है।
अरस्तू

धान में सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रबंधन

संतोष कुमार सिंह[1] एवं आराधना कुमारी[2]
[1]राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार
[2]पादप कार्यिकी, कृषि महाविद्यालय, गंज बासोदा, जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश

किसान भाईयों जैसा कि आप जानते हैं कि फसल उत्पादन में मुख्य पोषक तत्वों के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी काफी अहम भूमिका है। पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्व की आवश्यकता मुख्य पोषक तत्वों की तुलना में काफी कम है, परंतु इनकी कमी होने से पौधों का विकास नहीं हो पाता है तथा आपको उपज में काफी नुकसान उठाना पड़ता है। अतः सूक्ष्म पोषक तत्वों के समुचित प्रबंधन करना काफी आवश्यक है। सूक्ष्म पोषक तत्वों में जस्ता, ताम्बा, लोहा, मैंगनीज, निकल, बोरोन, मॉलिब्डेनम तथा क्लोरीन शामिल हैं। मृदा सर्वेक्षण द्वारा यह बात सामने आई है कि बिहार की मिट्टियों में जस्ता तथा बोरोन की काफी कमी है। लोहे, ताम्बा तथा मैंगनीज की कमी कम है। अतः इनका प्रबंधन आगामी धान की फसलों में कैसे करेंगे इसकी जानकारी आपको इस लेख के माध्यम से देने की कोशिश की गयी है।

जस्ता की कमी का उपचार

मृदा में जस्ता के अनुप्रयोग से जस्ता की कमी का प्रभावी रूप में निराकरण कर सकते है। उच्च पीएच मान की मृदा में पृष्ठ अनुप्रयोग मृदा में मिलाने से अधिक प्रभावी होता है। सामान्यतः जिंक सल्फेट का जस्ता के स्रोत के रूप में उपयोग किया जाता है (परन्तु जिंक आक्साइड सस्ता है)। निम्नलिखित उपाय अलग–अलग अथवा सामूहिक रूप में प्रभावी हैं, परन्तु इनको कमी के लक्षण दिखने पर तत्काल क्रियान्वित करना चाहिए।

- यदि खेत में जस्ता की कमी के लक्षण दिखाई दे तो 10.25 किग्रा जिंक सल्फेट मोनो हाइड्रेट अथवा 20.40 किग्रा जिंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट प्रति हेक्टेअर की दर से मृदा के सतह पर बिखेर दें। एक समान अनुप्रयोग हेतु जिंक सल्फेट (25 प्रतिशत) कोरेत (75 प्रतिशत) के साथ मिलाकर उपयोग करें।
- 0.5.1.5 किग्रा जस्ता प्रति हेक्टेअर का पर्णीय छिड़काव (उदाहरणः 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट विलयन 200 लीटर जल में प्रति हेक्टेअर) खड़ी फसल में जस्ता की कमी के आकस्मिक उपचार हेतु करें।

तॉबा की कमी का उपचार

- तॉबा की कमी का शीघ्र निराकरण हेतु तूतिया (कापर सल्फेट, ठोस या द्रव रूप में) अनुप्रयोग करें (1.5 किग्रा तॉबा प्रति हे0)। मृदा में अनुप्रयोग के लिए महीन तूतिया बिखेर दें अथवा पंक्ति में अवस्थापित करें अथवा आधारिक अनुप्रयोग कर मिला दे।
- कल्ले निकलने से बाली सृजन अवस्था के मध्य तॉबा का पर्णीय छिड़काव कर सकते है, परन्तु इससे बढ़ते हुए ऊतकों में पत्तियॉ झुलस सकती है।
- तॉबा का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग न करें, क्योंकि तॉबा की कमी तथा अधिकता के मध्य परिसर बहुत कम होता है।
- मृदा में तॉबा की दीर्घकालीन निर्वहन हेतु तॉबा की कमी वाली मृदा में कापर आक्साईड (CuO) अथवा तूतिया (5–10 किग्रा तॉबा प्रति हे0 5 वर्ष के अन्तराल पर) प्रयोग करें (विखेर कर मृदा में मिला दें)।

लोहे की कमी का उपचार

लोहे की कमी का निराकरण सबसे कठिन तथा महंगी सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी निराकरण प्रक्रिया है। मृदा में अकार्बनिक लोहे के स्रोतों का अनुप्रयोग प्रायः लोहे की कमी को नियंत्रण करने में अप्रभावी होता है, यदि उन्हें अत्यधिक मात्रा में अनुप्रयोग न किया जायें। लोहे की कमी को इस प्रकार उपचारित करना चाहिए। ठोस फेरस सल्फेट का प्रयोग धान की

पंक्तियों के मध्य में अथवा बिखेरकर करें (अधिक मात्रा में प्रयोग की आवश्यकता होगी) फेरस सल्फेट (2.3 प्रतिशत घोल) अथवा लौह–चिलेट का पर्णीय प्रयोग करें। पौधे में लोहे की कम सचलता होने के कारण नई पादप वृद्धि के समर्थन हेतु दो सप्ताह के अन्तराल पर (कल्लों के विकास के समय से प्रारंभ) 2 से 3 बार प्रयोग करें।

मैंगनीज की कमी का उपचार

मैंगनीज की कमी का उपचार मैंगनीज के पर्णीय छिड़काव अथवा अम्लीय प्रारंभिक उर्वरकों के साथ मैंगनीज के पंक्ति अवस्थापन द्वारा किया जा सकता है। मैंगनीज की कमी निम्न प्रकार उपचारित की जा सकती है।

- मैंगनीज सल्फेट अथवा महीन पिसा हुआ मैंगनीज आक्साइड (5–20 किग्रा मैंगनीज प्रति हेक्टेअर) का धान की पंक्तियों के किनारे प्रयोग करें।
- मैंगनीज की कमी के शीघ्र उपचार हेतु मैंगनीज सल्फेट (1–5 किग्रा प्रति हेक्टेअर 200 लीटर जल में) का पर्णीय छिड़काव करें।
- चिलेट कम प्रभावी होते है, क्योंकि लोहा तथा तॉबा मैंगनीज को विस्थापित कर देते हैं।

बोरान की कमी का उपचार

- बोरान की कमी का शीघ्र उपचार हेतु बोरान को विलेय रूप में (सुहागा, बोरेक्स) का (0.5.3 कि.ग्रा. बोरान प्रति हे.) प्रयोग करें। फसल बोने से पूर्व बिखेरकर मिट्टी में मिला दें अथवा धान की वानस्पतिक वृद्धि के समय खड़ी फसल में पर्णीय छिड़काव करें।
- बोरेक्स एवं उर्वरक बोरेट को अमोनियम उर्वरकों के साथ नहीं मिलाना चाहिए, क्योंकि उससे अमोनिया का वाष्पीकरण हो जाएगा।

जैव खाद, पुआल तथा हरी खाद का प्रबंधन

जहाँ तक संभव हो, धान की फसल के पोषक तत्वों की आवश्यकता अंशतः पूरी करने के लिए तथा दीर्घकाल तक मृदा की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए पोषक स्रोतों जैसे अहाता खाद, पुआल तथा हरी खाद का उपयोग खनिज उर्वरकों के साथ करना चाहिए। पुआल ही एक मुख्य जैवांश पदार्थ है जो अधिकांशतः धान उगाने वाले कृषकों को उपलब्ध होता है। धान की फसल द्वारा उद्ग्रहण की गई मात्रा का लगभग 40% नाइट्रोजन, 30.35% फास्फोरस, 80.85% पोटाश तथा 40.50% गंधक फसल के पकने पर पुआल एवं ठूँठ में पाया जाता है। कई क्षेत्रों में निष्कासित पोषक तत्वों को संतुलित करने के लिए पर्याप्त मात्रा में जैव खाद उपलब्ध नहीं होता है, तथा खनिज उर्वरकों की तुलना में उनसे प्राप्त पोषक तत्वों के समतुल्य मात्रा जैव खाद से प्रदान करना महंगा होता है।

पुआल का प्रबंधन तथा जुताई

पुआल एवं ठूँठ को मृदा में मिलाने पर फसल द्वारा उद्ग्रहण किये गये अधिकांश पोषक तत्व मृदा में वापस आ जाते है तथा दीर्घ समयावधि में मृदा पोषक तत्व भंडार को संरक्षित करने में सहायता करते है। इनका कम समय में उपज पर प्रभाव प्रायः कम होता है (पुआल को निष्कासित करने अथवा जलाने की तुलना में), लेकिन दीर्घकालीन लाभ उल्लेखनीय होता है। जहाँ खनिज उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है तथा पुआल को मृदा में मिलाया जाता है, मृदा में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश एवं सिलिका के भंडार अनुरक्षित रहते हैं अथवा उसमें वृद्धि होती है। जब पुआल एवं ठूँठ को जुताई के समय मिलाया जाता है तो अस्थाई तौर पर नाइट्रोजन स्थिरीकरण हो जाता है। इसलिए पुआल मिलाने के 2.3 सप्ताह बाद धान की रोपाई करना चाहिए। विकल्प के रूप में पुआल के साथ यूरिया नाइट्रोजन का प्रयोग करना चाहिए।

फसल के अवशेष को जलाने से लगभग संपूर्ण नाइट्रोजन 25 प्रतिशत फास्फोरस, अप्रत्यक्ष रूप से अंतः स्रवण द्वारा 20 प्रतिशत पोटाश तथा 5.60 प्रतिशत गंधक की क्षति होती है। जहाँ गंधक रहित उर्वरक का अनुप्रयोग करते हैं वहाँ पुआल गंधक का एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है। अतः पुआल को जलाना उचित नहीं है। इसके विपरीत पुआल को जलाने से यह प्रभावी रूप से खनिज पोटाश पोषक तत्व

स्रोत में परिवर्तित हो जाता है और इस प्रक्रिया में बहुत कम मात्रा में पोटाश की क्षति होती है। "पोषक तत्व उष्मा स्थल" उत्पन्न होने से बचाव के लिए खेत में पुआल को समान रूप में फैला देना चाहिए। पुआल के निष्कासन का दीर्घ कालीन मृदा उर्वरता पर प्रभाव फास्फोरस की तुलना में पोटॉश पर अधिक होता है। पुआल को फैलाना और मृदा में मिलाने का कार्य श्रम साध्य है, इसलिए कृषक जलाने की प्रक्रिया को अधिक सरल मानते है। पुआल सूक्ष्म पोषक तत्वों (जस्ता) का भी एक महत्वपूर्ण स्रोत है तथा धान में संचयी सिलिका संतुलन पर इसका अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव होता है।

फसल अवशेष को मिलाने के लिए तथा परती समय में मृदा वातायन को बढ़ाने हेतु पहले शुष्क एवं छिछली (5.10 सेमी 0 गहराई) जुताई करने से अगली धान की फसल के शाकीय वृद्वि काल में नाइट्रोजन सुलभता बढ़ जाती है। शुष्क मृदा की छिछली जुताई के लिए चार पहियॉ ट्रैक्टर की आवश्यकता होती है तथा इसे फसल की कटाई के 2.3 सप्ताह बाद तक करना चाहिए जहॉ फसल पद्वति में दो फसलों के बीच शुष्क–नम परती अवधि कम से कम 30 दिन हो। हालॉकि, आर्थिक विश्लेषण में अतिरिक्त ईधन एंव मजदूरी की लागत पर विचार करना चाहिए। स्थायी जलमग्न मृदा में सामयिक जल निकास एवं शुष्क अवस्था से नैसर्गिक नाइट्रोजन आपूर्ति की क्षमता में वृद्वि होती हैं। इसका एक उदाहरण फसल मौसम के मध्य में कल्ले निकलने के अन्तिम समय (रोपाई के लगभग 35 दिन बाद) 5.7 दिन का जल निकास करना है।

हमने स्कूल में जो सीखा है वह सब भूलने के बाद जो याद रहता है, ज्ञान का निवेश सर्वोतम भुगतान करता है

–बेंजामिन फ्रैंकलिन

उड़द की खेतीः शाकाहारियों के लिए प्रोटीन का विकल्प

संजय कुमार, विद्यापति चौधरी, भारती उपाध्याय एवं आर०के० तिवारी
कृषि विज्ञान केन्द्र, बिरौली, समस्तीपुर
मृदा विज्ञान, डा राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविघालय, पूसा, समस्तीपुर

हमारे देश में उड़द की खेती प्राचीन समय से ही होती आ रही है। हमारे धर्म ग्रंथों के साथ–साथ कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र एवं चरक संहिता' में भी इसका उल्लेख किया गया है। वैज्ञानिक डी. कंडोल (1884) एवं वेवीलोन (1926) के अनुसार उड़द का उद्‌गम स्थान भारत ही है। देश में उगायी जाने वाले विभिन्न दालो में उड़द का तीसरा स्थान है। इसका मुख्य उत्पादक राज्य मध्य प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश तथा कर्नाटक है। किन्तु देश की पैदावार का 60 प्रतिशत से अधिक भाग केवल मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र एवं पश्चिम बंगाल से प्राप्त होता है। अपने देश की आबादी का अधिकांश हिस्सा शाकाहारी है जिनमें प्रोटीन की पूर्ति दालों से ही होती है। अन्य दालों की तुलना में फॉस्फोरिक अम्ल (प्रोटीन) की मात्रा, उड़द की दाल में सबसे अधिक होता है जिसके कारण हमारे दैनिक आहार में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रोटीन के अतिरिक्त इसमें अनेक प्रकार का महत्वपूर्ण विटामिन एवं खनिज लवण पाये जाते है, जो स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होते है इसके अलावा इसके दाल से विभिन्न प्रकार के देश के उत्तरी एवं दक्षिणी क्षेत्रों में प्रचलित व्यंजनों जैसे पापड़, बड़ी, कचौड़ी, इमरती, इडली, डोसा आदि भी बनाये जाते हैं इसकी दाल की भूसी एवं हरे तथा सूखे पौधों से उत्तम पशु चारा भी मिलता है। इसके पौधों से फली तोड़ने के बाद इसे हरी खाद के रुप में उपयोग किया जा सकता है जिससे खेत की उर्वराशक्ति भी बढ़ती है।

जलवायु

उड़द की खेती के लिए नम एवं गर्म जलवायु की जरुरत होती है। इसके पौधे प्रकाश के प्रति संवेदनशील होते हैं और इसमें फूल लगने के समय सामान्तया रात की लम्बाई अधिक होनी चाहिए। पौधे की अच्छी वृद्धि के लिए 25 से 30 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान उपयुक्त होता है। वैसे इसकी खेती 70–90 से.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में भी की जा सकती है लेकिन पुष्पावस्था काल में अधिक वर्षा होना नुकसानदायक होता है। फली के पकने की अवस्था में अधिक वर्षा होने से दाना खराब हो जाता है जिससे उत्पादन में ह्रास होता है।

उपयुक्त मिट्टी एवं उसकी तैयारी

उड़द की खेती के लिए वैसी सभी प्रकार की मिटटी उपयुक्त होती है जिसमें समुचित जल–निकास की व्यवस्था हो, कार्बानिक पदार्थ की अधिकता हो और जिसका पी.एच. मान 7–8 के बीच हो। लवणीय एवं क्षारीय मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती है। खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से और उसके बाद 2–3 जुताई कल्टीवेटर से करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए ताकि मिट्टी में नमी संरक्षित रहें। जुताई से पहले खेत से फसल अवशेषों को निकाल देना चाहिए। इसके अलावा पंत यू–30, पंत यू–35, शेखर, वसंत बहार आदि भी मुख्य प्रभेद हैं और उच्छी उपज देती है।

उड़द की उन्नत प्रभेद

क्र.सं.	प्रभेद	परिपक्वता की अवधि	औसत उपज (क्विं/हे.)	अन्य विशेषताएं
1.	टी–9	85–90 दिन	10–12	दाना–काला, मध्यम आकार, गरमा एवं खरीफ–दोनो के लिए उपयुक्त। यह रोग रोधी प्रभेद है।
2.	पंत यू–19	85–90 दिन	12–15	दाना–काला/भूरा एवं आकार में बड़ा, गरमा एवं खरीफ दोनो के लिए उपयुक्त, यह पीला मोजैक रोधी है।
3.	पंत यू–31	70–80 दिन	10–12	खरीफ मक्का एवं अरहर के साथ अन्तरवर्ती खेती के लिए उपयुक्त एवं पीला मोजैक रोधी है।
4.	उत्तरा	80–85 दिन	12–13	दाना भूरा चितकबरा
5.	नवीन	85–95 दिन	10–12	दाना हरा, मिश्रित खेती के लिए उपयुक्त, फलियाँ एक साथ पकती है, हरे चारे के लिए उपयुक्त।
6.	प्रताप उर्द	75–80 दिन	12–15	देश के सभी राज्यों के लिए उपयुक्त।

बीज की दर

खरीफ मौसम में 20–25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की जरुरत होती है। गरम मौसम में बीज की मात्रा थोड़ी अधिक (30 कि.ग्रा.) लगती है।

बीजोपचार

बीज सदैव प्रमाणित एवं विश्वसनीय दुकान से खरीदनी चाहिए। बीज को बुआई से पहले उपचारित करनी चाहिए। उपचार विधि निम्न प्रकार है:

- बुआई से 2-3 दिन पहले 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम फफूँदनाशक दवा से, प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करनी चाहिए। उसके बाद उस बीज को 8 मि.ली./कि.ग्रा. बीज की दर से क्लोरोपायरीफॉस दवा से उपचारित कर लेनी चाहिए। उपरोक्त उपचारित बीज को बुआई से ठीक पहले उचित राईजोबियम कल्चर (5 पैकेट/हे. बीज) से उपचारित कर लेनी चाहिए।

बुआई का समय एवं विधि

बुआई का समय मानसून के आगमन पर निर्भर करता है। वैसे खरीफ के मौसम में बीज की बुआई 15 जुलाई तक कर देनी चाहिए। किन्तु उड़द की नवीन प्रभेदों की बुआई अगस्त से सितम्बर के प्रथम सप्ताह तक करनी चाहिए। गरमी के मौसम में उड़द की बुआई 15 मार्च से 10 अप्रैल तक अवश्य कर देनी चाहिए, किन्तु प्रभेद, प्रताप उर्द की बुआई 20 मार्च से 15 अप्रैल तक की जा सकती है। उड़द की बुआई पंक्ति में करनी चाहिए। इसके लिए खरीफ के मौसम में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 5 सें.मी. उपयुक्त होता है। इसी प्रकार गरमा फसल के लिए पंक्ति से पंक्ति 25 सें.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 5 से.मी. रखनी चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन

वैसे तो उड़द की खेती में रसायनिक उर्वरको की ज्यादा जरूरत नही होती है। फिर भी, अच्छे उत्पादन एवं नेत्रजन स्थिरीकरण जावाणुओं की संख्या तथा क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए 20 कि.ग्रा.नेत्रजन 45 कि.ग्रा. फॉस्फेट, 20 कि.ग्रा. पोटाश एवं 20 कि.ग्रा. गंधक प्रति हेक्टर देनी चाहिए। इसकी पूर्ति 100 कि.ग्रा. डी.ए.पी., 33 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश एवं 125 कि.ग्रा. फॉस्फोजिप्सम/हेक्टर की जा सकती है। उपरोक्त सभी उर्वरकों को अंतिम जुताई के समय खेतों मे समान रूप से बिखेर कर मिला देनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

खरीफ फसल में सिंचाई की कोई जरूरत नहीं होती है। फिर भी, वर्षा कम होने की स्थिति में और जब क्रांतिक फूल आने एवं दाना भरने के समय खेत में नमी कम हो या नहीं हो

ICAR-DCFR

तो एक हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

बीज बोने के 30–35 दिनों के अंदर खरपतवारों की संख्या बढ़ती है। उस समय जरूरत के अनुसार एक या दो बार खुरपी से खेत की निराई करना प्रर्याप्त होता है। किन्तु, यदि मजदूर की समस्या हो तब, खरपतवार नाशक दवा का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए बीज की बुआई के बाद किन्तु अंकुरण से पूर्व पेण्डीमेथलीन दवा की 1 कि.ग्रा. (सक्रिय तत्व) मात्रा प्रतिहेक्टर की दर से 600 लीटर पानी में घोलकर पूरे खेत में समान रूप से छिड़काव करनी चाहिए। यदि किसी कारणवश प्रारंभ में खरपतवारनाशक का प्रयोग नहीं कर पाये हो तो बुआई के 15–25 दिनों बाद 50 ग्रा. क्वीजलोफाम इथाइल प्रति हेक्टर 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से सकरी पत्ती वाली खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है।

कीट एवं रोग नियंत्रण

(क) कीट नियंत्रण

❖ **फली बीटिल**

यह उड़द तथा मूंग दोनों का एक प्रमुख हानिकारक कीट है। इसके भृंग एवं प्रौढ़ दोनों ही भूमिगत रहकर पौधे की पत्तियों को खाकर नुकसान पहुॅचाते हैं। इस कीट के प्रौढ़ भूरे रंग के धारीदार होते है जबकि ग्रव (भृंग) मटमैले सफेद रंग के भूमि के अंदर छिप कर रहते है।

❖ **पत्ती मोड़क कीट (इल्ली)**

इस कीट के प्रौढ़ पीले रंग के पंख वाले होते हैं। इल्लियाँ हरे रंग की तथा सिर पीले रंग का होता है। यही इल्लियों कई पत्तियों को चिपका कर जाली बनाती हैं और उसके अंदर रह कर पत्तियों के हरे रंग अर्थात क्लोरोफील को खा कर फसल को नुकसान पहुँचाती है।

❖ **सफेद मक्खी**

इस कीट के प्रौढ़ एवं शिशु दोनों ही हानिकारक होते हैं। यह कीट हल्का पीला एवं सफेद रंग का होता है। ये पत्तियों की निचली सतह पर रहकर उसका रस चूसकर पौधों को क्षति पहुँचाते हैं। यही कीट पीला मोजैक नामक बीमारी को फैलाता है।

❖ **बिहार रोमिल इल्ली**

इस कीट का प्रौढ़ मध्यम आकार का होता है और इसके पंख भूरे–पीले रंग के होते हैं। इस कीट की इल्लियाँ छोटी अवस्था में झुँड में रहती हैं और पत्तियाँ को खाकर जालीनुमा आकृति बनाती है। इसके शरीर पर रोयें/बाल होते हैं। इसके अधिक प्रकोप होने पर पौधे पत्ती विहीन हो जाते हैं। उपरोक्त कीटो के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए। बिहार रोमिल इल्ली, फली छेदक आदि के नियंत्रण हेतु क्वीनालफॉस दवा का 2 मि.ली./लीटर (500 मि0ली0/हे.) की दर से घोल बनाकर छिड़काव करनी चाहिए। सफेद मक्खी, हरा फुदका आदि कीटों के नियंत्रण हेतु डाइमेथोएट 30 इ.सी. दवा का 2 मि.ली./ लीटर (500 मि.ली./हे.) पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करनी चाहिए।

(ख) रोग नियंत्रण

❖ **पीत चितेरी रोग**

इस रोग के प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों पर चितकबरे धब्बे दिखाई पड़ते हैं जो बाद में बड़े हो कर पूरी पत्ती पर फैल जाता है। इससे पत्तियों के साथ–साथ पूरा पौधा भी पीला पड़ जाता है। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है।

❖ **पीला मोजैक रोग**

इस रोग के प्रारम्भ में पत्तियों पर हल्के हरे रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं और बाद में पत्तियाँ सिकुड़ कर है, और फफोलेयुक्त हो जाती हैं। यह एक विषाणुरोग है जो बीज द्वारा फैलता है। उपरोक्त रोगो के नियंत्रण हेतु निम्नलिखित दवाओं का उपयोग करना चाहिए।

पित चितेरी रोग में फलमक्खी के रोक थाम के लिए डाइमेथोएट दवा की 2 मिली ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर 2–3 बार छिड़काव करनी चाहिए। पीला मौजैक रोग से प्रभावित पौधे को

तुरंत खेत से उखाड़कर नष्ट कर देनी चाहिए इसके नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोरपीड दवा का 5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार एवं बुआई के 15 दिनों के बाद 1 मि.ली./लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर दो–तीन छिड़काव कर रोगवाहक कीटो का नियंत्रण किया जाना चाहिए।

❖ फसल की कटाई

उड़द की फलियाँ लगभग एक साथ पकती है। पकने की अवस्था में फलियाँ का रंग काला हो जाता हैं एवं पौधे पीले हो जाते हैं। ऐसी अवस्था आने पर पूरी फसल को एक साथ कटाई की लेनी चाहिए।

❖ उपज

उड़द की खेती वैज्ञानिक तरीके से करने पर 10–12 क्विंटल उपज/हेक्टेयर प्राप्त होती है।

किसी का बदला लेने में समय व्यर्थ न करें,
क्योंकि जो आपको चोट पहुँचाते हैं वे अपने कर्म
का स्वयं सामना करेगें।

–आचार्य चाणक्य

अलसी (तीसी) की खेती

विद्यापति चौधरी, संजय कुमार, भारती उपाध्याय एवं आर०के० तिवारी
कृषि विज्ञान केन्द्र, बिरौली, समस्तीपुर
मृदा विज्ञान, डा राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविघालय, पूसा, समस्तीपुर

अलसी को ही तीसी भी कहा जाता है। इसके दाने छोटे, चपटे, भूरे रंग, फाइबर युक्त और औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं। इसके सेवन से रक्तचाप, डायबिटीज, हृदयरोग, रक्त शर्करा एवं कोलेस्ट्रॉल आदि जैसी बीमारियों का नियंत्रण होता है। इसके साथ ही, यह जोड़ों के दर्द में, यकृति एवं त्वचा को स्वस्थ रखने और एग्जिमा जैसे रोगों के निदान में भी सहायता करता है। औद्योगिक रूप से भी अलसी के तेल से पेंटस, रंग, वार्निश, छपाई के लिए प्रयोग में आनेवाली स्याही, साबुन आदि बनाया जाता है। अलसी में ओमेगा फैटी थ्री एसिड पाया जाता है जिसके कारण इसकी खली दूध देने वाले पशुओं के लिए पौष्टिक आहार के रूप में उपयोग की जाती है। इसके अतिरिक्त इसके तने से निकलने वाले रेशे से कैनवास, दरी आदि बनाये जाते हैं। साथ ही तने से रेशे निकालने के बाद इसके बाकी बचे काष्ठीय भाग से सिगरेट में प्रयुक्त कागज बनाया जाता है।

अलसी के क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से भारत का विश्व में प्रथम, उत्पादन में तीसरा और उपज प्रति हेक्टर में आठवाँ स्थान है। भारत में मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, राजस्थान, उड़ीसा आदि अलसी के मुख्य उत्पादक राज्य हैं जिनमें से मध्यप्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में ही देश के कुल क्षेत्रफल का 60 प्रतिशत भाग में अलसी की खेती की जाती है। देश में अलसी की खेती शुद्ध फसल, मिश्रित फसल, सह–फसली और पैरा फसल के रूप की जाती हैं। पिछले कुछ सालों में अलसी की खेती का क्षेत्रफल घटा है लेकिन अनुसंधान के द्वारा यह देखा गया है कि समुचित प्रबंधन के साथ इसकी खेती करने पर इसकी अपज में 2–2.5 गुणा ज्यादा वृद्धि की संभावना है।

❖ जलवायु

अलसी की खेती के लिए अर्द्धउष्ण, ठण्डी और नम जलवायु की आवश्यकता होती है। इसीलिए हमारे देश में इसकी खेती रबी के मौसम में की जाती है। अलसी के बीज के अंकुरण के समय 25–30 डिग्री से०ग्रे० तथा फली में दाना बनते समय 15–20 डिग्री से०ग्रे० तापक्रम की जरुरत पड़ती है। समान्यतया 80–100 से०मी० वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र इसकी खेती के लिए उत्तम होते है परंतु 45–80 से०मी० वर्षा वाले क्षेत्रों में भी अलसी की खेती की जा सकती है। पौधे के बढ़वार के समय अधिक वर्षा होना तथा फूल आने के समय आधिक ठण्ड या पाले का पड़ना इसके लिए नुकसानदायक होता है। फसल के परिपक्वता काल में अपेक्षाकृत अधिक तापक्रम एवं शुष्क मौसम की जरूरत होती है।

❖ मिट्टी का चुनाव

हमारे देश में अलसी की खेती सभी प्रकार की मिट्टियों में की जाती हैं परंतु इसकी अच्छी उपज के लिए अच्छी जल निकासयुक्त एवं उदासीन पी०एच० मान वाली दोमट मिट्टी सर्वोतम होती है।

❖ खेत की तैयारी

अलसी के बीज की अच्छी अंकुरण एवं पौधे की वृद्धि और विकास के लिए खेत की पहली जुताई मिटटी पलटने वाले हल से तथा शेष 2–3 जुताई कल्टीवेटर से करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य देनी चाहिए जिससे खेत में नमी संरक्षित रहे और खेत की मिट्टी समतल एवं भुरभुरी हो जाए जिससे बीज का अंकुरण अच्छी हो। यदि कम्पोस्ट की सुविधा हो तो अंतिम जुताई से पूर्व इसे समान रूप से बिखेर कर मिट्टी में मिला देना चाहिए। साथ ही इसी समय खेत में जरूरत के अनुसार क्यारियाँ एवं सिंचाई की नाली बना लेनी चाहिए।

❖ उन्नतशील प्रभेद

अलसी की खेती से अच्छी उपज लेने के

लिए क्षेत्र विशेष के अनुसार अनेक प्रभेद विकसित किये गये है जिनमें से कुछ प्रभेद निम्नलिखित है।

(अ) केवल दाना के लिए

- **टी 397**

इस प्रभेद की बुआई 10 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक कर सकते है। इसमें तेल की मात्रा 44 प्रतिशत होता है, और यह पैरा फसल के लिए उपयुक्त है। फसल 120 से 130 दिनों में तैयार हो जाती है और इसकी औसत उपज 10 से 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

- शुभ्रा

इस प्रभेद की बुआई 10 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक की जा सकती है। इसकी फसल 130 से 135 दिनों में तैयार हो जाती हैं और इसमें तेल की मात्रा 44 प्रतिशत तक होती है। इस प्रभेद की औसत उपज 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है।

- श्वेता

इस प्रभेद की बुआई भी 10 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक की जा सकती है। इस प्रभेद में तेल की मात्रा 44 प्रतिशत एवं तैयार होने की अवधि 145 दिन है। इसकी औसत उपज 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह प्रभेद पैरा बुआई के लिए उपयुक्त है।

- गरिमा

इसकी बुआई 10 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक की जा सकती है। फसल के तैयार होने की अवधि 127 से 130 दिन है। इसमें तेल की मात्रा 42 प्रतिशत होती है। इसकी औसत उपज क्षमता 14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

- शेखर

इस प्रभेद की बुआई भी 10 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक करते हैं। फसल के पक कर तैयार होने की अवधि 137 से 140 दिनों की है। इसके बीजों में तेल की मात्रा 43 प्रतिशत है। इसकी औसत उपज क्षमता 12 से 15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक है। यह पैरा फसल के लिए उपयुक्त है।

(ब) दाना एवं रेशा के लिए (सिंचित खेती हेतु)

पार्वती (एल० एम० एच०–16–5)

- इस प्रभेद की बुआई नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक किया जा सकता है। इसमें तेल की मात्रा 42 प्रतिशत तक पायी जाती है। फसल की उपज क्षमता दाना–16 क्विंटल प्रति हेक्टेयर एवं रेशा 10 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक है।

- मीरा (आर०एल०–**993**)

इसकी बुआई नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। फसल की तैयार होने की अवधि 138 से 140 दिनों की है। इसमें तेल की मात्रा 42 प्रतिशत है। इसकी औसत उपज दाना – 10 क्विंटल प्रति हेक्टयर एवं रेशा 10 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

- रश्मि (एल०सी०के०–**9216**)

इसकी बुआई भी नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। इसमें तेल की मात्रा 41 प्रतिशत है। फसल की परिपक्वता अवधि 146 दिनों की है। इसकी उपज क्षमता दाना–10 क्विंटल एवं रेशा 07 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

बीज दर

बीज हमेशा प्रमाणित एवं कवकनाशी रसायन से उपचारित कर ही बोना चाहिए। केवल दाने की उपज लेने के लिए बुआई हेतु 15 से 20 किलोग्राम प्रति हेक्टयर की दर से बीज की आवश्यकता होती है किन्तु दाना एवं रेशा दोनों की उपज लेनी हो तो 40 से 45 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से बीज की जरूरत पड़ती है।

बीज उपचार

किसी भी फसल के लिए यह एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक कार्य है। इस कार्य से फसल में लगने वाले रोग एवं कीटों का नियंत्रण होता है। इसके लिए प्रति किलोग्राम बीज को बुआई से पहले 2.5 ग्राम कार्बेन्डाजिम दवा की दर से उपचारित कर लेना चाहिए या ट्राईकोडरमा विरीडी की 5 ग्राम मात्रा और कार्बाक्सिन की 2 ग्राम मात्रा से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित कर बुआई करनी चाहिए।

बुआई का समय, विधि एवं अन्तरण

असिंचित क्षेत्रों में अलसी की बीज की बुआई 10 अक्टूबर तक तथा सिंचित क्षेत्रों में नवम्बर तक कर देनी चाहिए। यदि पैरा फसल लेनी हो तो धान काटने के एक सप्ताह पूर्व बुआई करनी चाहिए। समय पर बुआई करने से फलमक्खी एवं पाउडरी मिल्डयू जैसे रोग एवं कीटों से फसल को बचाया जा सकता है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में अलसी की बुआई छिटकवॉं विधि अथवा पंक्तियों में की जाती है। मिश्रित फसल के रूप में बुआई करने के लिए चने की तीन पंक्तियों या गेहूँ की 5 से 8 पंक्तियों के बाद अलसी के बीज पंक्तियों में बोनी चाहिए। इसी तरह गन्ने की दो पंक्तियों के बीच अलसी की 3 पंक्तियों की बुआई करनी चाहिए। बीज को बोने की गहराई 2 से 3 से०मी० रखनी चाहिए। अलसी की शुद्ध फसल में पंक्ति से पंक्ति दूरी 25 से. मी. (सिंचित अवस्था में) एवं 30 से.मी. (असिंचित अवस्था में) तथा पौधे से पौधे की दूरी 5 से 7 से०मी० रखनी चाहिए। इससे पौधों का विकास अच्छा होता है और उपज भी अच्छी मिलती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

पोषक तत्वों की मात्रा का निर्धारण हमेशा उस क्षेत्र विशेष की मिट्टी का परीक्षण कराकर निश्चित करना चाहिए। सिंचित अवस्था में केवल दाना की उपज लेने के लिए खेत में 60 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से कम्पोस्ट बुआई के 20 से 30 दिनों पहले खेत में डाल देना चाहिए। इसके अतिरिक्त 60 किलोग्राम नेत्रजन एवं 30 किलोग्राम फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। इनमें से नेत्रजन की आधी मात्रा एवं फॉस्फोरस की पूरी मात्रा बुआई के पहले खेत में मिला देना चाहिए। नेत्रजन की शेष आधी मात्रा को फूल आने के समय उपरिवेशन के रूप में प्रयोग करना चाहिए। असिंचित खेती के लिए 20 किलोग्राम नेत्रजन एवं 15 किलोग्राम फॉसफोरस प्रति हेक्टेयर की दर से अंतिम जुताई के समय ही खेत में मिला कर देना चाहिए। किन्तु अलसी की द्विउद्देशीय (दाना एवं रेशा) खेती के लिए कम्पोस्ट की मात्रा पूर्ववत ही डाले लेकिन नेत्रजन की मात्रा 80 किलोग्राम, फॉस्फोरस 30 किलोग्राम तथा पोटॉश की मात्रा 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। इनमें से नेत्रजन की आधी एवं फॉस्फोरस और पोटॉश की पूरी मात्रा बुआई के समय ही खेत में मिला देना चाहिए तथा नेत्रजन की शेष आधी मात्रा फली लगने की अवस्था पर उपरिवेशन के रूप में प्रयोग करनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन एवं जल निकास

वैसे तो देश के अधिकांश क्षेत्रों में अलसी की खेती मुख्य रूप से वर्षा आधारित होती है परंतु इसकी अच्छी उपज के लिए दो सिंचाई की अवश्यकता होती है। पहली सिंचाई फूल लगने के समय तथा दूसरी सिंचाई फली लगने के समय करनी चाहिए। इसके साथ खेत से अधिक पानी के निकास भी अच्छी उपज के लिए आवश्यक है।

निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण

अलसी की फसल को लगभग एक से डेढ़ महीने तक खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक है। इसके लिए खुरपी से बुआई के 30 से 35 दिन बाद पहली निराई–गुड़ाई एवं 40 से 45 दिनों बाद दूसरी निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण के लिए 2–4 डी. दवा का अमोनियम लवण की 0.50 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टर की दर से 800 लीटर पानी में घोल कर बुआई के 30 से 35 दिन बाद या पेन्डीमेथलीन 30 ई.सी. 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को बुआई के बाद किन्तु अंकुरण से पहले 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करनी चाहिए।

पौधा संरक्षण

अलसी की फसल को कुछ रोग एवं कीट काफी नुकसान पहुँचाते हैं जिसका समुचित प्रबंधन कर फसल को क्षति होने से बचाया जा सकता है।

1. लिनसीड मिज

यह कीट सुन्दर नारंगी रंग का होता है जिसकी मादा मक्खी फूलों की कली में अंडे

देती है जिससे शिशु निकलकर फूलों की कलियों को खाता है। इस प्रकार बीज नहीं बनते हैं और उत्पादन में कमी आ जाती है। इसके रोकथाम के लिए फसल की अगात बुआई करनी चाहिए। इसके नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रीड 17.8 एस.एल. का 100 मि.ली./हेक्टेयर की दर से 600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करनी चाहिए।

2. अलसी सेमी लूपर कीट

इस कीट का व्यस्क पीलापन लिए हुए भूरे रंग का होता है जिसके पंख पर सफेद रंग का निशान होता है। इसकी एक खासियत है कि यह अपने शरीर को अर्धवलय के आकार में मोड़कर चलता है। इसके पिल्लू पौधों की पत्तियों को खाकर नष्ट कर देती है जिसके कारण पौधों पर फूलों एवं फली की संख्या काफी कम हो जाती है। इस कीट के नियंत्रण के लिए खेत की ग्रीष्मकालीन जुताई एवं खेत को खरपतवार से मुक्त रखनी चाहिए। साथ ही आक्सीडेमेटान मिथाईल 25 ई०सी० का 1 मि०ली० प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करनी चाहिए।

3. कजरा पिल्लू

यह कीट भूरे या स्लेटी रंग का होता है जिसका शरीर चिकना होता है। यह दिन में भूमि के अंदर दरार में छिपे रहते हैं और शाम के समय बाहर निकलकर छोटे–छोटे पौधों को जमीन की सतह से काट कर गिरा देते है। इसके नियंत्रण के लिए प्रकाश फंदा का प्रयोग करना चाहिए साथ ही मिथाईल पैराथियान 02 प्रतिशत धूल का 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देना चाहिए।

4. गेरुई या हरदा रोग

यह एक फफूँद जनक रोग होता है। इस रोग में पत्तियों पर पहले गेरुई या गुलाबी रंग का धब्बा बनता है जो बाद में तना एवं फली पर भी बनने लगता है और प्रभावित पत्तियाँ रंगहीन होकर सूख जाती है। इसके नियंत्रण के लिए रोगरोधी प्रभेद की बुआई करनी चाहिए, खेत को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए, रोगग्रसित पौधों को उखाड़कर जला देनी चाहिए और मेन्कोजेब 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण का 02 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर पौधे पर छिड़काव करनी चाहिए।

5. पाउडरी मिल्ड्यू

यह एक फफूँद जनक रोग होता है। इस रोग में पत्तियों पर सफेद पाउडर जैसा दिखता है। रोग की अधिकता की स्थिति में पौधे की शाखाऐं एवं फूल भी प्रभावित होता है, पत्तियाँ सूखकर गिर जाती है और दाने सिकुड़कर छोटे रह जाते है। शीतकालीन वर्षा होने तथा कई दिनों तक आर्द्रता बनी रहने पर इस रोग का प्रकोप बढ़ जाता है। इसके नियंत्रण के लिए सल्फर 80 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण का 03 ग्राम प्रति लीटर की दर से पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करनी चाहिए।

1. उकठा या उखड़ा रोग

यह भी अलसी का प्रमुख मृदाजनित किन्तु फफूँदी रोग है जो अधिक तापक्रम वाले स्थानों पर अधिक लगती है और खेत में पानी की कमी होती है। प्रभावित पौधें की पत्तियाँ किनारे से अन्दर की ओर मुरकर मुरझा जाती है। इस रोग का प्रसार खेत में पड़े हुए फसल अवशेषों द्वारा होता है जिसमें इस रोग के पैथोजन छिपे रहते है और अनुकूल समय आने पर पौधों को संक्रमित करते हैं। इसके रोकथाम के लिए ग्रीष्मकालीन जुताई करनी चाहिए, रोगरोधी प्रभेद का प्रयोग करना चाहिए एवं ट्राईकोडरमा विरिडी का 05 ग्राम प्रतिग्राम बीज की दर से बीजोचार कर ही बुआई करनी चाहिए।

फसल की कटाई एवं मंड़ाई

दाने वाली फसल की कटाई मार्च माह के मध्य से अप्रैल माह के प्रथम सप्ताह तक होती है। जब पौधे पीले पड़ने लगे और फलियाँ सूखने लगे तब फसल की कटाई हँसिया से अथवा उखाड़कर कर लेनी चाहिए। किन्तु रेशेवाली फसल की कटाई अपेक्षाकृत पहले की जाती है क्योंकि पौधें को देर से काटने पर रेशा पक जाता है जिसके कारण अच्छे गुणों वाला

रेशा नहीं प्राप्त होता है। अतः फसल पर फूल आने पर रेशे के लिए कटाई करते हैं। दाने वाले फसल की कटाई के बाद उसके बंडल को खलिहान में लाकर 4–5 दिनो तक सुखाकर डंडे के द्वारा पीटकर दाने अलग कर लेनी चाहिए और इसकी ओसाई कर दाना साफकर लेना चाहिए।

उपज

उन्नतशील प्रभेद एवं उचित वैज्ञानिक प्रबंधन के द्वारा अलसी फसल की उपज प्रति हेक्टेयर 12–15 क्विंटल तक प्राप्त हो सकती है किन्तु मिश्रित फसल से 4–5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक दाने की उपज होती है।

निश्छलता प्रकृति प्रदत्त एक नैसर्गिक गुण है, जो केवल अबोधता की स्थिति में ही परिलक्षित होती है, यह बुद्ध तत्व प्राप्त मनीषी या अबोध बालक के अतिरिक्त इस जगत में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है।

गर्मी के मौसम में दूधिया मशरूम उत्पादन तकनीक

अंकुर त्रिपाठी[1], शिवम त्रिपाठी[1], एस०आर० सिंह[2], एम०के० त्रिपाठी[2], ए०पी० द्विवेदी[2], नागेन्द्र सिंह[1], वी०के० सिंह[2] एवं अभिषेक कुमार सिंह[2]

[1]आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रोद्यौगिकी विश्व विद्यालय, कुमार गंज, अयोध्या,

[2]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

मशरूम एक स्वादिष्ट प्रोटीनयुक्त तथा कम कैलोरी प्रदान करने वाला खाद्य पदार्थ है। इसमे पायी जाने वाली प्रोटीन में आवश्यक अमीनो अम्ल प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जो कि वृद्वि और विकास के लिए अत्यन्त उपयोगी है ताजे मशरुम में पाये जाने वाला प्रोटीन दूघ के प्रोटीन के बराबर होता है व अत्यधिक सुपाच्य होता है। इसके साथ ही यह विटामिन व खनिज लवण का अच्छा स्त्रोत है। मशरुम में वसा कम व प्रोटीन ज्यादा होता है। अतः यह हृदय रोगियो के लिए उपयोगी है। इसमें स्टार्च नहीं होता यह डायबिटीज के मरीजों को फायदा करता है। यह वैक्टीरिया से लड़ले की क्षमता रखता है। तथा ट्यूमर के वृद्वि को रोकता है। शरीर को चावल व गेहूँ से प्रति 340 से 360 कैलोरी क्रमशः उर्जा मिलती है, वहीं मशरूम से सिर्फ 30 कैलोरी ही प्राप्त होती है, यह मोटापा नहीं बढ़ाता है। इसमें शर्करा एवं स्टार्च कम होता है इस कारण इसे 'डिलाइट ऑफ डाइबेटिक' कहा जाता है। इसमें कोलेस्ट्रोल बिल्कुल नहीं होता है जो कि पाचन क्रिया के दौरान विटामिन 'डी' में बदल जाता है अतः यह दिल के मरीज के लिए काफी अच्छा होता है। मशरूम मे उपस्थित लौह तत्व पूरी तरह शरीर में उपलब्ध होने की अवस्था में होते हैं जिससे यह रक्ताल्पता (एनीमिया) में बहुत फायदेमंद होते है। इसमें सोडियम व पोटेशियम का अनुपात अधिक होने के कारण उच्च रक्तचाप को सामान्य करता है। इसमें फॉस्फोरस भी पाया जाता है। एक आर्दश भोजन मे ताजा मशरूम (227 ग्राम) खाने से लगभग 70 किलो कैलोरी उर्जा मिलती है। गर्मी के मौसम मे उगाये जाने वाले मशरूम में दूधिया मशरूम (कैलोसाइबी इंडिका) महत्वपूर्ण है। इसकी खेती अधिक

तापमान में आसानी से की जा सकती है। दूधिया मशरूम के कवक जाल फैलाव के लिए 250–350 सेल्सियस तथा नमी 80–90 प्रतिशत होनी चाहिए। ऊँचे तापमान (380–400) पर भी यह अच्छा पैदावार देता है। वैज्ञानिक तरीका अपनाकर किसान गर्मी के मौसम मे भी आसानी से इसकी खेती करके अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

माध्यम का चुनाव एवं उपचार

दूधिया मशरूम को विभिन्न कृषि फसलों से प्राप्त अवशेषों जैस भूसा, पुआल, फरशीबीन के सूखे डंठल व गन्ना की खोई आदि पर आसानी से उगाया जा सकता है। माध्यम नया, सूखा एवं बरसात मे भींगा न हो। इस मशरूम की खेती के लिए भूसा या पुआल का अधिकतर इस्तेमाल किया जाता है। माध्यम को हानिकारक सूक्ष्मजीवियों से मुक्त करने तथा दूधिया मशरूम की वृद्धि हेतु उसे उपयुक्त बनाने के लिये, निम्नलिखित में से किसी एक विधि से उपचारित करके ही इस्तेमाल किया जाता है।

गर्म पानी द्वारा उपचार इस विधि के अनुसार गेहूँ का भूसा या धान के पुलाव की कुट्टी को काट कर एवं जूट या कपड़े की छोटी थैलियों में भरकर पानी में अच्छी प्रकार से कम से कम 12 से 16 घंटे तक डुबोकर रखते हैं। ताकि भूसा या पुआल अच्छी तरह से पानी सोख लें। इसके पश्चात् इस गीले भूसे से भरी थैलियों को उबलते हुए गर्म पानी में 30–40 मिनट तक डुबोकर रखते हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि पानी का तापमान 40 मिनट तक 800–900 सेल्सियस तक बना रहना चाहिए। भूसा डालने से पहले फर्श को धो कर उस पर 2 प्रतिशत फार्मेलीन के घोल का छिडकाव करें। इस प्रकार से उपचारित माध्यम बीजाई के लिये तैयार करे।

रासायनिक उपचार

गर्म पानी उपचार विधि को बड़े स्तर पर पर अपनाने में अधिक खर्च आता है अतः विकल्प के रूप में रासायनिक विधि को अपनाया जा सकता जिसका तरीका निम्नलिखित है।

- किसी सिमेंट के नाद या ड्रम में 90 लीटर पानी ले तथा उसमे 10 किलोग्राम भूसा या पुआल (माध्यम) भिगो दे।
- एक बाल्टी मे 10 लीटर पानी लें तथा उसमें 10 ग्राम बाविस्टीन व 5 मि0ली0 फार्मेलीन मिलायें। इस घोल को ड्रम में भिगोये गये माध्यम पर डाले तथा ड्रम को पॉलिथीन से ढ़ककर उस पर वजन रख दें।
- 12–16 घंटे बाद ड्रम से माध्यम को बाहर निकाल कर सॉफ फर्श पर फैला दे। ताकि अतिरिक्त पानी निकल जाये। प्राप्त गीला माध्यम बीजाई के लिये तैयार है।

बीजाई

उपर बताई गई किसी एक विधि से माध्यम को उपचारित कर उसमें 4–5 प्रतिशत (गीले माध्यम के वजन के अनुसार) की दर से बीज मिलायें यानि एक किलोग्रम गीले माध्यम मे 40–50 ग्राम बीज। सतह विधि से ही बीजाई करना उत्तम रहता है। सतह में बजाई करने हेतु पहले छिद्रयुक्त (4–5) पॉलीप्रोइलिन (पी.पी.) के बैग (14–16 से0मी0 चौडा तथा 20 से0मी0 ऊँचा) में एक परत माध्यम की बिछाये फिर उसके उपर बीज बिखेर दे। उसके ऊपर फिर से माध्यम की परत डालें तथा फिर बीज डाले। इस प्रकार 2–3 सतह में बीजाई की जा सकती है। बैग में करीब 2–3 किलो ग्राम गीले (उपचारित) भरा जाता। छिटकॉव विधि से भी बीजाई की जा सकती है। बीजित बैगों को एक अंधेरे कमरे में रख देते हैं तथा लगभग 2–3 सप्ताह तक 250–350 सेल्सियस तापमान तथा 80–90 प्रतिशत नमी बनाये रखें।

केसिंग मिश्रण बनाना व केसिंग परत बिछाना

बीजाई किये गये बैगों में 2–3 सप्ताह बाद कवक भूसे में फैल जाता है तथा भूसे का रंग सफेद दिखाई देता है ऐसी अवस्था में केसिंग परत चढ़ाने के लिए उपयुक्त मानी जाती है। केसिंग मिश्रण केसिंग करने के 8–10 दिन पहले तैयार करते हैं। केसिंग मिश्रण तैयार करने के लिए 3/4 भाग दोमट मिट्टी एवं सड़ी गोबर खाद बराबर मात्रा में तथा 1/4 भाग बालू लेते है। अब इस मिश्रण में वजन का 10

प्रतिशत चाक पाउडर मिलाते है, जिससे मिश्रण की अम्लीयता बदल कर मृदा–क्षारीय (8–8.5 पी.एच.मान.) तक हो जाय तथा मिश्रण को 4 प्रतिशत फार्मेलिन व 0.1 प्रतिशत बाविस्टन के घोल से गीला कर ऊपर से पालीथीन शीट से ढक दे। केसिंग करने के 24 घंटे पूर्व केसिंग मिश्रण से पालीथीन हटाये तथा मिश्रण को बेलचे से उलट–पलट दे ताकि फार्मेलीन की गंध निकल जाये। मिश्रण को बोरे में भरकर भाप द्वारा एक घंटा तक निर्जलीकरण करे।

केसिंग के उपरान्त रखरखाव केसिंग प्रक्रिया पूर्ण करने के पश्चात अधिक देखभाल करनी पड़ती है। प्रतिदिन थैलों का नियमित प्रतिदिन निरीक्षण करे। थैलों में नमी का जायजा लेते रहे तथा आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव करना चाहिए। इस चरण में नमी की अधिक आवश्यकता होती है। अतः पहले से कुछ अधिक (85–90 प्रतिशत) नमी बनाये रखना चाहिए। तापमान व नमी के अतिरिक्त, मशरूम उत्पादन के लिए हवा का आदान–प्रदान होना आवश्यक होता है। इसके लिए आवश्यक है कि उत्पादन कक्ष में रोशनदान, खिड़की व दरवाजे द्वारा आसानी से हवा अन्दर आ सके और अंदर की हवा बाहर जा सके। सुबह–शाम कुछ देर के लिए दरवाजे व खिड़कियां खोल देना चाहिए। केसिंग मिट्टी में कवक जाल फैलने के बाद थैलों के उपर 3–5 दिनों के भीतर मशरूम कलिकायें निकलना प्रारम्भ हो जाती है और लगभग एक सप्ताह मे पूर्ण मशरूम का रूप ले लेती है। इस मशरूम की बढ़वार के लिये कलिकायों को नीले रंग का प्रकाश की आवश्यकता होती है। जिसे नीले पॉली हाउस के अन्दर उगा कर या नीले ट्युबलाइट के प्रयोग से प्राप्त किया जा सकता है।

तुड़ाई व उपज

मशरूम का छत्ता जब 5–7 से.मी. व्यास का हो जाये तो इसे परिपक्व समझना चाहिए और घुमाकर तोड़ लेना चाहिए। तने के निचले भाग को जिसमें मिट्टी लगी होती है, हटा दिया जाता है और मशरूम को पालीथीन या पी. पी. बैग जिसमें छेद हो, में पैक कर लिया जाता है। इस मशरूम की जैव दक्षता 100 प्रतिशत के करीब होती है यानि एक किलोग्राम सूखे भूसे/पुआल से 1 किलो ग्राम ताजा मशरूम प्राप्त होती है। अच्छी पैदावार होने पर पैदावार की लागत करीब रूपये प्रति किलोग्राम पड़ती है। उपरोक्त तकनीक अपनाकर मशरूम उत्पादक ग्रीष्म व वर्षा ऋतु में दूधिया मशरूम का उत्पादन कर काफी अच्छी पैदावार प्राप्त कर सकते हैं तथा जाड़े में ढींगरी/बटन मशरूम उत्पादित कर, पूरे वर्ष आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में बकरी पालन एक लाभप्रद व्यवसाय

अतुल कुमार सचान, राजेश कुमार एवं अभिषेक कुमार सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

ग्रामीण क्षेत्रों में बकरी पालन एक ऐसा व्यवसाय है, जिसे कोई भी थोड़ी सी लागत/पूंजी और जानकारी के साथ शुरू कर सकता है। साथ ही साथ बकरी पालन में जोखिम और दूसरे व्यवसाय से काफी कम है। वैसे तो आपको बकरी पालन के अनेक व्यवसायिक प्लान मिल जायेंगे परन्तु जब तक व्यवहारिक ज्ञान नहीं होगा तब तक किसी भी व्यवसाय को बड़ा रूप नहीं दिया जा सकता है। बकरे के माँस की मांग देश के हर क्षेत्र में है तथा और इसके माँस की मांग लगातार बढ़ती ही जा रही है। जहां तक भारत में बकरी पालन व्यवसाय की व्यापकता का सवाल है तो हमें उसका जबाव सिर्फ इसी बात से मिल जाता है कि बकरे का माँस किसी भी धार्मिक विचारधारा या प्रतिबंध से मुक्त है अर्थात् बकरे के माँस को सभी धर्मों, जातियों तथा सम्प्रदायों द्वारा खाने में व्यापकता से उपयोग किया जाता है। किसी तरह की धार्मिक पाबन्दी न होने के कारण बकरे का माँस अन्य माँस की तुलना में अधिक लोकप्रिय है।

बकरी पालन के लाभ

यदि हम बकरी पालन की तुलना अन्य पशुपालन जैसे– गौ पालन या भैंस पालन से करें तो हमें पहला लाभ ये मिलता है कि इसके लिए गौ या भैंस पालन के मुकाबले काफी कम जगह चाहिए। दूसरा लाभ जितनी जगह में आप एक भैंस या गाय पाल सकते हैं उतनी जगह में पाँच या सात बकरियां आराम से पाली जा सकती हैं।

- अधिकतर नस्ल की बकरियां को गर्मी हो या ठण्ड या बारिश किसी भी वातावरण में ढलने की अदभुत क्षमता होती है।
- बकरियां अन्य बड़े पशुओं के मुकाबले बहुत छोटी होती हैं लेकिन ये परिपक्व बहुत जल्द हो जाती हैं।
- बकरी का जीवित तथा मृत्यु के उपरान्त केवल एकमात्र ही उपयोग नहीं है। जहाँ इसके माँस का उपयोग लोग खानें में करते

हैं वहीं इसके दूध का उपयोग पीने तथा 36 प्रकार की बीमारियों को दूर करने में किया जाता है।

- बकरी के दूध का महत्वपूर्ण उपयोग डेंगू बीमारी को दूर करना हैं।
- बकरी के बालों का उपयोग फाइबर बनाने में तथा खाल का उपयोग विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्र बनाने में किया जाता है।
- बकरी पालन को बहुत कम पूँजी में भी शुरु किया जा सकता है। चूँकि बकरियों के अनेकों नस्ल होती हैं जो साल में 2 बार बच्चे देती हैं और हर बार 2 से 3 बच्चे देती हैं। इसलिए इस व्यापार के जल्द से जल्द बढ़ने की अधिक सम्भावनाएं होती हैं।
- बकरी पालन को व्यवस्थित ढंग से चलाना अन्य फार्मों की तुलना में अधिक आसान होता है।
- यदि आप पहले से कोई पशुपालन कर रहे हैं और बकरी पालन भी करना चाहते हैं तो आप बकरियों को वही जगह दे सकते हैं, जिस जगह पर आप पहले से अन्य पशु पाल रहे हैं।
- बकरी पालन में आपको अपने उत्पादों को बेंचने के लिए किसी बाजार की जरुरत नहीं पड़ती क्योंकि मांग अधिक होने के कारण ग्राहक आपको ढूढते–ढूढते आपके फार्म हाउस तक स्वतः पहुँच जाते हैं।

जमीन का चुनाव

हमारे देश का हर कोना बकरी पालन का व्यवसाय करने के लिए उपयुक्त है। हमें यह व्यवसाय शुरु करने के लिए अपने घर के आस–पास ही कोई जगह तलाश करनी है, जहाँ से हम इस व्यवसाय को आसानी से क्रियान्वित कर सके। इसके अतिरिक्त जमीन का चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाना बेहद आवश्यक हैः

- ऐसी जगह जमीन की तलाश करनी चाहिए जहाँ शुद्ध पानी और हवा की प्रचुरता हो।
- आस–पास के क्षेत्र में खेत हों ताकि आप आसानी से घास और अनाज पैदा कर सकें ताकि बकरियों को खिलाने का खर्च कम किया जा सके।
- आस–पास के क्षेत्र में ऐसा बाजार हो जहाँ बकरी पालन से संबंधित वस्तुएं और दवाइयाँ आसानी से उपलब्ध हो।
- ग्रामीण क्षेत्रों के आस–पास ही बकरी पालन व्यवसाय शुरु करना चाहिये क्योंकि शहरों के मुकाबले गांवों में जमीन और मजदूर बहुत सस्ते दामों में उलपब्ध रहते हैं।
- बकरी पालन का क्षेत्र ऐसा हो जहाँ आस–पास कोई पशु चिकित्सालय हो ताकि आपको टीके व अन्य दवाईयाँ सुगमता से उपलब्ध हो सके, अन्यथा आपको सारी दवाईयाँ और टीके अपने फार्म पर ही रखने पड़ेगें।
- यातायात की सुविधा का होना जरुरी है ताकि जरुरत पड़ने पर आप अपनी जरुरत की वस्तुएं किसी नजदीकी बाजार से खरीद सकें तथा अपने फार्म के उत्पादों को आसानी से बाजार में पहुँचाया और बेचा जा सकें।

बाड़े का निर्माण

बकरी पालन करने के लिए बकरियों के लिए घर या बाड़े का निर्माण बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है। लेकिन हमारे देश में अभी तक इस क्रिया को एक महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया जाता क्योंकि जो लोग छोटे पैमाने पर बकरी पालन करते हैं वे बकरियों के लिए अलग से घर न बना कर उन्हें अन्य पशुओं के साथ ही ठहरा देते हैं, जिससे उनकी उत्पादकता पर असर स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। व्यवसायिक रुप से बकरी पालन की जानकारी बहुत ही जरुरी हो जाती है कि बकरियों के रहने के लिए एक अलग मानक स्थान तैयार किया जाए और निम्न् बातों का स्पष्ट ध्यान रखा जाए किः

- कोशिश करें कि बकरियों के रहने का स्थान जमीन से दो–तीन फीट ऊँचा हो। इसके लिए आप तख्त इत्यादि का इस्तेमाल कर सकते हैं क्योंकि गीलेपन और नमी से बकरियों मे बीमारी पैदा हो जाती है।
- चूहों, मक्खियों, जूँ इत्यादि कीट पतंगे बकरियों के आवास पर बिलकुल नहीं होने चाहिए।

- आवास को हमेशा पूर्व–पश्चिम दिशा में बनवाना चाहिए, ताकि हवा का आवागमन आसानी से हो सके।
- आवास से पानी निकास की उचित व्यवस्था पहले से ही करके रखें, ताकि फार्म की साफ–सफाई के दौरान पानी की निकास बाहर की ओर आसानी से हो सके।
- इस बात की उचित व्यवस्था करें कि बकरियों के आवास में किसी भी प्रकार का पानी चाहे वो बारिश का हो या कोई अन्य, अन्दर न आने पाए। यह पानी बीमारियों की जड़ है।
- आवास में तापमान को स्थिर रखने के लिए उचित प्रबन्ध करें। गर्मी तथा सर्दियों के लिए आवास में तापमान नियंत्रण के लिए उचित प्रबन्ध करें।
- बकरी पालन से सम्बन्धित सभी तरह के उपकरणों, बर्तनों की साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखें।

चारे की व्यवस्था

इन सबके अलावा बकरी पालन व्यवसाय के लिए बकरियों के खान–पान एवं आहार का उचित प्रबन्ध रखना होगाः–

- बकरियों के लिए हरा चारा, गेंहूँ का भूसा (यदि संभव हो तो चना, अरहर तथा मसूर की दाल के भूसे का इंतजाम किया जा सकता है) आदि का प्रबन्ध कराना चाहिए।
- दानें के रुप में बकरियों को गेंहूँ और टूटी हुई मक्का देना चाहिए।
- इसके अलावा कटहल, नीम, पीपल, पाकड़ की पत्तियों को समय–समय पर हरे चारे के रुप में दिया जा सकता हैं।

अन्य उपयोगी सलाह

- बकरियां बकरी पालन व्यवसाय की रीढ़ की हड्डी होती हैं इसलिए उनका अच्छी तरह से ध्यान रखें।
- बकरियों के रोजमर्रा के असामान्य लक्षणों को पहचानिए, जो भी बकरी आपके सुस्त, कमजोर या चारा नहीं खा रही है उसका अतिरिक्त ध्यान रखें तथा किसी भी तरह की बीमारी को पहचान कर उचित इलाज की व्यवस्था करें।
- बकरियों को समय–समय पर टीका अवश्य लगवाएं।
- बकरियों के बच्चों का बकरियों की तुलना में अधिक ध्यान रखना चाहिए।
- बकरी पालन से सम्बन्धित समस्त रिकार्ड को सुरक्षित रखना चाहिए।

फसल प्रणाली में फसल अवशेषों का महत्व

विविन कुमार, एस०एन० सुमन एवं राकेश कुमार प्रसाद
मृदा विज्ञान, डॉ. रा.प्र.कै.कृ.वि. पूसा, समस्तीपुर

यद्यपि मृदा उत्पादकता एवं खाद्यन्न सुरक्षा को बनाए रखने में फसल अवशेषों के लाभों के बारे में बहुत कुछ कहा गया है, लेकिन फसल अवशेष की उपलब्धता ही अपने आप में एक बहुत बड़ी समस्या है। फसल अवशेष निष्पादन समस्या केवल पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिम उत्तर–प्रदेश में है। खुली चराई के साथ–साथ कम से कम या संपूर्ण फसल अवशेषों को खत्म कर देना टिकाऊ कृषि एवं देशों की खाद्यान्न सुरक्षा के लिए आगे और अधिक समस्याओं को बढ़ावा देता है। वर्तमान में फसलों के जड़ के हिस्से मिट्टी में ही रहते है, लेकिन कुछ सख्त फसलों जैसे कि कपास एवं अरहर की जड़ों को निकालकर अवशेषों को जला दिया जाता है। हालांकि, घटते पैदावार स्तरों की वर्तमान समस्याएँ न्यूनतम मृदा जैविक पदार्थ से जुड़ी है, समुचित फसल अवशेष प्रबंधन विकल्पों से घटती निवेश उपयोग क्षमताओं का प्रबंधन किया जा सकता है। खरपतवारों सहित स्थानीय रूप से उपलब्ध जैविक संसाधनों के उपयोग को समुचित रूप से पुनः चक्रण किया जाना चाहिए। मृदा स्वास्थ्य एवं पैदावार की वृद्धि से जुझने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि समुचित पोषण तत्व प्रबंधन का अनुसारण किया जाए और आंशिक रूप से अजैविक उर्वरकों के विकल्प के रूप में फसल अवशेषों या अन्य किसी दूसरी जैविक खाद का उपयोग किया जाए।

देशभर से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार हमारे 142.2 मिलियन हैक्टेयर कुल क्षेत्र में से लगभग 87 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र असिंचित है। ज्ञातव्य है कि हमारी कुल खाद्यान्न आवश्यकता का लगभग 56 प्रतिशत उत्पादन सिंचित क्षेत्रों में होता है जबकि कुल खाद्यान्न उत्पादन का शेष 44 प्रतिशत उत्पादन वर्षा आधारित कृषि द्वारा किया जाता है। कई महत्वपूर्ण उत्पाद जैसे कि मोटे अनाज (90 प्रतिशत), दलहन (87 प्रतिशत) एवं तिलहन (74 प्रतिशत) का उत्पादन वर्षा आधारित कृषि से किया जाता है। सिंचित कृषि के स्थिर उत्पादकता स्तरों को देखते हुए और दिन–प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वर्षा आधारित कृषि के योगदान में वृद्धि करने की नितांत आवश्यकता है। भारत में, कुलविकृत (निम्न) भूमि क्षेत्र 120.07 मिलियन हैक्टेयर है, जिसमें से 73.3 मिलियन हैक्टेयर जल अपरदन से प्रभावित है, 12.4 मिलियन हैक्टेयर वायु अपरदन से 6.64 मिलियन हैक्टेयर लवणता द्वारा एवं 5.7 मिलियन हैक्टेयर मृदा अम्लता द्वारा प्रभावित है। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए भूमि विकृतिकरण हमारी खाद्यान्न एवं पर्यावरण सुरक्षा के लिए प्रमुख चुनौती है एवं वर्षा आधारित क्षेत्रों में भूमि विकृतिकरण का विस्तार और अधिक है। लाल मृदा वाले क्षेत्रों में वर्षा आधारित कृषि प्रणालियां अधिकतर एकल फसल की है, जबकि काली मृदा वाले क्षेत्रों में संचित नमी पर दूसरी फसल ली जाती है। रबी मौसम में काली मृदाओं से संरक्षित नमी से रबी फसल ली जाती है जिसे खरीफ मौसम के दौरान किसान परती छोड़ देते है। शुष्क क्षेत्रों में वर्षा 500 मि.ली. मीटर से कम रहती है और शुष्क उपआर्द्र क्षेत्रों में 1000 मि.ली. मीटर तक होती है।

फसल अवशेषों का महत्व

फसल अवशेषों को कम्पोस्ट खाद की तुलना में बेहतर गुणवत्ता वाली उच्च कोटि की खाद के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है एवं रासायनिक उर्वरकों के साथ इसका उपयोग पैदावार को बनाए रखने या वृद्धि में सहायक हो सकता है। अजैविक उर्वरकों ने सघन सस्ययन प्रणालियों में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिसके परिणामस्वरूप फसलोत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। जबकि, केवल अकार्बनिक उर्वरकों के अत्यधिक एवं अक्सर असंतुलित उपभोग से उच्च क्षमता वाले वर्षा आधारित क्षेत्रों के विभिन्न केन्द्रों में हाल ही में कुछ समस्याएं देखने में आई है जैसे कि मृदा

स्वास्थ्य में गिरावट तथा बहु पोषक तत्वों की उपलब्धता में कमी नजर आने लगी है। बेहतर फसल अवशेष प्रबंधन मृदा उत्पादकता के साथ ही साथ अकार्बनिक उर्वरक की क्षमता में वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। अवशेष प्रबंधन, मृदा के भौतिक रसायनिक एवं जैविक गुणों पर इसके विभिन्न एवं सकारात्मक प्रभावों के कारण सभी का ध्यान आकर्षित कर रहा है। यह अति आवश्यक है कि फसल अवशेषों को प्राकृतिक संसाधन के रूप में माना जाना चाहिए न कि व्यर्थ ईधन के रूप में।

फसल अवशेषों की उपलब्धता

फसल अवशेष बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। यह न केवल मृदा कार्बनिक पदार्थ का महत्वपूर्ण स्रोत है, अपितु मृदा के जैविक, भौतिक एवं रसायनिक गुणों में वृद्धि भी करते है। पादप द्वारा मृदा से अवशेषित 25 प्रतिशत नेत्रजन, व फस्फोरस, 50 प्रतिशत गन्धक एवं 75 प्रतिशत पोटाश जड़ तथा पत्ती में संग्रहित रहते है। अतः फसल अवशेष पादप पोषक तत्वों का भण्डार है। यदि इस फसल अवशेषों को पुनः उसी खेत में डाल दिया जाय तो मृदा की उर्वरकता में वृद्धि होगी और फसल उत्पादन लागत में भी कमी आयेगी।

भारत में प्रतिवर्ष 600 से 700 मिलियन टन फसल अवशेष उत्पादित होता है, जिसका एक चौथाई भाग धान एवं गेहूँ से प्राप्त होता है। परन्तु किसानों को इन फसल अवशेषों का महत्व ज्ञात न होने के कारण वे इनका उचित तरीके से उपयोग नहीं करते।

सारणी 1: धान एवं गेहूँ के फसल अवशेष की भारत में उपलब्धता

राज्य	फसल अवशेष की उपलब्धत (मिलियन टन)			पुर्नचक्रण के लिए फसल अवशेष की उपलब्धत
	धान	गेहूँ	कुल	
पंजाब	11.0	18.2	28.2	9.40
हरियाणा	2.5	3.7	12.2	4.07
उत्तर प्रदेश	14.0	27.5	41.5	13.83
बिहार	9.6	5.3	14.9	4.57
प0 बंगाल	16.7	6.1	16.8	5.60
कुल	52.8	60.8	119.6	37.87

स्रोत (सरकार, 1999)

अवशेष प्रबंधन विकल्प

वर्षा आधारित कृषि के टिकाऊपन हेतु फसल अवशेषों के प्रबंधन को भविष्य में कर्षण प्रक्रियाओं का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए। फसल अवशेषों के प्रबंधन के लिए किसानों के पास कई विकल्प उपलब्ध है। जिनमें गांठ बांधना एवं हटाना, स्थापना एवं पृष्ठ धारण शामिल हैं अवशेषों के जलाने से कार्बनिक पदार्थ पोषकों एवं पशु स्वास्थ्य की हानि के अलावा वायु प्रदूषण तथा मानव एवं पशु स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। किसानो के स्तर पर इसे इकट्ठा नहीं रखा जा रहा है। फसल अवशेषों को निकालना मृदा स्वास्थ्य के लिए आवश्यक कार्बनिक माध्यमों की हानि है, लेकिन पशुधन के लिए चारे के रूप में यह अति आवश्यक है एवं मिश्रित कृषि को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है। अवशेषों की मिट्टी में समावृष्टी एक बेहतर विकल्प है लेकिन इसके लिए बडे पैमाने पर ऊर्जा एवं समय की आवश्यकता होती है। इससे पोषकों का अस्थाई स्थानांतरण होता है, विशेषकर नाइट्रोजन का। इसके साथ ही साथ समावृष्टी के समय नाइट्रोजन के प्रयोग क द्वारा कार्बन नाइट्रोजन अनुपान को सुधारने की आवश्यकता होती हे।

तालिका–2: कार्बनिक पदार्थो (मीट्रिक टन) का समतुल्य उर्वरक

कार्बनिक अवशेष	1991	2011	2026
फसल अवशेष	0.75	1.10	1.33
पशु उत्सर्ग	3.70	5.40	6.69
नगरपालिका का कूड़ा–करकट	0.02	0.03	0.04
मलजल	0.15	0.21	0.27
कुल	4.63	6.74	8.33

भूमि सतह पर अवशेष धारण का प्रभाव

मृदा तापमान को सामान्य बनाना

सतह पर अवशेष धारण, मृदा को तापमान से बचाने या मृदा को सूर्य के सीधे प्रकाश से बचान या मृदा से तापमान हानि को रोकने में भौतिक अवरोध के रूप में कार्य करने के साथ–साथ मृदा मे नमी संरक्षण के कारण होने वाले डाइलेक्ट्रिक वृद्धि को सामान्य बनाता है। अनाच्छादित मृदा में गर्मी के दौरान अधिकतम तापमान कम रहता है एवं सर्दियों के दौरान न्यूनतम तापमान अधिक रहता है जो फसल पर होने वाले प्रतिकूल प्रभाव को रोकने में सहायक है।

मृदा नमी को बनाए रखना

सतह पर बना हुआ फसल अवशेष पलवार के रूप में कार्य करता है जो मृदा से जल वाष्पीकरण की हानि को महत्वपूर्ण रूप से कम करता है एवं मृदा संरक्षण तथा मृदा नमी संरक्षण में सहायक ही है। जल संसाधनों की कमी वाले क्षेत्रों में इसका अत्यधिक महत्व है। यह प्रक्रिया सिंचित क्षेत्रों में भी फसल की सिंचाई जल आवश्यकता की कमी में सहायक होगी जिससे भू–जल खनन में कमी आएगी जो कि उत्तर–पूर्व मैदानों मे जल स्तर की कमी के लिए जिम्मेदार है। जलीय अपरदन के खिलाफ मृदा संरक्षण में ठूंठ की महान भूमिका सुपरिचित है। शीत अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में बड़े स्तर पर की जाने वाली कृषि में मृदा सुरक्षा एवं नमी संरक्षण के लिए ठूंठ पलवार से संबद्ध का न्यूनतम कर्षण एवं सुस्थापित तकनीक है। खेत में बची हुई कड़बी भी मृदा की सुरक्षा करेगी एवं कटी हुई फसलें जैसेकि मक्का एवं ज्वार जो मृदा स्तर से ऊंची हैं वे भी मृदा सुरक्षा के लिए उपयोगी हो सकते हैं जबकि, छोटे स्तर की कृषि प्रणलियों में अकसर भूसा और कड़बी को चारा, झोपड़ी बनाने, क्यारी बनाने एवं ईंधन के रूप में उपयोग करने के लिए जमीनी स्तर से काटा जता है एवं मक्के की जड़ों को खोदकर निकाला जता है तथा उसे सुखाकर ईंधन के रूप में उपयोग में लाया जाता है।

जैविक कार्बन के निर्माण में सहायता

मृदा में पूरी तरह मिलाने की तुलना में अवशेषों को निम्न गति से गलाना मृदा जैविक कार्बन निर्माण में सहायता करता है। धान एवं गेहूँ के फसल चक्रों के बाद मृदा जैविक कार्बन के निर्माण मे सहायता करता है। धान एवं गेहूँ के फसल चक्रों के बाद मृदा जैविक कार्बन की मात्रा में 0.31 से लगभग 0.50 तक की वृद्धि हुई। जहाँ मृदा अवशेषों को वहीं बनापए रखा गया या मृदा में स्थापित किया गया। पृष्ठ या सतह पर सुरक्षित रखे गए अवशेषों में मृदा जैविक कार्बन का निर्माण अधिक था। जलाए गए मामलों में मृदा जैविक कार्बन में कमी पाई गई।

मृदा अपरदन में कमी करना

सतह पर सुरक्षित रखे गए अवशेषों ने वर्षा जल के प्रभाव को ग्रहण कर मृदा संरचना को बनाए रखने में सहायता की जिससे रिसाव में वृद्धि तथा अपवाह में कमी आती है। इसके अलावा सतह पर अवशेषों को रखना, जल, अपवाह के साथ–साथ मृदा पर वायु की सीधे प्रभाव को रोकने में भौतिक अवरोध के रूप में कार्य करता है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण को कम करना

अवशेषों को मृदा की सतह पर बिछाने से इनमें उपस्थित पोषक तत्व इमोबिलाइजेशन विधि द्वारा प्रभावित नहीं होतें। जिन मृदाओं को फसल अवशेषों से पलवारा गया हो उनमें उर्वरक का उपयोग सिंचाई से पहले करने से

ICAR-DCFR

नाइट्रोजन की गैसीकरण क्रिया द्वारा होने वाली हानि को रोका जा सकता है।

खरपतवारों के पीड़ा प्रकोप को कम करना

फसल अवशेषों, मृदा में स्थित खरपतवार बीजों को तथा मृदा पर प्रयोग किए गए शाखनाशियों की क्षमता को भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर सकता है। शून्य कर्षण प्रणाली के साथ–साथ मृदा पृष्ठ पर अवशेष धारण करने से खरपतवारो को रोकने में महत्वपूर्ण रूप से सहयोग मिलता है। शून्य कर्षण प्रणाली खरपतवारो की बीजों को प्रकाश से वंचित रखकर उन्हें दोबारा पनपने से रोकती है। मृदा तापमान एवं मृदा नमी के प्रभाव के कारण, खरपतवार की किस्म मृदा परिस्थितियों एवं किस्म तथा फसल अवशेषों की गुणवत्ता के आधार पर खरपतवार के अंकुरण में वृद्धि या कमी हो सकती है। अवशेष रहित परिस्थितियों की तुलना में कम फसल अवशेष स्तरों में खरपतवारों की संख्या कम हो सकती है, लेकिन अधिक अवशेष वाले स्तरों में खरपतवारो की संख्या में महत्वर्पूण रूप से कमी आएगी।

फसल अवशेषों में बीज बोने के लिए मशीन

कुछ फसलों में फसल अवशेषों को बनाए रखना भी फसल अवशेष प्रबंधन में मुख्य अड़चन है, विशेष कर बारानी फसलों में सख्त फसल अवशेषों जैसे कि कपास, अरहर आदि की मृदा में स्थापना या इनके उचित प्रबंधन के लिए विशेष यंत्रो की आवश्यकता होती है।

सतह पर बने हुए अवशेष के अंतर्गत फसलें

फसल उत्पादनों पर अवशेषों के संयोग का प्रभाव या कार्बनिक पदार्थों का संयोग सुस्पष्ट है। कार्बनिक पदार्थो के संयोग को अधिकतर फसलों ने सकारात्मक प्रतिक्रिया के रूप में दर्शाया है। भूमि संरक्षी फसलों के अलावा, मृदा पलवार भी अधिक प्रभावी पाई गई है। पलवार का प्रभाव खरीफ फसलों की तुलना में रबी फसलों में अधिक पाया गया है। मृदा में जहाँ अधिक नमी थी वहाँ पलवार का लाभ देखने को मिला। अतः सामान्य सूखाग्रस्त क्षेत्रों की तुलना में कम सूखाग्रस्त क्षेत्रों मे इसकी उपयोगिता सीमित पाई गई यह लाभ अधिकतर उथली एवं रेशेदार जड़युक्त फसलों में देखने को मिला है। फलीदार फसलो की कड़वी का प्रयोग कर उर्वरक नाईट्रोजन की मात्रा को पचास प्रतिशित तक कम किया जा सकता है। लंबी अवधि के अध्ययनों ने स्पष्ट किया है कि उर्वरकों द्वारा पचास प्रतिशत सिफारिश की गई नाइट्रोजन+ जैविकों द्वारा पचास प्रतिशत सिफारिश की गई नाइट्रोजन का संयुक्त प्रयोग अजैविक उर्वरकों परी निर्भरता को कम करने में काफी प्रभावी था। इसे विस्तृत रूप में तालिका–3 में दर्शाया गया है।

संरक्षण कृषि एवं फसल अवशेष प्रबंधन

संसाधन–बचत कृषि फसल उत्पादन के लिए सरक्षण कृषि एक संकल्पना है जो उच्च एवं टिकाऊ उत्पादन सहित स्वीकार्य लाभों को प्राप्त करने के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण की कोशिश करता है। संरक्षण कृषि को चार सिद्धातों द्वारा चरित्र किया गया है जो कि एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, वे हैं– अपरदन नियंत्रण के लिए न्यूनतम यांत्रिक मृदा विक्षोभ एवं मृदा गुणवत्ता में सुधार, स्थाई जैविक मृदा आच्छादन को बनाए रखना, जैव विविधता एवं पर्यावरण संरक्षण तथा प्रभावी फसल चक्र प्रभावी खरपतवार एवं कीट एवं नाशीजीव प्रबंधन इत्यादि। संरक्षण कृषि के व्यापक अर्थ में वे सभी प्रक्रियाएं शामिल हैं जैसे कि अवशेषों का पुनचक्रण, जैविक खाद, हरित खाद का प्रयोग एवं पोषकों के जैविक एवं अजैविक माध्यमों का समेंकित उपयोग, मृदा जल संरक्षण उपचार, समेकित नाशीजीवी प्रबंधन जैविक कृषि आदि जो आपेक्षित टिकाऊ उत्पादन स्तरों को प्राप्त करते हुए भूमि एवं पर्यावरण संरक्षण में सहायक हों। संरक्षण कृषि में यांत्रिक मृदा कर्षण को बिल्कुल कम करना एवं बाह्य निवेशों जैसे कि कृषि रसायनों एवं खनिज पोषकों या जैविकों का उचित उपयोग आवश्यक है तथा इन मात्राओं को इस प्रकार प्रयोग करना चाहिए जिससे कि जैविक प्रक्रियाओं में कोई हस्तक्षेप या अवरोध उत्पन्न न हो।

तालिका–3 उत्पादन में कटौती के बिना जैविक अवशेषों द्वारा नाइट्रोजन (N) के प्रतिस्थापन से अजैविक उर्वरक नाइट्रोजन (N) की आवश्यकता को आधे तक घटाया गया

फसल (मौसम)	अनाज उत्पादन (टन प्रति हैक्टेयर)	
	उर्वरक की सिफारिश की गई मात्रा	जैविकों द्वारा 50 प्रतिशत नत्रजन + उर्वरकों द्वारा 50 प्रतिशत नत्रजन
वर्ष के मौसम के बाद की ज्वार (16)	1.19	1.16
बाजरा (17)	2.03	2.08
रागी (22)	2.21	2.92
मूंगफली (16)	1.06	1.05
कपास (14)	0.76	0.82
मूंग (14)	0.52	0.56

फसल अवशेष एवं समेकित पोषक प्रबंधन

अवशेषों के एकल प्रयोग की तुलना में फसल अवशेषों एव अजैविक उर्वरकों के संयुक्त उपयोग ने बेहतर निष्पादन दिया है। नाइट्रोजन की कमी वाली मृदा (बेंगलूर) में फसल अवशेषों के उपयोग ने उर्वरता स्तर तथा मृदा भौतिक गुणें में महत्वपूर्ण रूप से सुधार दर्शाया। फसल अवशेषों को पांच साल तक लगातार प्रयोग करने से मक्का के अनाज उत्पादन में 25 प्रतिशत की वृद्धि हुई। मक्का अवशेष चार टन प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष की दर से खेतो को उपचार करने से जैव पदार्थ के स्तरों में 0.5 प्रतिशत तक वृद्धि हुई। हैदराबाद में बाजरा में फसल अवशेषों एवं लोबिया के उपयोग ने न केवल उत्पादन बढ़ारया बल्कि मृदा संरचना, मृदा कण समुच्चय एवं जलीय चालकता की स्थिरता में भी सराहनीय सुधार किया। अकोला में, ज्वार–अरहर अंतरासस्यन प्रणालियों में फसल अवशेषों के उपयोग से ज्वार के उत्पाद में 26 प्रतिशत की वृद्धि हुई। रांची में 4.4 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की आधार उत्पादन की तुलना में अवशेषों की भूमि में स्थापना से उच्चभूमि धान में 41 प्रतिशत की वृद्धि हुई। नाइट्रोजन स्थिर कने वाले पेड़ों जैसे कि ल्यूकेना एवं ग्लैरीसीडिया की कर्तन (पत्ते+टहनियों) में शुष्क भार आधार पर औसतन तीन प्रतिशत से अधिक नाइट्रोजन पाया गया। फाइटोमॉस के निर्माण द्वारा पोषकों की आपूर्ति के लिए ऐसे पेड़ों को मेंड़ों पर या खेत के एक किनारे उगाया जा सकता है। ऐसे वृक्षों की कर्तनों का एकल प्रयोग या अजैविक उर्वरकों के साथ करने से ज्वार एवं सूरजमुखी जैसी फसलों के उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई।

फसल अवशेष दहन

विगत कुछ वर्षो में कृषि क्षेत्र में कई उन्नत तकनीकियों विकसित की गई है, उन्ही में से एक मशीनीकरण है, जिसका उद्देश्य श्रमिक अभाव के समस्या को दूर करना एवं समय की वचत करना है। वर्त्तमान में पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिम उत्तरप्रदेश राज्यों में कम्बाईन हारवेस्टर से धान, गेहूँ एवं अन्य फसलों की 75 प्रतिशत कटाई खेतो में की जाती है। जिससे फसल अवशेष खेतों में बिखर जाता है और उसको एकत्र करना एक कठिन कार्य है। इस कारण किसान इसे खेतों में जला देते है। प्रतिवर्ष अक्टूबर एवं नवम्बर माह में फसल अवशेषों का व्यापक स्तर पर इन राज्यों में दहन किया जाता है।

फसल अवशेष दहन के दुष्परिणाम

1. मृदा संघटन का महत्त्वपूर्ण घटक मृदा कार्बनिक पदार्थ है। फसल अवशेष दहन से ये अमूल्य पदार्थ नष्ट होता जा रहा है। जिसके कारण मदा स्वस्थ्य एवं मृदा उत्पादकता का लगातार ह्रास हो रहा है।
2. फसल दहन के परिणामस्वरूप बढ़े हुए तापमान से मृदा के लाभदायक सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाते है जो कि मृदा जैव विविधता के लिए गम्भीर चुनौती है।

ICAR-DCFR

3. एक टन धान अवशेष के जलाने से 5.5 किलोग्राम नेत्रजन, 2.3 किलोग्राम फास्फोरस, 25 किलोग्राम पोटाश, 1.2 किलोग्राम गंधक एवं 400 किलोग्राम कार्बनिक पदार्थ का ह्रास होता है।
4. फसल अवशेष जलाने से भारी मात्रा में मिथेन, कार्बन डाईआक्साइड, सल्फर डाईआक्साइड इत्यादि विषैली गैसों के उत्सर्जन से वायु की गुणवत्ता खराब होती है। परिणामस्वरूप तापमान में वृद्धि एवं मौसम में परिवर्त्तन होता है।
5. विषैली वायु में श्वसन से अस्थमा एवं फेफड़ों में कैंसर जैसी बिमारियाँ फैलती है।

अतः इस उभरती फसल दहन समस्या से मुक्ति पाने हेतु फसल अवशेषों के प्रबंधन की आवश्यकता है।

ICAR-DCFR

आधुनिक कृषि में पोषक तत्वों का महत्त्व

विपिन कुमार, शिवनाथ सुमन एवं नवनीत कुमार
डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर (बिहार)

पौधों की रासायनिक जाँच से पता चलता है कि इनमें साठ से भी अधिक तत्व मौजूद हैं। ये सभी तत्व पौधों के लिए आवश्यक नहीं है। 'आवश्यक तत्व' उसे कहते हैं जिनके अभाव में पौधे अपना जीवनचक्र पूरा नहीं कर पाते हैं। कोई दूसरा पोषक तत्व आवश्यक पोषक तत्व का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता है। आवश्यक पोषक तत्व पौधों के भोजन में सीधे रूप में कार्य करता है। इन आवश्यक तत्वों को 'पोषक तत्व' कहते है जिनकी संख्या सतरह है तथा इनके नाम है कार्बन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, नाईट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, सल्फर, कैलसियम, मैग्नीशियम, जींक, आयरन, कॉपर, मैगनीज, निकेल, बोरान, मौलिब्डेनम एवं क्लोरीन। इनमें से कार्बन, हाइड्रोजन एवं आक्सीजन की आपूति वायुमण्डल में उपस्थित आक्सीजन गैस, कार्बन डाइऑक्साइड गैस एवं जल से होती है। शेष चौदह तत्वों की आपूर्ति मिट्टी द्वारा की जाती है।

पौधों को नाइट्रोजन, फारस्फोरस एवं पोटेशियम, कैल्सियम मैंगनेशियम एवं गंधक की आवश्यकता पौधों को कुछ कम मात्रा में होती हैं, अतः इन्हें माध्यमिक या गौण पोषक तत्व कहते हैं। शेष आठ अर्थात् जिंक, लोहा, ताँबा, मैंगनीज, बोरान, मैलिब्डेनम, निकेल एवं क्लोरीन की आवश्यकता पौधों को बहुत कम मात्रा में होती है, अतः इन्हें सूक्ष्म पोषक तत्व' कहते हैं। किसी भी मिट्टी में पोषक तत्वों की मात्रा निश्चित एवं सीमित है, अतः कई कारणों जैसे लगातार पौधों द्वारा लिए जाने एवं पानी के बहाव द्वारा बह जाने से मिट्टी से इनका ह्रास होते जा रहा है। जैसेः

1. सघन खेती एवं फसल चक्र में अधिक उपज देने वाली फसलों एवं फसल प्रभेदों का समावेश।
2. अधिक जस्ता उपयोग करने वाली फसलों पर अधिक जोर।
3. हल्की मिट्टी अर्थात् बलुआही मिट्टी पर खेती।
4. मिट्टी में जैविक पदार्थो का कमी होना।
5. सूक्ष्म पोषक तत्व युक्त उर्वरकों का उपयोग कम करना।
6. खेतों में जैविक एवं हरी खादों का उपयोग का अभाव।
7. अधिक पोषक तत्वों युक्त शुद्ध एन०पी०के० उर्वरकों का प्रयोग।
8. खर–पतवार को खेतों में जलाना।
9. असंतुलित एन०पी०के० उर्वरकों का व्यवहार इत्यादि।

पादप पोषक में तत्वों की अनिवार्यता की कसौटी

वैज्ञानिक आरनोन के अनुसार आवश्यक पोषक तत्व वह हैंः

- जिसकी कमी के कारण पौधे अपने जीवन–चक्र को पूरा नहीं कर सकते है।
- किसी विशेष आवश्यक तत्व की कमी को केवल उसी तत्व को मृदा में प्रदान करके दूर किया जा सकता है, अर्थात् एक आवश्यक तत्व की कमी दूसरे तत्व से पूरा नहीं किया जा सकता है।
- यह पोषक तत्व पौधे के पोषण में सीधे संनिहित होता है।

पोषक तत्वों के प्राप्ति के स्रोत

प्राकृतिक रूप में प्रमुख तत्वों में कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन हवा तथा पानी से प्राप्त होते है। अतः इनकी पूर्ति पौधों की आवश्यकतानुसार स्वतः होती रहती है। नाइट्रोजन तत्व हवा तथा मिट्टी के जैविक पदार्थो से प्राप्त होती है। शेष तत्व मिट्टी के खनिज अंश तथा जैविक पदार्थ से प्रापत होते है।

विभिन्न पोषक तत्वों के कार्य तथा पूर्ति के कमी होने पर पौधों पर प्रभाव

नाइट्रोजन

1. पौधों में बढ़वार होती है।
2. पत्तियों में हरा रंग पैदा होता है।
3. फास्फोरस तथा पोटाश के उपयोग में सहायक होता है।
4. भोजन तथा चारे की फसल में प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि होती है।
5. पत्ती, फल या दाने का उत्पादन बढ़ जाता है।
6. दाने स्वस्थ गूदेदार होते है।
7. अधिक मात्रा में उपलब्ध होने पर डंठल मुलायम हो जाते है तथा तना कमजोर हो जाता है। फसल गिरने का भय हो जाता है। फसल देर से पकती है। रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है।

कमी का प्रभाव

1. जड़ों तथा तनों के ऊपरी भाग की बढ़वार रूक जाती है।
2. तने छोटे तथा पतले रह जाते है।
3. पत्तियाँ छोटी तथा पीली होने लगती है। सर्वप्रथम पौधों की निचली पत्तियाँ, नोंक से पीली होने लगती है।
4. दाने पिचक जाते है तथा उपज घट जाती है।

सुधार के उपाय

इसमें बुआई के समय (गेहूँ, मक्का, गन्ना, आलू, इत्यादि) छिड़काव विधि से उर्वरको का व्यवहार करने से न तो एक समान मिट्टी में मिल पता है और न उचित गहराई पर रहता है जिससे फसले नेत्रजन का उचित उपयोग नहीं कर पाती है। अतः जमीन में बीज की समान गहराई में कूड़ की बगल में 3–6 से0 मी0 की दूरी पर दूसरे कूड़ मे उर्वरकों का व्यवहार करना सर्वोत्तम है क्योंकि जड़ों के विकास के बाद उर्वरक शीघ्र ही नेत्रजन लेना शुरू कर देती है। धान की रोपनी में उर्वरक का ठीक व्यवहार के लिए अन्तिम कादों के समय आधा बचा भाग बाली निकलने के समय दे। इस प्रकार प्रयोग से नेत्रजन की उपयोग क्षमता में वृद्धि होती है जिससे इसका नुकसान नही होता है।

फास्फोरस

1. पौधों की शक्ति और क्षमता बढ़ाता है जिससे फसल के गुण में वृद्धि होती है। विशेषकर पके
   फलों का स्वाद अच्छा हो जाता है।
2. झकड़ा (द्वितीय जड़े) के विकास में सहायक होता है। इससे फसल अधिक सूखा या ठंडक सहन कर पाती है तथा प्रारम्भ से पौधों की बाढ़ में तेजी आ जाती है।
3. पत्तियों के बढ़वार, बालियों के निकलने, बीज के निर्माण में शीघ्रता लाता है। फसलें शीघ्र पक जाती है। अतः ऐसे क्षेत्र में जहां बुआई विलम्ब से होती है और फसल उत्पादन हेतु अवधि कम हो फास्फोरस अधिक मात्रा में प्रयोग करने से फसल शीघ्र पक जाती है।
4. दाना बड़ा आकार का हो जाता है। इससे उत्पादन भी बढ़ जाता है।
5. पौधों की वृद्धि अच्छी होती है, लम्बाई भी बढ़ जाती है। कल्ले अधिक निकलते है और अधिकांशतः में बाली भी निकलती है। बालियां लम्बी होती है तथा दानों की संख्या भी अधिक होती है।
6. दलहनी फसलों में नाइट्रोजन संस्थापन क्रिया को बढ़ावा देता है। जीवाणुओं की संख्या एवं कार्य में वृद्धि हो जाती है।

कमी का प्रभाव

1. पौधों की बढ़वार रूक जाती है। तने के सिरे व जड़ों की बढ़वार रूक जाती है।
2. पत्तियाँ पर्पल या कांसे के रंग की हो जाती है। तने कमजोर दाना छोटा फल कम मीठे हो जाते है। फल कम आते है एवं फल कम लगते है।

सुधार के उपाय

विभिन्न स्थितियों में 40–60 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हेक्टेयर डालना लाभदायक होता है। सुपर फास्फेट का उपयोग सामान्यतः मृदाओं में लाभदायक पाया गया है। यदि मृदा अम्लीय

है तो रॉक फास्फेट, बेसिक स्लेग बुआई से 15–30 दिन पूर्व डालना उपर्युक्त पाया गया है। फॉस्फोरस उर्वरक को बुआई के साथ आधार के रूप में डालना ठीक रहता है।

पोटाश

1. पौधों में रोगों एवं कीड़ों के आक्रमण से बचने की अवरोधक क्षमता पैदा हो जाती है।
2. तना मजबूत और कड़ा होता है। दाना बड़े आकार का होता है।
3. पौधों में शर्करा निर्माण में सहायक होता है।
4. फास्फोरस की भांति जड़ों के विकास में सहायक होता है।
5. नाइट्रोजन एवं फास्फोरस के प्रभाव का संतुलित करता है। पोटाश के कारण नाइट्रोजन मिट्टी में अधिक समय तक रूकता है तथा पौधों द्वारा अधिक मात्रा में ग्रहण किया जाता है।
6. पौधों के शरीर में होने वाले रासायनिक परिवर्तनों को नियंत्रित करता है। पौधों के अन्दर निर्मित पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जोने में सहायक होता है।
7. पौधे जल लेने में मितव्ययता करते है। सूखे की स्थिति में प्रोटोप्लाज्म से जल सुगमता से अलग नहीं हो पता है और पौधों में सूखा सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है।

कमी का प्रभाव

1. पोटाश की कमी धीरे–धीरे पौधों के युवाकाल में प्रकट होती है। बढ़वार रूक जाती है। जड़े कम बढ़ती है।
2. नीचे की पत्तियाँ नोक से जलने लगती है तथा क्रमशः पत्तियां किनारों से जलने लगती है। किन्तु बीच का भाग अधिक गहरे रंग का रहता है। अधिक नमी होने पर पत्तियों पर मृतक स्थान पैदा हो जाते है और अन्त में पत्तियां सूख जाती है।
3. प्रकाश संश्लेषण की क्रिया कम हो जाती है तथा आलू जैसी फसलों में आलू कम संख्या में तथा छोटे आकार के हो जाते है। उपज के भण्डारण गुण में कमी आ जाती है।

सुधार के उपाय

हल्की बुनावट वाली फसलों में अधिक तथा भारी बुनावट वाली मृदाओं में कम पोटाश डालना पड़ता है। 20–40 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर डालना लाभदायक पाया गया है। अधिक उपज वाली प्रभेदों की सिंचित अवस्था में समय पर बुआई के लिए 40 किलोग्राम/हेक्टेयर एवं सिंचित व विलम्ब से बुआई के लए 20 किलोग्राम पोटाश का प्रयोग खेत की अन्तिम जुताई के समय दे।

कैल्शियम

1. शक्ति का द्योतक है। जड़ों के शीघ्र विस्तार एवं पौधे की बढ़वार हेतु आवश्यक है।
2. नाइट्रोजन को ग्रहण कराने में पौधों की सहायक करता है।
3. तनों में कड़ापन पैदा करता है।
4. अम्लीयता को दूर करता है।
5. भारी मिट्टी को हल्की तथा हल्की मिट्टी को भारी करता है।
6. मूंगफली जैसे फसलों में गर्भधारण क्रिया के पश्चात मिट्टी में आने वाले सूत (थ्रेड) को मिट्टी के अन्दर जाने के लिए शक्ति देता है।

कमी का प्रभाव

1. कमी का प्रभाव पौधे के बढ़ते हुए भागों एवं नई पत्तियों पर परिलक्षित होता है।
2. नई पत्तियों पर चित्तियाँ पड़ जाती है। बुरी तरह क्षत–विक्षत हो कर नोक से मुड़ जाती है और शीघ्र कली मर जाती है। फूल गिर जाते है।
3. गुठली युक्त फसलों में गुठली नहीं पड़ती है।

मैग्नीशियम

1. पौधे में विशेषतः बीज निर्माण में फॉस्फोरस के वाहक के रूप में कार्य करता है।
2. पत्तियों में पर्ण हरित का मुख्य भाग है। जिससे पत्तियाँ हरे रंग की हो जाती है।
3. शर्करा के एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने में सहायक होता है।
4. अन्य पोषक तत्वों के प्रचूर्ण को नियंत्रित करता है।

ICAR-DCFR

कमी का प्रभाव

1. पौधों की निचली पत्तियों पर कमी का प्रभाव प्रकट होता है। नसों के बीच में पाली धारियां प्रकट हो जाती है। मक्के की पत्तियों पर सफेद धारियां पड़ जाती है।
2. पत्तियां पहले ही गिरने लगती है और प्रभावित क्षेत्र सूखकर मर जाते है।

गंधक (सल्फर)

1. प्रोटीन का अंग है। यह अनेक प्रकार के प्रोटीन के निर्माण में आवश्यक है।
2. पर्ण हरित के निर्माण में सहायक है।
3. पौधे के अन्दर तेल के निर्माण में सहायक होते है।
4. दलहनी फसलों में जड़ों पर ग्रंथियां बनाने में सहायक होता है। जिससे हवा से नाइट्रोजन से स्थापन अधिक होता है।

कमी का प्रभाव

1. कमी का लक्षण नई पत्तियां पर प्रकट होती है। नई पत्तियां पीली पड़ जाती है। जो असाधारण लम्बी, पतली और कड़ी हो जाती है।
2. फल हल्के हरे, बेडौल, मोटे छिलके के कम रसदार होते है।

सुधार के उपाय

गंधक की कमी को दूर करने के बहुत सरल तरीके है। इनमें प्रमुख है–गंधक युक्त उर्वरकों का चुनाव, उर्वरकों की डाली जाने वाले मात्रा, विधि एवं प्रयोग समय। किसान एन०पी०के० युकत उर्वरक तो डालते ही है, सिर्फ सावधानी यह रखना है कि बाजार में उपलब्धता के अनुसार गंधकयुक्त खाद का ही चुनाव करे एवं अपने खेतों में डालें ताकि उसी खर्च में एन0 पी0 के0 के साथ–साथ गंधक की भी आपूर्ति हो जाये। हालांकि नेत्रजन के लिए उन्हें बाजार में यूरिया या डी०ए०पी० उर्वरक उपलब्ध हो पता है। अतः इसको तो उन्हें मजबूरन डालना पड़ता है। परन्तु फास्फोरस के लिए एस०एस०पी० का ही इस्तेमाल करे, खासकर उन फसलों में जहाँ फास्फेट की आवश्यकता ज्यादा होती है। एस०एस०पी० खाद डालने से गंधक की भी जरूरत भर मात्रा पूरी हो जाती है। अगर किसी कारणवश खेत में गंधक का प्रयोग नहीं कर पाये तो गंधक की कमी वाले खेतों में फसल उपजाने पर पौधों पर गंधक की कमी के लक्षण आ आयेगे। वैसी स्थिति में अमोनियम सल्फेट का टॉप ड्रेसिंग भी करना लाभदायक है क्योंकि इससे गंधक के साथ–साथ नाइट्रोजन भी मिल जाता है।

लोहा (आयरन)

1. यह क्लोरफिल संश्लेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
2. दूसरे पोषक तत्वों के संश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण है।
3. नाइट्रोजन में एन्जाइमों की सक्रियता को बढ़ाता है।

कमी का लक्षण

1. नई पत्तियां पर दिखाई पडते है और पत्तियों में पीलापन हो जाता है।
2. नई पत्तियां में धीरे–धीरे सिरे से ले कर नीचे की पत्ती तक पीली धारियां पड़ जाती है, जो बाद में सफेद हो जाती है, किन्तु मुख्य नसें हरी रह जाती है।
3. अत्यधिक कमी होन पर पूरी पत्ती सफेद हो जाती है, और बढ़वार रूक जाती है।

मैंगनीज

1. क्लोरोफिल (पर्ण हरित) के निर्माण में सहायक होता है।
2. आक्सीजन– अवकरण क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

कमी के लक्षण

1. कमियों के लक्षण नये पत्तियों पर प्रकट होते है।
2. पत्तियों में हरी धारियों के साथ सफेद धारियां एक के बाद एक बन जाती है।
3. अधिक कमी हो जाने पर सफेद धारियों पर अनेक छोटे–छोटे लाल भूरे धब्बे पड़ जाते है। जिनके आपस में मिलने पर पत्ती सीधी खड़ी फटने लगती है।

जिंक
1. क्लोरोफिल (पर्ण हरित) के निर्माण प्रजनन सम्बन्धी क्रियाओं में सहायक होता है।
2. प्रोटीन के निर्माण में सहायक होता है।

कमी के लक्षण
1. गन्ने की फसल में पत्तियों की शिराओं के माध्यवर्ती भाग में हल्का पीला और आधार के पास रंग हरा होता है। ज्यादा कमी होने पर पत्तियों के बीच का शिरा भूरा लाल रंग का हो जाता है।
2. मक्का के श्वेत कलिका रोग हो जाता है।
3. फलदार वृक्षों में कमी अधिक पायी जाती है जिनमें फुनगियां गुच्छेदार हो जाती है।
4. धान में खैरा रोग हो जाता है।
5. जिंक की कमी के क्षण पौधों के शैश्वाकाल में ही प्रकट होते है, और शिघ्रता से फैल जाते है। फसले तुरन्त प्रभावित हो जाती है।

बोरान
1. कार्बोहाइड्रेट के संश्लेषण और कोशिका विभाजन में सहायक होता है।
2. कैल्शियम की घुलनशीलता, उसके प्रचुषण और पौधों में क्रियाशीलता को बढ़ाता है।
3. कैल्शियम और पोटाश के अनुपात को नियंत्रण करता है।
4. नाइट्रोजन के प्रचुषण को बढ़ाता है।
5. दलहनी फसलों की जड़ों में नोड्यूल्स (ग्रंथियां) की वृद्धि में सहायक होता है।
6. प्रोटीन के निर्माण में सहायक होता है।

कमी का प्रभाव
1. पौधों के नये भागों पर कमी के लक्षण दिखाई पड़ते है।
2. पत्तियों मोटी, चिकनी और उन पर भेर रंग के धब्बे पड़ जाते है और नसे मोटी हो जाती है। ऊपरी पत्तियां मुड़कर विकृत हो जाती है।
3. अग्र कलिका की मृत्यु हो जाती है।
4. शलजम में भूरा गलन हो जाता है।
5. गोभी का फूल भूरा हो जाता है और तना खोखला हो जाता है।
6. चुकन्दर में हृदय गलतन रोग होता है।
7. गेहूँ, जो और मक्का में कलियों का विकास ठीक नहीं होता है। वे खोखली रह जाती है।
8. सेब, टमाटर, बेर और आलू में पानी सोखने के धब्बे पड़ जाते है और उनके अन्दर तन्तु फुसफुसे हो जाते है।

सुधार के उपाय
मिट्टी में बोरन की कमी होन से उपर वर्णित कार्य बाधित होता है साथ ही साथ फसल की उत्पादकता एवं उत्पाद के गुणवत्ता में कमी आती है। बोरान की कमी से पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है एवं पौधों पर बोरान की कमी के लक्षण दिखने लगते है। अतः मिट्टियों एवं पौधों में बोरान का प्रबन्धन आवश्यक है। बोरान का प्रयोग मिट्टी जाँच के बाद ही करना चाहिये अन्यथा लाभ के बदले हानि भी हो सकती है।

तांबा (कॉपर)
1. श्वास लेने की क्रिया को नियंत्रित करता है।
2. लेहे के उपयोग एवं विविध प्रकार की बीमारियों को रोकने में सहायक होता है।
3. पर्ण हरित के निर्माण में सहायक होता है।
4. पौधों के विकसित एवं प्रजनन क्रियाओं में प्रोत्साहित करता है।

कमी के प्रभाव
1. पत्तियां पीली पड़ कर झड़ जाती है। शाखाएं भरने लगती है।
2. अनाज की फसलों में प्रायः कलियां विकृत और बांझ हो जाती है।
3. गन्ने की पत्तियों में नीचे मुड़न आ जाता है और पत्तियों पर धब्बे पड़ जाते है। पर्ण हरित का बनना बंद हो जाता है।

मोलीब्डेनम
1. आक्सीजन क्रिया को प्रोत्साहित करता है।
2. नाइट्रेट को एमाइड में बदलने के लिए आवश्यक है।
3. लोहे के प्रचूषण क्रिया में सहायक होता है।
4. बाल वाली फसलों में नाइट्रोजन संस्थापन क्रिया को प्रोत्साहित करता है।
5. शर्करा निर्माण के लिए आवश्यक है।

ICAR-DCFR

कमी का प्रभाव

1. दाल वाली फसलों में नाइट्रोजन संस्थापन कार्य शिथिल हो जाता है और पीले पड़ जाते है।
2. गोभी जैसे पौधों में पत्तियों का फैलाव कम हो जाता है।

सुधार के उपाय

साधारणतः मोलिब्डेनम के विलेय यौगिक जैसे सोडियम मोलिब्डेट या मोलिब्डिक अम्ल मृदा में मोलिब्डेनम की कमी को दूर करने के लिए प्रयोग करते है। मोलिब्डिक अम्ल एवं सुपर फास्फेट मिलाकर एक उर्वरक बनाते है जो मोलिब्डेनम और फास्फेट की कमी को दूर करता है, इस मिश्रण को मोलिब्डेनाइजड़ सुपरफास्फेट कहते है। मोलिब्डेनम की कमी वाली खेतों में 0.2 से 0.6 मिलोग्राम सोडियम मोलिब्डेट का प्रयोग किया जाता है। पर्णीय छिड़काव के लिये 0.03 प्रतिशत सोडियम मोलिब्डेट का घोल 150 लीटर प्रति हेक्टर की दर से फसलों पर प्रयोग किया जाता है।

कलोरीन

1. फसल शीघ्र पकती है।
2. फसल के द्वारा वाष्पीकरण कम होता है।
3. पत्तियां अधिक भोजनशील नहीं हो पाती है।
4. प्रोटीन की मात्रा कम कर देता है।
5. पत्तियां में नीले, लाल और बैगनी रंग पैदा करता है।

घमंड के लिए नहीं बल्कि आत्म सम्मान के लिए
कभी-कभी जिन्दगी में कुछ लोगों का साथ
छोड़ना पड़ता है।

-आचार्य चाणक्य

ICAR-DCFR

बहुफसली खेती: विधा एक फायदे अनेक

शिवनाथ सुमन, विपिन कुमार, संतोष कुमार ठाकुर एवं संजय कुमार
डा० राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर (बिहार)

बहुफसली या बहुसस्यन या सघन खेती में एक या दो फसलों के बजाय भूमि का सघन रूप में व्यवहार करके साल भर में तीन या चार फसलें उगायी जाती है। इसमें सस्यन की गहनता समय एवं स्थान दोनों आयामों में होती है। समय गहनता का तात्पर्य एक ही वर्ष मे कई फसलों के उत्पादन से है और स्थानीय गहनता का अर्थ किसी निश्चित समय मे एक ही खेत से कई फसलों की उपज लेना है। हमारे देश में बहुफसली खेती करने मे मुख्य समस्या सिंचाई का निम्न स्तर तथा दीर्घकालीन प्रजाति का बहुतायत होना है। आजकल बहुफसली की परिभाषा में एक आयाम जोड़ा गया है मृदा उर्वरता को बनाये रखना। अतः बहुफसली खेती को अब इस प्रकार परिभाषित किया जाता हैं।

मृदा उर्वरता को नष्ट किए बिना सालभर मे एक ही खेत में दो या दो से अधिक फसलों का उत्पादन करना बहु सस्यन कहलाता है। फसल उत्पादन के पश्चात, अनाज का उपयोग किसान भाई खाधान्न के रूप में करे एवं पुआल या भूसा की अधिक से अधिक मात्रा को कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट आदि बनाकर खेत को लौटा दे। वैसे खेत में विभिन्न फसल उगाने के बाद मृदा को जड़ के रूप में जो जैविक पदार्थ मिलता है उससे भी मृदा उर्वरता में वृद्धि होती है।

बहुसस्यन या सघन खेती की आवश्यकताएँ

1. सिंचाई की समुचित व्यवस्था करना।
2. खाद, उर्वरक एवं जैव उर्वरक की उपलब्धता।
3. रोग, कीट तथा खरपात नाशी पदार्थो का प्रबन्धन।
4. बुआई, सिंचाई तथा कटाई के लिए उन्नत यंत्रो की उपलब्धता।
5. फसल उत्पादन से संबंधित तकनीकी ज्ञान की उपलब्धता।
6. फसलों के भण्डारण तथा बिक्री का समुचित प्रबन्धन।

सघन या बहुसस्यन खेती फसल चक्र का उदाहरण

1. मक्का–आलू–गेहूँ
2. मक्का–आलू–मक्का (वसन्तकालीन)
3. ज्वार–गेहूँ–मूँग
4. मक्का–सूरजमुखी–मक्का

दोमट मिट्टी

1. मक्का–आलू–गेहूँ
2. मूँग–धान–आलू
3. मक्का–सूरजमुखी–मूँग

चिकनी दोमट मिट्टी

1. धान–गेहूँ–मूँग
2. धान–मटर–मक्का
3. धान–बरसीम–मक्का

बहुसस्यन या सघन खेती के प्रकार

a) अन्तरा सस्यन
b) मिश्रित सस्यन
c) सतत् सस्यन
d) अनुपद सस्यन
e) ओभर लैपिंग सस्यन

(A) अन्तरा सस्यन

एक ही खेत में एक ही साथ दो या दो से अधिक फसलों को एक निश्चित दूरी पर या एक निश्चित अनुपात में उगाने की कृषि कला को अन्तरा सस्यन कहते है।

उदाहरण–गेहूँ–सरसों–9:1

यहाँ 9 पंक्ति गेहूँ एवं 1 पंक्ति सरसों का लगाते है। ऐसी फसलें प्रायः उन फसलों के साथ ली जाती हैजिसमें पंक्ति से पंक्ति का फासला अधिक होता है। यहाँ परसस्य गहनता स्थान आयाम में पूरी होती है। इसे निम्नलिखित चॉर प्रमुख भाग में बाँटते है।

(i) समान्तर सस्यन

असमान वृद्धि प्रवृति तथा आपस में शून्य प्रतियोगिता रखने वाली फसलों को अन्तरा सस्यन के रूप में उगानें की कला को समान्तर सस्यन कहते है।

जैसेः उड़द या मूँग+मक्का

मक्का को पोषक तत्वों की सबसे अधिक आवश्यकता बुआई के 50 दिनो के बाद होती है जबकि उड़द या मूँग को 30–35 दिनों बाद पोषक तत्वों की सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

(ii) सहचरी सस्यन

ऐसा अन्तरा सस्यन जिसमें दोनों फसलों का उत्पादन उसके शुद्ध फसलों के उत्पादन के बराबर हो जैसें:–सरसों या आलू या प्याज+ ईख/साथ ईख के आलू या प्याज या सरसों उग जाने पर न तो ईख का उत्पादन उसके एकल सस्यन से प्राप्त शुद्ध उत्पादन से कम होता है और न ही आलू या प्याज या सरसों का।

(iii) बहुस्तरी सस्यन

भूमि के किसी निश्चित क्षेत्र में किसी निश्चित समय में विभिन्न उँचाई की कई फसलों को साथ–साथ उगाना बहुमंजिली या बहुस्तरीय खेती कहलाता है।

जैसे:– ईख+सरसों + प्याज या आलू

(iv) सिनर जेटिक सस्यन

जब दो अन्तरा सस्यन फसलों का प्रति हेक्टेयर उत्पादन उसके शुद्ध फसलों के प्रति हेक्टेयर से अधिक हो तो उसे सिनर जेटिक सस्यन कहते है।

जैसेः ईख + प्याज

ईख की दो पंक्तियों के बीच रिक्त स्थानों में आलू की बुआई करने से जहाँ एक ओर अतिरिक्त आमदनी होती है वहीं दूसरी ओर किसी एक फसल नष्ट होने की स्थिति में जोखिम की संभावना कम होती है।

सफल अन्तरा सस्यन की जरूरतें

(1) दोनों घटक फसलों के पोषक तत्वों की अधिकतम माँग एक ही समय मे नही होना चाहिए।

जैसेः मक्का+उड़द या मूँग

यहाँ मक्का के लिए अधिकतम पोषक तत्वों की माँग बुआई से 50–55 दिन बाद होती है। जबकि मूंग या उड़द के लिए यह समय बुआई के 30–35 दिन बाद आता है। जब मक्का को अधिकतम पोषक तत्व की जरूरत होती है उस समय मूंग या उड़द का पुष्पीकरण या कटाई का समय निकट होता है।

(2) सौर–ऊर्जा के लिए प्रतियोगिता न्यूनतम हो।
(3) दोनों फसलें एक दूसरे के सहयोगी सिद्ध होने वाली हो।
(4) पकने के समय का अन्तराल कम से कम 30 दिनों का उपयुक्त होता है।
(5) CO_2 तथा पानी के लिए प्रतियोगिता कम होनी चाहिए।

(B) मिश्रित सस्यन

जब किसी खेत में दो या दो से अधिक फसलें बिना किसी पंक्ति विन्यास या अनुपात के साथ उगाई जाती है तब उसे मिश्रित सस्यन कहते है। ऐसे सस्यन में बीजों की बुआई छिड़काव विधि से होती है। यह जीविकोपार्जन खेती का अभिन्न अंग है। इसका मुख्य उद्देश्य फसल नष्ट होने से संबंधित जोखिम कम करना होता है जबकि अन्तरासस्यन का मुख्य उद्देश्य दो फसलो के रिक्त स्थानों को अधिक फसलोत्पादन हेतु उपयोग मे लाना है। मिश्रित सस्यन की नई अवधारण अन्तरासस्यन है।

(C) सतत् सस्यन

किसी खेत में एक वर्ष में दो या दो से अधिक फसल को शीघ्र क्रम में उगाना सतत् सस्यन कहलाता है। ऐसे सस्यन में पहले फसल के कटते ही दूसरी फसल को बो दिया जाता है अर्थात् आगामी फसल की बुआई तथा पूर्ववर्ती फसल की कटाई एक शीघ्र क्रम मे होती है। मक्का की कटाई के तुरंत बाद आलू को लगाना

तथा आलू को खोद कर तुरंत मिर्च को लगाना सतत्–सस्यन का उदाहरण है।

(D) अनुपद् सस्यन

अनुपद् सस्यन की अवधारणा रिले दौड़ से आई है। रिलेदौड़ मे चॉर धावक अपने हाथ में झंडे को लेकर दौड़ते है। पहला धावक अपने दौड़ के अंतिम चरण से पहले ही दूसरे धावक को तथा दूसरा तीसरे को ओर तीसरा धावक चौथे धावक को अपना झंडा बढ़ा देते है। अनुपद सस्यन में झंडे का स्थान खेत है तथा धावक का स्थान फसल ले लेती है। इसमें पूर्ववर्ती फसल के कटने से पहले ही आगामी फसल को लगा दिया जाता है। लेकिन इसमें प्रतियोगिता न्यूनतम हो। इसके लिए आगामी फसल की बुआई पूर्ववर्ती फसल की कार्यिकी परिपक्वता के बाद ही करनी चाहिए। इसमें ऐसी फसलों का चुनाव किया जाता है जिससे कि भूमि की उर्वरा शक्ति का अधिक ह्रास नहीं होता है तथा फसल उगाने में अधिक खर्च भी नहीं पड़ता है। इसमें निम्नलिखित प्रकार की फसलें ली जाती है:

- एक दलहनी फसल जैसे मूंग, उड़द, मूंगफली आदि। इस तरह की फसलें भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है।
- दो धान्य फसल जैसे गेहूँ मक्का आदि। इस तरह की फसलों को उर्वरक की अधिक आवश्यकता होती है।
- एक तिलहन फसल जैसे सरसों, तोरिया, सूरजमुखी, तीसी आदि। इन फसलों की उर्वरक माँग अधिक नहीं होती है तथा भूमि की उर्वरता शक्ति को नही बढ़ाती है।

रिले क्रॉपिंग के चॉर फसलों में उतना ही उर्वरक डाला जाता है जितना कि दो फसलों गेहूँ–मक्का फसल–चक्र मे दिया जाता है। इसमें न्यूनतम भू–परिष्करण विचारधारा को अपनाया जाता है ताकि खर्च अधिक न हो। इस उदाहरण में मूँग के पहले गेहूँ लगाया जाता है। मूँग में उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती है। यह गेहूँ से बचे अवशेष उर्वरता पर उगाया जाता है। मूँग भूमि में वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करता है। जिसका फायदा मक्का को मिलता है।

(E) ओवर लैपिंग (अतिव्यापी) खेती

यह भी सघन खेती का ही एक रूप है। इसमें एक ही वर्ष में 3–4 फसलें ली जाती है और एक फसल के कटने से पहले ही दूसरी फसल खेत में बो दी जाती है।

उदाहरणः मक्का–आलू–प्याज–भिण्डी

यहाँ पर एक ही खेत में अक्टूबर मॉह में आलू लगाया जाता है। आलू मे मिट्टी चढ़ाने के बाद आलू की नालियों मे प्याज लगाया जाता है। जब आलू तैयार हो जाता है तो आलू को खोदकर उसकी जगह पर भिण्डी लगाया जाता है। भिण्डी की खड़ी फसल मे ही मक्का की बुआई कर दी जाती है। इस प्रकार, फसल चक्र एवं बहुफसली खेती द्वारा अधिक लाभ प्राप्त करने के साथ–साथ स्वस्थ मृदा की प्राप्ति होती है।

पाँच मिनट और सोने की आदत हमें घण्टों सुला देती है,
यही आलस्य जीवन में हमें बरसों पीछे कर देता है।

–रतन टाटा

समेकित पोषण प्रबन्धन में हरी खाद का प्रयोग

शिवनाथ सुमन, विपिन कुमार, संतोष कुमार ठाकुर, संजय कुमार एवं संजय तिवारी
डॉ० राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर (बिहार)

उन्नत प्रभेद एवं अधिक उर्वरक का व्यवहार तथा सिंचाई विधि में सुधार से फसल उत्पादन में काफी प्रगति हुई है। जितना उर्वरक फसल में दिया जाता है उससे बहुत अधिक पोषक तत्वों को फसल ग्रहण करते हैं। जिसके कारण दिन प्रतिदिन मिट्टी की उर्वराशक्ति में ह्रास होता है तथा भौतिक एवं रासायनिक गुणों पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है। जो उर्वरक फसल के उत्पादन में व्यवहार किया जाता है उसका 40–50 प्रतिशत नेत्रजन, 15–20 प्रतिशत स्फुर एवं 60–70 प्रतिशत पोटाश उपयोग होता है शेष किसी न किसी रूप में नुकसान हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि समेकित (समन्वित) पोषक तत्व प्रबन्धन के द्वारा खेती की जाये ताकि उर्वरक के व्यवहार में कमी की जा सके एवं मिट्टी की उर्वराशक्ति बनी रहे। समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन फसलों में पोषक तत्व डालने की वह तकनीक है जिसमें रासायनिक उर्वरकों का व्यवहार जैविक खादों के साथ मिलाकर किया जाता है क्योंकि आये दिन उर्वरको का अभाव एवं मूल्यों में वृद्धि हो रही है। अतः उर्वरक का प्रयोग जैविक खाद के साथ मिलाकर करे ताकि इसका उपयोग फसलों के द्वारा अधिक से अधिक हो सके।

रासायनिक उर्वरक को जैविक खाद, हरी खाद एवं जीवाणु खाद के साथ मिलाकर व्यवहार करने से उर्वरक की उपयोगिता फसलों के द्वारा अधिक से अधिक दिनों तक बनी रहती है। केवल जैविक खाद का उपयोग संभव नहीं है क्योंकि इसमें पोषक तत्वों की मात्रा बहुत हीं कम होती है तथा पोषक तत्व पौधों को धीरे–धीरे कम मात्रा में प्राप्त होते हैं। रासायनिक उर्वरक के प्रयोग से पौधों को सिर्फ एक या दो पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं। समन्वित पोषक तत्व प्रबन्ध से पौधों को सन्तुलित एवं उचित मात्रा में पोषक तत्व मिलते हैं।

खाद के प्रकार

खाद मुख्यतः दो प्रकार के होते है– रासायनिक खाद एवं जैविक खाद। रासायनिक खाद कारखानों में तैयार किया जाता है जैसे यूरिया, डी.ए.पी., सिंगल सुपर फास्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश आदि। जैविक खाद दो प्रकार के होते है। बलकि या स्थूल जैविक खाद एवं सान्द्रित या कन्सनट्रेटेड जैविक खाद। स्थूल खाद में पोषक तत्वों की मात्रा काफी कम होती है अतः इसका उपयोग काफी मात्रा में की जाती है। इसके अन्तर्गत गोबर की खाद, खर–पतवार एवं खलिहान के अवशेष की खाद, शहरी कम्पोस्ट, केंचुआ खाद एवं हरी चााद आती हैं। सान्द्रित जैविक खाद में मुख्यतः तिलहनी फसलों की खल्ली, बुचड़खाने की कम्पोस्ट, हड्डी की खाद एवं मछली का कम्पोस्ट आता है। इस खाद में पोषक तत्वों की मात्रा बल्कि जैविक खाद की तुलना में काफी अधिक होती है। हरी खाद को छोड़कर अन्य स्थूल जैविक खाद दूसरे स्थानों मे तैयार कर खेत में डाले जाते है। जबकि हरी खाद को साधारणतः खेत में पैदा कर उसी खेत में गाड़ दिया जाता है।

हरी खाद एवं उनके प्रकार

हरे–भरे मुलायम पौधे एवं पत्तियों को हल के द्वारा खेत में गाड़ने से जो खाद बनती है उसे हरी, खाद कहा जाता है, इससे खेत की न केवल भौतिक गुणों में सुधार होता है बल्कि उस खेत की उर्वरा शक्ति भी बढ़ जाती है। हरी खाद का प्रयोग काफी पुरानी है और हमारे पूर्वज भी ऐसा करते आये हैं। हरी खाद मुख्यतः दो प्रकार की होती है– पहले प्रकार में हरी खाद वाली फसल को खेत में उपजा कर उसी खेत में गाड़ दिया जाता है जैसे ढैंचा, सनई, गुआर, मूंग आदि। जबकि दूसरे प्रकार में अन्य जगहों से हरी खाद वाली फसल को लाकर खेत में गाड़ा जाता है जैसे सुबबुल, करंज, जंगली ढैंचा, जंगली नील आदि।

हरी खाद हेतु फसल

हरी खाद के लिये दलहनी एवं अदलहनी दोनों प्रकार की प्रजातियों वाली फसल का उपयोग होता है। दलहनी फसलें वायुमंडल से नेत्रजन का अवशोषण कर मिट्टी में स्थिर करते है। जिससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ जाती है। इसलिए मुख्यतः दलहनी प्रजाति वाली फसलें हीं हरी खाद में उपयोग की जाती है। खरीफ में मुख्यतः सनई, ढैंचा, लोबिया, मूंग, बोरा, ज्वार आदि ली जाती है जबकि रबी में सेन्जी, खेसारी एवं बरसीम ली जाती है। सनई एवं ढैंचा मिट्टी में 60–80 किलाग्राम नेत्रजन तथा अन्य पफसलें 40–50 किलोग्राम नेत्रजन प्रति हेक्टर बढ़ाती है। अदलहनी फसलों में भांग, जनेरा, मकई एवं सूर्यमुखी फसल का उपयोग भी हरी खाद मे किया जाता है।

हरी खाद फसल हेतु उपयुक्त वातावरण

सनई, ढ़ैंचा एवं ग्वार हरी खाद के लिए लाभदायक फसल है सनई अधिक वर्षा वाली जगह के लिए लाभदायक है जबकि ढैंचा किसी भी तरह की जमीन एवं जलवायु में ली जा सकती है। इसे अकाल एवं बाढ़ग्रस्त क्षेत्र तथा लवणीय, क्षारीय एवं अम्लीय मिट्टी में भी हरी खाद के लिए पैदा की जा सकती है। ग्वार को कम वर्षा एवं निम्न उर्वरा शक्ति वाले भूमि में पैदा किया जा सकता है।

साधारणतः मानसून की पहली वर्षा के साथ ही हरी खाद वाली फसल की बुआई कर देनी चाहिए। रबी फसल की कटाई के बाद अगर खेत में नमी हो तो हरी खाद वाली फसल की बुआई की जा सकती है तथा बुआई के 6–8 सप्ताह बाद एवं जब पौधा काफी मुलायम एवं पालीयुक्त हो एवं पौधा में फूल निकलने लगे तो उसे मिट्टी में हल के द्वारा गाड़ देनी चाहिए। इस फसल के लिए कोई विशेष जमीन की तैयारी नहीं की जाती है। सिर्फ यह ध्यान में रखा जाता है कि खेत में उचित नमी हो जिससे बीज का जल्द अंकुरण हो और पौधा तेजी से बढ़े। अधिक उर्वरा शक्ति के लिए बुआई से पहले स्फुरीय एवं पोटाशिक उर्वरक का व्यवहार भी किया जा सकता है। मुख्य बात यह है कि हरी खाद के फसल का चुनाव मिट्टी के प्रकार अर्थात् ऊँची जमीन, नीची जमीन, ज्यादा नमी वाली जमीन या क्षारीय, अम्लीय या लवणीय मिट्टी के आधार पर होना चाहिए। बीज की बुआई छिटकवा विधि द्वारा की जाती है।

हरी खाद वाली फसल को बोने एवं गाड़ने का समय

हरी खाद वाली फसल मुख्य चार विधियों द्वारा उपजायी जाती हैः

- गरमा फसल के रुप में तेजी से बढ़ने वाली फसल जैसे सनई, ढैंचा, मूंग आदि मई से जून के महीने में तैयार किया जाता है और इसे जूलाई से अगस्त माह में खरीफ फसल लेने के पूर्व जमीन में गाड़ दिया जाता है। इसी विधि से तैयार हरी खाद का प्रयोग मुख्यतः धान के लिए किया जाता है।
- मुख्य फसल के दो पंक्तियों के बीच में हरी खाद की फसल को उपजाया जाता है और 6–8 सप्ताह के होने पर हरी खाद वाली फसल को जमीन में गाड़ या दाब दिया जाता है। इस विधि से धान के लिए ढैंचा, मकई के लिये सनई, लाबिया या चना तथा ईख एवं बागीचा के लिये बरसीम हरी खाद की फसल के रुप में ली जाती है।
- जमीन को खरीफ में परती न छोड़कर हरी खाद वाली फसल खरीफ फसल के रुप में ली जाती है इसमें खरीफ फसल का नुकसान होता है।
- मिट्टी लवणीय या क्षारीय होने पर हरी खाद वाली फसल का समावेश फसल चक्र में किया जाता है जिससे लवणीय या क्षारीय मिट्टी वाली भूमि का सुधार हो सके। इसमें मुख्यतः ढैंचा की खेती की जाती है।

हरी खाद वाली फसल को जमीन में गाड़ने एवं मुख्य फसल लेने का अन्तराल मौसम एवं हरी खाद वाली फसल की प्रकृति पर निर्भर करती है। अगर मुख्य फसल धान है और हरी खाद वाली फसल काफी मुलायम एवं पानी युक्त है तो उसे गाड़ने के तुरन्त पश्चात् धान की रोपनी की जा सकती है लेकिन अगर हरी खाद की फसल कड़ी हो तो उसे सड़ने के लिए

समुचित समय देना चाहिए ऐसी स्थिति में 6–8 सप्ताह बाद ही धान की रोपाई की जानी चाहिए। हरी खाद मिट्टी में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ाते है जिससे जीवाणु अधिक क्रियाशील हो जाते है। हरी खाद के दलहनी होने के कारण मिट्टी में नेत्रजन की मात्रा तो बढ़ाती ही है साथ ही साथ अन्य पोषक तत्व जैसे फास्फोरस, पोटाश एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ा देते है। यह मिट्टी की संरचना एवं अन्य भौतिक गुणों में सुधार करती है जिससे मुख्य फसल की पैदावार और उर्वराशक्ति बढ़ जाती है। यह मिट्टी में पानी सोखने की क्षमता बढ़ा देते है, यह खाद मिट्टी सुधारक का कार्य करता है।

समुचित वर्षा नहीं होने पर हरी खाद वाली फसल मिट्टी में पूरी तरह नहीं सड़ पाती है तो मुख्य फसल के रुप में लेने पर खरीफ फसल को नुकसान होता है। हरी खाद से किसान भाईयों को प्रत्यक्ष रुप में कोई फायदा नहीं हो पाता है।

हरी खाद से नगदी की प्राप्ति एवं पैदावार में वृद्धि

राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय ने अनुसंधान के द्वारा एक तकनीक का इजाद किया है, जिससे किसान को हरी खाद से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप से फायदा मिलता है अगर किसान हरी खाद के फसल के रुप में मूंग ले और मूंग की फली तोड़ने के पश्चात फसल की अवशेष अर्थात् पत्ते एवं तना को जमीन में गाड़ देते है तो उन्हें न केवल 4–6 क्विंटल प्रति हेक्टर मूंग की प्राप्ति होगी बल्कि उन्हें धान एवं गेंहूँ फसल लेने पर 20–25 प्रतिशत उर्वरक की बचत होगी अर्थात मूंग फसल अवशेष का प्रयोग करने पर 25 किलोग्राम नेत्रजन, 15 किलोग्राम स्फूर एवं 10 किलोग्राम पोटॉश की बचत धान में तथा 20 किलोग्राम नेत्रजन, 12 किलोग्राम स्फूर एवं 8 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टर की बचत गेहूँ में होगी। एक अन्य अनुसंधान से यह पता चला है कि हरी खाद का व्यवहार करने पर सूक्ष्म पोषक तत्वों का स्तर मिट्टी में बढ़ जाता है जिससे अलग से सूक्ष्म पोषक तत्वों का व्यवहार नहीं करना पड़ता है अर्थात हरी खाद के व्यवहार से सूक्ष्म पोषक तत्वों पर होने वाले खर्च से भी बचा जा सकता है।

हरी खाद से सूक्ष्म पोषक तत्व प्रबन्धन

जैसा कि हम सभी जानते है कि समय के साथ–साथ एक–एक कर धीरे–धीरे सभी सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होते जा रही है। इसके निदान के लिये सूक्ष्म पोषक तत्व युक्त उर्वरकों का प्रयोग करते हैं जो काफी खर्चीला पड़ता है। इन पोषक तत्वों का देख रेख जैविक पदार्थो द्वारा भी हो जाता है हलाकि जैविक पदार्थो में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा बहुत कम होती है। परन्तु जैविक पदार्थ के सड़ने से जो रासायन उत्पन्न होते हैं वे बहुत ही कारगर होते हैं। ये रसायन सूक्ष्म पोषक तत्वों की अघुलनशील मात्रा को घोलकर एक नया रसायन बनाते हैं जो काफी घुलनशील होते हैं एवं पौधों को उपलब्ध हो जाते हैं।

जैविक पदार्थ मिट्टी की उर्वराशक्ति में भी सुधार लाता है। अतः यह जानना जरूरी है कि क्या जैविक पदार्थ को सूक्ष्म पोषक तत्वों के रासायनिक उर्वरक के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। जैविक पदार्थ कई रूप में मिट्टी में डाले जा सकते हैं जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, अन्य जानवरों की खाद, फसल अवशेष एवं हरी खाद। हरी खाद के लगातार इस्तेमाल से फसल उपज पर प्रभाव एवं मिट्टी में जस्ते का प्रभाव सारणी 1 मे दर्शाया गया है। इससे पता चलता है कि हरी खाद के इस्तेमाल से उपज पर काफी प्रभाव पड़ता है। हरी खादों में सबसे ज्यादा प्रभावशाली ढैंचा पाया गया है, जिसके लगातार इस्तेमाल से धान की उपज में लगभग 7.4 क्वि/हे. की वृद्धि पायी गयी है। यह वृद्धि सिर्फ जिंक सल्फेट के प्रयोग से हुयी वृद्धि के बराबर है। हालाकि मूँग में हरी खाद बहुत अधिक कारगर नहीं पायी गयी है परन्तु अगर मूँग के साथ 5.0 टन/हे० गोबर की खाद मिला दिया जाय तो इसका प्रभाव सबसे ज्यादा है। हरी खाद के व्यवहार से मिट्टी में उपलब्ध जस्ते का स्तर में काफी वृद्धि पायी गयी है। सिर्फ हरी

खाद के लगातार व्यवहार से जस्ते का क्रान्तिक स्तर से ज्यादा जमाव हो जाता है अर्थात जस्ते की कमी दूर हो जाती है। इसी तरह अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी देख रेख हरी खाद द्वारा हो जाती है।

तालिका 1: धान–गेहूँ फसल चक्र में हरी खाद का धान के उपज पर प्रभाव एवं मिट्टी में जस्ते का जमाव

उपचार	दाना उपज (क्विं/हे०)	उपज वृद्धि (क्विं/हे०)	मिट्टी में जस्ता का स्तर (ppm)
नियंत्रित	30.3	—	0.66
सनई प्रति वर्ष	34.7	4.4	0.75
सनई प्रति दूसरे वर्ष	33.3	3.0	0.72
ढ़ैंचा प्रति वर्ष	37.7	7.4	0.82
ढ़ैंचा प्रति दूसरे वर्ष	36.0	5.7	0.72
मूँग प्रतिवर्ष	33.3	3.0	0.74
मूँग + 2.5 टन FYM/हे०	38.0	7.7	0.82
मूँग + 5.0 टन FYM/हे०	40.3	10.0	0.89
FYM 10 टन/हे०	38.3	8.0	0.88
50 कि०ग्रा० जिंक सल्फेट/हे० प्रति दो वर्ष	37.7	7.4	1.21

अपनी छोटी-छोटी बाधाओं को पार करना चाहिए, क्योकि इंसान पहाड़ से नही छोटे-छोटे पत्थरों से ठोकर खाता है।

–अरस्तू

पर्वतीय क्षेत्रों में कृषिरत महिलाओं हेतु उन्नत कृषि यंत्रीकरण द्वारा अधिक कार्यक्षमता: एक समाधान

[1]प्रतिभा जोशी, रेनू जेठी[1] एवं गिरिजेश सिंह महरा[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[2]भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

वर्तमान समय में खाद्यान्न आवश्यकता की प्रतिपूर्ति केवल वैज्ञानिक तरीकों से की गई कृषि एवं उत्तम कृषि प्रबंधन से ही संभव हो सकती है। अधिक उत्पादन हेतु उन्नत बीजों के साथ साथ उन्नत कृषि प्रथाएं भी महत्वपूर्ण हैं। कृषि यंत्रीकरण कृषि संबंधित कार्यों को यथा समय सम्पन्न करने में सहायक होने के साथ साथ समय, श्रम, ऊर्जा व्यय, लागत व श्रमिकों की बचत करने में सहायक होते हैं। साथ ही कृषि आदानों जैसे बीज, उर्वरक, कृषि रक्षा रसायन, सिंचाई जल सदुपयोग, खरपतवार नियंत्रण आदि का सक्षम सदुपयोग कर प्रति इकाई कम उत्पादन लागत तथा उत्पाद वृद्धि में सहायक होते हैं। भारत की जनगणना के मुताबिक देश में छह करोड़ से ज्यादा महिलायें कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों में कार्यरत हैं। महिला किसान तेजी से खुद को कृषि श्रम बल में प्रमुख योगदानकर्ता के रूप में लक्षित कर रही हैं।

ग्रामीण कृषक महिलाएं भारतीय कृषि का मेरूदण्ड हैं। खाद्य और कृषि संगठन के आंकड़ों के अनुसार कृषि क्षेत्र में कुल श्रम में ग्रामीण महिलाओं का योगदान 53 प्रतिशत है, परंतु आज भी महिलाओं को कृषि संबंधित अधिकारों से वंचित रखा जाता है। ये महिलाएं कृषि से संबंधित सभी प्रमुख कार्यों में भाग लेती हैं जिनमें भूमि की जुताई, पौध रोपण, खरपतवार की कटाई–छटाई, फसल की कटाई, औसाई, हरी खाद एवं गोबर खाद तैयार करना, बीज का चुनाव करना, खाद एवं कीटनाशक का छिड़काव, बीज एवं अनाज का भंडारण करना आदि शामिल हैं। दूसरे शब्दों में बुवाई से लेकर फसल कटाई और उसके बाद के कार्यों में महिलाएं अहम भूमिका निभाती हैं। कृषि से संबधित क्रियाकलापों में पशुपालन एक ऐसा क्षेत्र है जिससे जुड़े हर एक कार्य को ज्यादातर महिलाएं ही करती हैं। जैसे पशुओं को चारा खिलाना, दूध दोहना, पशुओं की देखभाल करना आदि।

पारम्परिक तरीकों से कृषि के कार्य जैसे निराई, गुड़ाई, पौध रोपण, फसल की कटाई आदि कार्य झुक कर करने से महिलाओं को थकान तो होती है, परिणामस्वरूप उनकी कार्यक्षमता में कमी आने लगती है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि कृषक महिलाओं को विभिन्न उपकरणों एवं यंत्रों के बारे में जानकारी हो जिससे फसल उत्पादन, कृषि प्रबंधन एवं प्रसंस्करण में महिलाओं द्वारा किए जा रहे अनावश्यक श्रम को कम किया जा सके तथा उनकी श्रम क्षमता को बढ़ाया जा सके। कृषि के विभिन्न कार्यों में लगने वाली लागत को उचित तरीके से सही समय में करने से नियंत्रित किया जा सकता है। इसमे कृषि यंत्रीकरण की अहम भूमिका है। कृषि यंत्रीकरण में शक्ति के मुख्य साधन मानव, पशु, यांत्रिकी, बिजली व गैर परम्परागत ऊर्जा है। इन सभी कृषि यंत्रीकरण के साधनों में मानव का उपयोग शक्ति के साधन के रूप में व शक्ति को नियंत्रित करने मे मुख्य रूप से किया जाता है इस प्रकार से मानव का कृषि यंत्रीकरण में एक महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि यंत्रीकरण की दिशा में हमारे देश मे विभिन्न प्रकार के औजार, यंत्र व मशीनों का निर्माण हुआ है जिनका प्रयोग कृषि के विभिन्न कार्यों में किया जा रहा है। कृषि के विभिन्न कार्यो के यंत्रीकरण से किसानो का जीवन स्तर मे सुधार व इनकी समाज में इज्जत बढ़ी है व साथ ही इन कृषि के कार्यो को करने मे लगने वाली ड्रजरी भी कम हो गई।

उन्नत कृषि तकनीक एवं आधुनिक कृषि मशीनरी के प्रयोग से उत्पादन में बढ़ोत्तरी संभव

है। पिछले कई दशकों से कृषि में जोखिमों की अधिकता से कृषि व्यवसाय को खतरनाक व्यवसाय की श्रेणी में रखा गया है। शारीरिक जोखिम के साथ साथ ही मस्कुलो स्केलेटल (अस्थि मज्जा) विकार जैसे अनेक प्रतिकूल स्वास्थ्य स्थितियां कृषि कार्यों से जुड़ी हुई है। प्रायः यह देखा गया है कि अनेक प्रकार के अस्थि मज्जा विकार जैसे पीठ व गर्दन के विकार, तंत्रिका तंत्र में दबाव, सिंड्रोम, टेनोसिनोवाइटिस, एपिकॉन्डलाइटिस आदि कृषि कार्यों में रत कारकों जैसे बार–बार शारीरिक स्थिति में परिवर्तन, अधिक समय तक झुककर कार्य करना, नीचे बैठकर कार्य करना या अत्यधिक भार उठाना आदि कारकों पर निर्भर करता है।

कृषि में भारी शारीरिक कार्य, अपर्याप्त तरीके, कार्य करने की गलत तकनीक, उपकरणों की अनुपलब्धता, न केवल अनावश्यक थकान और व्यावसायिक दुर्घटनाओं का कारण बनते हैं अपितु कार्य क्षमता भी कम होती है। उपरोक्त कारणों से किसान, मुख्यतः महिलाओं में अस्थि मज्जा विकारों के विकास का विशेष खतरा है। ग्रामीण भारत में, महिलाओं को तकनीकी ग्राहकों (कृषि प्रसार कार्यक्रमों द्वारा) के रूप में एक महत्वपूर्ण लक्ष्य नहीं माना जाता है और तकनीकी विकास इनकी शारीरिक बनावट को ध्यान में रखकर नहीं किया जाता है। अतः प्रयोगशालाओं में कृषि यंत्र उपकरण और ग्राही के बीच की गहरी खाई पाटना एक मुख्य आवश्यकता है। इसके साथ ही, उपलब्ध कृषि उपकरण व यंत्र महिलाओं के अनुकूल नहीं है क्योंकि वह महिलाओं के एंथ्रोपोमेट्रिक माप के अनुरूप नहीं है। ग्रामीण परिवेश में महिलाओं के भारी काम और प्रतिकूल कार्य स्थिति भी एक बोझ है। महिलाओं का कभी न खत्म होने वाला काम सुबह लगभग 5:00 बजे से शुरू होता है और रात लगभग 10:00 बजे तक चलता है जिसमें घर के सभी कार्य, कृषि कार्य, पशुधन प्रबंधन और अन्य उत्पादक गतिविधियों संलग्न होती है। महिलाओं के दैनिक जीवन में कृषि कार्य, ईंधन, पानी व चारा इकट्ठा करना, घरेलू कार्य व अन्य पशु धन प्रबंधन कार्य आदि शामिल होते हैं। महिलाएं चारा, इंधन, पानी एकत्रित करने लगभग 10 से 15 किलोमीटर की दूरी प्रतिदिन तय करती है जिसमें समय व श्रम अधिक लगता है। यह अपनी दैनिक दिनचर्या में चुनौतीपूर्ण कार्यों का निष्पादन करती हैं।

कृषि आधुनिकरण ने भी महिलाओं को कुछ हद तक दरकिनार किया है। आज भी महिलाओं को भारी कार्यभार से लेकर वित्तीय साधनों, आजीविका और स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुंच आदि चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कृषि संबंधित उत्पादक संसाधनों और निर्णयों पर महिलाओं का सीमित या कोई नियंत्रण नहीं है। आज के दौर में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और पुरुषों दोनों की पूर्ण और समान भागीदारी के बिना खाद्य सुरक्षा और कृषि विकास हासिल नहीं किया जा सकता है। वर्तमान कृषि मशीनीकरण भी महिलाओं के कार्यबोझ को कम नहीं कर सका है क्योंकि उपलब्ध कृषि यंत्र एवं तकनीकी लिंग विशिष्ट डोमेन को लक्षित नहीं कर सके हैं और इस क्षेत्र में लैंगिक मुद्दों पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। महिलाओं की उनके अलग–अलग शारीरिक और एर्गोनोमिक्स भिन्नताओं के कारण पुरुषों की तुलना में अलग–अलग मशीनीकरण एवं तकनीकी आवश्यकताएं हैं। ग्रामीण महिला घर व कृषि के कार्यों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कृषि में महिलाओं द्वारा किए जाने वाले सभी कार्य जैसे बुवाई, निराई, गुढ़ाई, खाद डालना, कटाई करने से लेकर भण्डारण करने तक का कार्य महिलाओं को हाथ से करना पड़ता है, साथ ही पशुओं के लिए चारा खेत से घर तक लाना आदि कार्य भी थका देने वाले होते हैं। इनमें से कई कार्यों के लिए वैज्ञानिकों द्वारा छोटे किंतु उपयोगी उन्नत कृषि उपकरण विकसित किए गए हैं जिनसे कार्य अच्छा तथा कम समय में पूरा होता है। इसके साथ–साथ इनके उपयोग में थकावट कम होती है तथा इनका उपयोग सुरक्षित भी है। विषेश तौर से किसान महिलाओं को इन उपकरणों के बारे में जानकारी होना आवश्यक है, जिससे वे इनका अधिक से अधिक प्रयोग कर अपने समय, श्रम तथा पैसे की बचत कर सके।

यद्यपि भारतीय कृषि में तेजी से बदलाव हो रहा है एवं नवीन तकनीकी विकास भी तीव्र गति से हो रहा है परंतु आज भी महिलाओं द्वारा संपादित कार्यों में कृषि यंत्रीकरण की रफ्तार कम है। सन 2001 और 2011 की जनगणना के अनुसार पुरुष कृषकों के डेटा की तुलना के अनुसार विकसित की गई अनेक प्रौद्योगिकी महिला उपयोगकर्ताओं के लिए उपयुक्त नहीं है। अतः उपयुक्त मशीनों की कमी से महिला किसान अपने पति की तुलना में उर्जा निवेश और ऊर्जा व्यय के संबंध में अपेक्षाकृत वंचित होती है और शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक तनाव के साथ–साथ कार्य में उर्जा व समय की अधिक लागत के कारण कार्डियोवैस्कुलर स्ट्रैस बढ़ जाता है। कृषि में महिलाओं के श्रम का आकलन भी एक महत्वपूर्ण पहलू है जिसने शोधकर्ताओं का व्यापक ध्यान आकर्षित किया है। इसी क्रम में महिलाओं हेतु उपयुक्त यंत्रों का विकास भी किया गया है जो श्रम दक्षता विज्ञान को ध्यान में रखकर किया जाता है। पर्वतीय क्षेत्रों हेतु विभिन्न कार्यों के लिए उपयुक्त यंत्रीकरण के विषय में जानकारी निमन्वत है।

1. नवीन रोपछिद्रक (डिबलर) एवं रोटरी रोपछिद्रक (चक्रीय डिबलर)

कृषि कार्यः बुवाई एवं रोपाई यंत्र मानव चलित रोपछिद्रक (डिबलर)

नवीन रोपछिद्रक (डिब्लर) से अच्छी तरह तैयार खेत में बड़े या मध्यम आकार के बीज की बुवाई करने के लिए उपयोग किया जाता है। इसमें जॉ प्रकार की बीज डालने की प्रणाली, लकड़ी की गढ्ढेदार मापक प्रणाली, जॉ के लिए लीवर प्रकार की प्रचालन प्रणाली, बीज बक्सा–हत्था एवं बीज निकासद्वार लगे हुये है। रोटरी रोपछिद्रक (चक्रीय डिबलर) से अच्छी तरह तैयार किए गए खेत में बड़े अथवा मध्यम आकार के बीजों की बुवाई कतारों में, पौधे से पौधे की नियमित दूरी पर की जाती है। इसमें बीज हॉपर, बीज निकास जॉ, जॉ प्रचालन लीवर, लकड़ी का रोलर, हत्था, परिवहन तथा मिट्टी दबाने वाला पहिया इत्यादि लगाए गए है। मक्का, सोयाबीन, मटर, अरहर और चना की बुवाई के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसके संचालन के लिए अच्छी तरह से तैयार खेत की आवश्यकता होती है। इसमें 57% श्रम की बचत होती है। इसका वजन 4 किलोग्राम है और इसे किसी एक व्यक्ति द्वारा संचालित किया जा सकता है।

2. बीज ड्रिल

कृषि कार्यः बुआई एवं रोपाई यंत्र

पूसा बीज ड्रिल एक पीछे–पीछे चलने वाला उपकरण है जो छोटे व सीमांत किसानों के लिए, विशेष रूप से पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले किसानों के लिए विभिन्न फसलों की बुआई के लिए उपयोगी है। यह अपेक्षाकृत कम भार वाला उपकरण है और इसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से स्थानांतरित किया जा सकता है। छोटी क्यारियों के लिए, विशेषकर पहाड़ों में ट्रैक्टर चलित बीज ड्रिल उपयुक्त नहीं है। इन परिस्थितियों के लिए छोटी मशीनें उपयोगी हैं। छोटी जोत वाले किसानों और पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयोगी है। बीज और उर्वरकों का अनुप्रयोग एक साथ किया जा सकता है। पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी और बीजदर समान रखी जा सकती है। मशीन से बुआई करते हुए बीजों, समय की बचत और उपज में बढ़ोत्तरी होती है। कूंड़ ओपनर की ऊँचाई समायोजित की जा सकती है। भिन्न–भिन्न पंक्तियों में भिन्न–भिन्न फसले बोयी जा सकती हैं।

3. धान सीडर (बोने की मशीन)

कृषि कार्यः बुवाई एवं रोपाई यंत्र

आजकल राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नम धान की आलोडित मृदा में सीधी बुआई विधि लोकप्रिय हो रही है। धान की सीधी बुआई से फसल का जमाव तेज और आसान हो जाता है, श्रम की उपयोग घट जाता है, थकान कम हो जाती है, फसल जल्दी पकती है। फसल अवधि के घटने के कारण जल उपयोग दक्षता और लाभ–लागत अनुपात बढ़ जाता है। पूसा अंकुरित धान सीडर दो रूपों–तीन और छह पंक्तियों में उपलब्ध हैं।

इसके निम्न लाभ है :

- उन क्षेत्रों में, जहां श्रमिकों की समस्या है, वहां उपयोगी है।

- धान की विलंबित बुआई अब संभव हो गई है।
- इस मशीन द्वारा बोए गए धान रोपाई वाले धान की तुलना में 10–15 दिन पहले पकते हैं।

बीजों को नमक विलयन (1–2 चम्मच नमक / लीटर जल) में रखना चाहिए ताकि क्षतिग्रस्त बीज जल की सतह पर तैरने लगे। तैरने वाले बीजों को फेंक देना चाहिए और शेष बीजों को धोकर जल में 24 घंटे के लिए भिगो देना चाहिए। इसके बाद भीगे हुए बीजों को निथारकर बोरों में फैला देना चाहिए और नम बोरों से लगभग 24–48 घंटों तक के लिए ढक देना चाहिए ताकि बीज अंकुरित हो सकें। बुआई के लिए प्रांकुरों की लंबाई 0.5 से.मी. होनी चाहिए। इसके बाद इन्हें मशीन से पंक्तियों में बोया जाता है। खेतों में पूर्व अंकुरित धान की बुवाई के लिए उपयोग किया जाता है। यह हाथ द्वारा रोपाई की तुलना में 91% श्रम और 63% परिचालन समय बचाता है। इसे संचालित करने के लिए दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

4. सीड़ कम फर्टिलाइजर ड्रिल

कृषि कार्यः बुवाई एवं खाद डालने हेतु

यह मशीन द्विउद्देशीय है। इस उपकरण द्वारा जुते हुए एवं बिना जुते हुए, दोनों प्रकार के खेतों में बुवाई की जा सकती हैं। इसमें बीज के साथ–साथ खाद भी निर्धारित मात्रा में प्रयोग करने की पृथक व्यवस्था है। इस उपकरण द्वारा धान, मसूर, गेहूँ, लाही आदि फसलों की बुवाई की जा सकती है। केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान भोपाल द्वारा विकसित थ्री रो सीड़ कम फर्टिलाइजर ड्रिल का वजन 50 किलो है जिससे 0.1 हैक्टेयर खेत में एक घण्टे में बुवाई की जा सकती है। जबकि विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित वी.एल.सीड़ कम फर्टिलाइजर ड्रिल का वजन 23 कि.ग्राम है जिससे 0.05 से 0.09 हैक्टैयर खेत में एक घण्टे में बुवाई की जा सकती है। कम भार (23 किग्रा.) होने के कारण इसे पर्वतीय क्षेत्रों में आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाया जा सकता है। इसके द्वारा बीज व खाद उचित गहराई में डाले जा सकते हैं।

5. पंक्ति मार्कर/लाइन मेकर

कृषि कार्यः बुवाई एवं रोपाई यंत्र

पर्वतीय क्षेत्रों में अधिकतर फसलों की बुवाई छिड़काव विधि से की जाती है जिससे फसल में अंकुरण की संभावना 50 प्रतिशत तक कम हो जाती है। लाइन मेकर के उपयोग से आसानी से बुवाई हेतु गहरी पक्तियाँ बनाई जा सकती हैं। लाइन मेकर /पंक्ति मार्कर हल्का यंत्र होता है जिसे एक व्यक्ति द्वारा आसानी से खेतों में इस्तेमाल किया जा सकता है। यह बीज बुवाई के लिए फसल के अनुसार अलग–अलग जगह पर पंक्तियों को चिह्नित करने के लिए उपयुक्त है।

6. धान रोपाई यंत्र

कृषि कार्यःधान रोपाई के लिए उपकरण

पुदीली मिट्टी में चटाई के प्रकार के रोपाई (पंक्तियों में रोपाई) के लिए उपयुक्त है। यह हाथ से रोपाई की तुलना में 65% श्रम और परिचालन समय में बचत और उपज में 5–10% वृद्धि का परिणाम देता है। एक व्यक्ति इसे संचालित कर सकता है। भाकृअनुप –केंद्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, द्वारा विकसित सी.आर.आर.आई चार पक्ति वाला राईस ट्रांसलान्टर 20–25 दिन पुरानी चटाई के प्रकार के धान रोपाई हेतु उपयुक्त है।

7. पूसा व्हील हो

कृषि कार्यः निराई गुड़ाई और अर्न्तफसली कार्य

पूसा व्हील हो एक सरल व उपयोगी उपकरण है जिसका उपयोग खड़ी फसल पर पंक्तियों के बीच निराई गुड़ाई करने के लिए किया जाता है। इससे अत्यंत दक्ष और सक्षम निराई गुड़ाई संभव है। इस उपकरण को मोड़ा जा सकता है, इससे इसका परिवहन काफी आसान हो जाता है। व्हील हैंड हो के लाभ निम्न हैः–

- पंक्ति में बोई गई फसलों में निराई गुड़ाई और अंतरफसली कार्य करने में उपयोगी है।
- कार्य का कोण आवश्यकतानुसार समायोजित किया जा सकता है।
- इसे खड़े रहते हुए आगे और पीछे गति कर

चलाया जा सकता है,जिससे थकान कम होती है।

यह निराई गुड़ाई और अर्न्तफसली कार्य के लिए किफायती है।

8. कोनो वीडर

कृषि कार्यः धान में खरपतवार नियंत्रण

यह एक हस्त चालित खरपतवार नियंत्रक यंत्र है, जिसका उपयोग धान की फसल में कुशलतापूर्वक खरपतवार हटाने के लिए किया जाता है, तथा यह पोखर मिट्टी में धंसता नही है। इस यंत्र में दो रोटर, फ्लोट, फ्रेम और हैंडल लगे होते हैं, रोटर त्रिशंकु आकार के होते हैं एवं इसकी सतह पर लंबाई मे चौरस दांतेदार पट्टी जुड़ी होती है। फ्लोट कार्य की गहराई को नियंत्रित करते हैं, तथा रोटर यंत्र को पोखर मिट्टी में धँसने नही देता है। इसकी कार्यक्षमता 0.18 है प्रति दिन है।

9. चार पहिये वाला वीडर

कृषि कार्यः सब्जियों में खरपतवार नियंत्रण

यह एक हस्त चालित खरपतवार नियंत्रक यंत्र है। समतल क्षेत्र में खर–पतवार निकालने के लिये उन फसलों (विशेषकर सब्जी) में उपयुक्त है जिसकी कतार से कतार की दूरी 40 से. मी. या अधिक है क्योंकि इसका फाल 30 से. मी. चौड़ा है। इस यंत्र में स्विंगिंग (दोलन) हैंडल का उपयोग किया गया है जो चालक की लम्बाई के हिसाब से अपने–आप एंगल व्यवस्थित हो जाता है। इस यंत्र की क्षमता 0.03 है, प्रति घंटा है व इसका वजन 11.5 कि.ग्रा. है। इसको फोल्ड कर आसानी से उठाकर ले जाया जा सकता है। इस मशीन को और सुगम बनाने के लिये इसे बैटरी चलित भी बनाया गया है जिस पर अनुसंधान कार्य चल रहा है।

10. उन्नत दरांती

कृषि कार्यः फसल कटाई

वैसे तो फसल काटने के लिए रीपर, कम्बाइन आदि अत्याधुनिक मशीनों का विकास हो चुका है, किंतु जोत का आकार छोटा होने तथा किसानों की माली हालक ठीक नहीं होने के कारण हमारे यहां आज भी अधिकांश किसान फसल काटने के लिए दराती अथवा हसिये का ही प्रयोग करते हैं। इन किसानों और किसान महिलाओं को लाभ पहुंचाने की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की अच्छी दरांतियों का विकास किया गया है जिन्हें उन्नत दरांती के नाम से जाना जाता है। उन्नत दरांती में सीधी धारदार ब्लेड के स्थान पर दांतेदार ब्लेड का उपयोग किया जाता है, जिसमें दांतों की संख्या प्रति सेमी 4 से 10 तक हो सकती है। दांतों की ऊँचाई लगभग 0.5 मिमी से 2 मिमी तक रखी जाती है। इसके अतिरिक्त ब्लेड का आकार भी पारम्परिक दरांती की ब्लेड के आकार से थोड़ा भिन्न रखा जाता है। पारम्परिक दरांती की ब्लेड अधिक गोलाई लिए हुए होती है जबकि उन्नत दरांती की ब्लेड थोड़ी कम गोलाई लिए हुए होती है। उन्नत दरांती के हत्थे का व्यास बीच में से अधिक तथा किनारों पर कम रखा जाता है। कई बार हत्था थोड़ा घुमावदार भी बनाया जाता है। इन परिवर्तनों से हाथ की हत्थे पर पकड़ मजबूत रहती है। उन्नत दरांती पारम्परिक दरांती से भार में काफी हल्की होती है। पारम्परिक दरांती की ब्लेड सीधी धारदार होती है। अतः इससे फसल को काटने के लिए फसल को एक हाथ से दरांती की गोलाई के बीच पकड़ कर दूसरे हाथ से दरांती से झटका देना होता है, जबकि उन्नत दरांती में दांतेदार ब्लेड होने के कारण फसल काटने में रगड़ के सिद्धांत का उपयोग किया जाता है। अतः उन्नत दरांती से फसल काटने में ताकत कम लगानी पड़ती है।

काटने में कम ताकत लगने से तथा वजन में हल्की होने के कारण उन्नत दरांती से कार्य करने में थकावट कम आती है। साँस की गति, नाड़ी की गति तथा शरीर के भीतर होने वाले परिवर्तनों के आधार पर मनुष्य में होने वाली थकान को नापा जा सकता है। इन आधारों पर किए गए अनुसंधानों से पता चला है कि उन्नत दरांती से परम्परागत दरांती की तुलना में थकावट 16–17 प्रतिशत तक कम आती है। इसके अलावा उन्नत दरांती से फसल को जमीन के अधिक पास से काट सकते हैं, जिससे हमें अधिक मात्रा में भूसा प्राप्त होता है। इससे अगली फसल के लिए खेत तैयार करने में भी आसानी रहती है।

11. हस्तचालित मक्का शैलर

कृषि कार्यः भुट्टों से मक्का दाना निकालने हेतु

यह एक हस्त चालित मक्का छीलने की मशीन है। इसको चलाने के लिए एक व्यक्ति की आवश्यकता होती है। इस मशीन में उपर की तरफ एक फीडिंग श्यूट होता है, जिसमे की मक्के को एक साथ रख दिया जाता है, फिर दोनो हाथ से मशीन को फारवर्ड दिशा मे घुमाते हैं, इस प्रक्रिया से मक्के के दाने व गिल्ली अलग हो जाते हैं। इस मशीन के द्वारा कम समय में अधिक कार्य किया जा सकता है। इस मशीन के द्वारा एक दिन में 60 किलोग्राम /घंटा की दर से मक्के के दाने प्राप्त होते हैं।

12. मक्का शैलर

कृषि कार्यः भुट्टों से मक्का दाना निकालने हेतु

यह मशीन भुट्टों से मक्के के दानों को अलग करने हेतु इस्तेमाल की जाती है। वी.एल.मक्का शैलर भार में हल्का है जिसे दो व्यक्ति आसानी से उठाकर एक स्थान से दुसरे स्थान में स्थानान्तरित कर सकते हैं। इसे बिजली द्वारा चलाया जाता है। इसके कम मुल्य के कारण इसे छोटे व मझौले किसान आसानी से खरीद सकते हैं।

13. पैडी थ्रेशर (धान थ्रेशर)

कृषि कार्यः धान की मड़ाई हेतु

पर्वतीय क्षेत्रों में पारम्परिक तरीकों से धान की मड़ाई पैरों द्वारा या ड्रम व लकडी के पट्टे पर पीट पीट कर की जाती है, जिससे धान के नुकीले हिस्से से पैरों में घाव हो जाते है तथा बार बार पट्टे पर पीटने से अधिक श्रम व समय लगता है। इस तथ्य को देखते हुए विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा एक पैरों व विद्युत दोनों से चालित धान मंड़ाई यंत्र वी–एल– पैडी थ्रेशर का विकास किया गया जिसका वजन 35 कि.ग्रा है एवं मंड़ाई क्षमता 80 कि.ग्रा दाना प्रति घण्टे है। यह यंत्र जोत के आकार को देखते हुए विकसित किया गया है। यह मशीन हल्के वजन की होने के कारण आसानी से पर्वतीय क्षेत्रों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायी जा सकती है। इस मशीन द्वारा मड़ाई तेजी से होती है तथा यह श्रम की बचत करने के साथ–साथ मड़ाई व्यय को कम करता है। परम्परागत विधि की तुलना में इस मशीन से मड़ाई करने पर अनाज की बर्बादी नही होती है तथा मड़ाई करने पर पुआल भी खराब नहीं होता। सामान्यतः एक श्रमिक लगभग 4 घण्टे तक मशीन से मड़ाई कर सकता है। केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान भोपाल द्वारा विकसित महिलाओं के अनुकूल पेडल संचालित पैडी थ्रेशर का वजन 42 कि.ग्रा है एवं मंड़ाई क्षमता 45 कि.ग्रा दाना प्रति घण्टे है।

भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित पैडल एवं सोलर चालित धान थ्रेशर को छोटे खेतों के लिए विकसित किया गया है जिसकी ऊँचाई 750 मि.मी से 1267 मि–मी तक है। इसे पुरूष–महिला की जरूरतों के अनुसार समायोजित किया जा सकता है।

14. मिलेट थ्रेशर एवं पर्लर

कृषि कार्य : कदन्न फसलों की मड़ाई व छिलका निकालने हेतु

कदन्न फसलों का पारम्परिक फसल प्रणाली के एक महत्वपूर्ण घटक के रुप में राष्ट्रीय खाद्य एवं पोषण सुरक्षा और विविधता में एक महत्वपूर्ण योगदान है। पर्वतीय क्षेत्रों में इन कदन्न फसलों का भरपूर उत्पादन होता है। कटाई उपरान्त इसके प्रसंस्करण के लिए आधुनिक मशीनीकरण की आवश्यकता होती है, जिससे कि पारम्परिक विधि द्वारा इन फसलों की मड़ाई में लगने वाले समय, श्रम, शारीरिक थकान व उर्जा खपत को कम से कम किया जा सके। मडुआ (रागी) और मादिरा पर्वतीय क्षेत्रों की प्रमुख अनाज फसलें हैं परन्तु इन फसलों की मड़ाई व छिलका निकालने की प्रक्रिया एक लम्बी और थकाने वाली है जिससे कृषक महिलाओं को कठिन परिश्रम करना पड़ता है। इसलिए समय व श्रम की बचत के उदेश्य इन क्षेत्रों में प्रचलित कदन्न फसलों की गहाई व छिलका निकालने हेतु विवेक मंडुवा/मादिरा थ्रेशर का विकास किया गया, जो आघात व घर्षण के सिद्धान्त पर कार्य

कर इन कदन्नों की गहाई व छिलका निकालने की क्रिया को आसानी से करता है। यह यंत्र आसानी से चलाया जा सकता है तथा इसमें कटाई उपरान्त फसल को सुखाकर सीधे थ्रेशिंग की जा सकती है। विद्युत चालित होने के कारण गहाई हेतु इसमें पारम्परिक विधि से चौथाई समय लगता है। इस यंत्र द्वारा केवल एक ही व्यक्ति सम्पूर्ण क्रिया को आसानी से कर सकता है। अतः इसमें कम श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। फलस्वरूप गहाई लागत भी कम हो जाती है। इसकी गहाई व दाना निकालने की क्षमता अधिक है। इसमें मंडुवा की गहाई व छिलका निकालने की क्रिया क्रमवार चलती है, जबकि मादिरा में दोनों कार्य अलग–अलग करते हैं। इस यंत्र द्वारा बीज की गुणवत्ता बढ़ती है व दानों के मौलिक गुण बने रहते है। इसमें कदन्नों में पूर्व उपचार, जैसे– थ्रेशिंग से पूर्व बालियों को मुलायम करने के लिए नमी देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित मिलेट थ्रेशर एवं पर्लर का वजन 45 कि.ग्रा है एवं थ्रेशिंग क्षमता 30 – 35 कि.ग्रा प्रति घण्टे है जबकि मडुआ (रागी) में छिलका निकालने की क्षमता 40 दृ 45 कि.ग्रा एव मादिरा में 2.5–3 कि.ग्रा प्रति घण्टे है।

15. पॉलीटनल (प्लास्टिक लो टनल)

कृषि कार्यः सब्जी फसलों की नर्सरी

यह एक पारदर्शी एवं लचीली संरक्षित संरचना है। इसका प्रयोग पौध की रोपाई के बाद एवं पौध तैयार करने हेतु किया जाता है। इसे लगाने के बाद ऊपर से पारदर्शी प्लास्टिक शीट से ढक दिया जाता है। इस तरह पौध को एक संरक्षित वातावरण मिल जाता है। सर्दियों में इससे पौधे के आस पास का सूक्ष्म वातावरण बाहर के वातावरण की तुलना मे अधिक गर्म रहता है जिससे पौधे का उचित विकास होने में सहायता मिलती है। इस तकनीक से बेमौसमी सबिजयों का उत्पादन किया जा सकता है। कद्दू वर्गीय सब्जियों का लो टनल के अंदर मुख्य मौसम से 30 से 60 दिन पहले उत्पादन लिया जा सकता है। विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा लोहे के हल्के, कम लागत वाले पॉलीटनल (वी.एल पॉलीटनल) का निर्माण कर विभिन्न परियोजनाओं के अन्तर्गत कृषकों को उपलब्ध कराए जा रहे हैं।

16. सोलर ड्रायर

पर्वतीय क्षेत्रों में मुख्यतः महिलाओं को अप्रत्याशित वर्षा, पक्षियों व बंदरों के भय से कृषि उत्पाद सुखाकर भण्डारण करने में परेशानी होती है। साथ ही उत्पाद की गुणवत्ता खराब होने के कारण आर्थिक नुकसान भी होता है। सोलर ड्रायर के प्रयोग से कृषि उत्पाद की गुणवत्ता एवं भण्डारण स्थिति में सुधार आ सकता है। विभिन्न संस्थानों द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार के सोलर ड्रायर डिजाइन किए गए हैं। पर्वतीय क्षेत्रों के लिए कम भार व लागत वाले सोलर ड्रायर उपयुक्त हैं जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान धूप की उपलब्धता के अनुसार स्थानान्तरित किया जा सकता है। भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित वी.एल. सोलर ड्रायर एक उपयुक्त विकल्प है।

पर्वतीय क्षेत्रों में छोटे व बिखरे खेतों में सिर्फ यंत्रीकरण द्वारा पर्याप्त उत्पादन संभव नहीं है। समूहीकरण की विधि द्वारा बड़ी विस्तृत इकाइयों में यंत्रीकरण अधिक फायदेमंद साबित होगा। पर्वतीय क्षेत्रों से पुरूष वर्ग के अधिकतर पलायन के कारण मानव श्रम की कमी पाई जाती है। अधिकतर कृषि कार्य महिलाओं द्वारा ही निष्पादित किए जाते हैं। यदि महिलाओं के मानवमिति (एन्थ्रोपोमेट्री) को ध्यान में रख पर्वतीय कृषि का यंत्रीकरण किया जाए तो निसंदेह पर्वतीय कृषि में अत्यधिक सुधार लाया जा सकता है।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन में जीवाणु खाद का प्रयोग

आर०के० पाँडे
मृदा विज्ञान विभाग, रा०कृ०वि०, पूसा, समस्तीपुर (बिहार)

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन प्राचीन प्रणाली है इसका महत्व हरितक्रान्ति के पूर्व समकालीन जीवन निर्वाह खेती के कारण पहचाना नही गया। समन्वित पोषक तत्व प्रबन्धन का लक्ष्य पादप पोषकों के सभी प्रमुख स्त्रोतों का समकालित रुप से कुशल और आवश्यकतानुसार प्रयोग है। जिससे भूमि की भौतिक, रासायनिक और जैविक भूमि की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ताओं पर आनिकारक प्रभाव डाले बिना अधिकतम आर्थिक उत्पादन पाया जा सके। समन्वित पोषक प्रबन्धन सिद्धान्त की आधारी संकल्पना का अर्थ लम्बे समय तक टिकाऊ फसल उत्पादकता के लिए मृदा उर्वरकता को बनाये रखना और यदि हो सके तो सुधार लाना है।

जैसे कि हम जानते हैं कि रासायनिक उर्वरकों की बहुत कम मात्रा (नाइट्रोजन की 25–30 प्रतिषत, फास्फोरस की 10–15 प्रतिशत एवं पोटाश की 50–60 प्रतिशत) हो पौधे उपयोग कर पाते हैं। इन परिस्थितियों में उर्वरकों के प्रयोग में वैज्ञानिक तकनी, उपलब्ध साधनों जैसे जैविक जीवाणु खादों का समावेश और संयुक्त पूर्ति तत्व के सिद्धान्त को अपना कर कम से कम उर्वरक में अधिक से अधिक तथा अच्छे गुणवत्ता वाले अन्न का उत्पादन किया जा सकता है।

समन्वित पोषक तत्व प्रबन्ध में निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान रखा जाता है:

- सभी प्रकार के जैविक पदार्थों का सही प्रकार से प्रयोग।
- जीवाणु खादों का प्रयोग।
- मिट्टी जाँच के आधार पर उर्वरकों एवं मृदा सुधारकों का प्रयोग।
- संतुलित उर्वरकों का प्रयोग।
- फसल चक्र मे दलहनी फसलों का समावेश।
- आर्थिक सामाजिक और पर्यावरण के अनुकूल उर्वरकों, खादों एवं जीवाणु खादों का प्रयोग।

विभिन्न शोधों से ज्ञात हुआ है कि रासायनिक उर्वरकों एवं जैविक जीवाणु खादों को एक साथ मिलाकर व्यवहार करने से उर्वरकों का अधिक से अधिक उपयोग फसलों द्वारा लिया जाता है तथा मिट्टी की उर्वरा शक्ति बहुत दिनों तक बनी रहती है। फसलों में विभिन्न प्रकार के जीवाणु खादों का प्रयोग लाभप्रद है।

दलहनी फसलों के लिए राईजोबियम कल्चर का प्रयोग

राईजोबियम कल्चर क्या है?

प्रोटीन की उत्पति में नाइट्रोजन का विशेष स्थान है। वायुमंडल में लगभग 79э नाइट्रोजन पाया जाता है। एक एकड़ भूमि के उपर 35 हजार टन नाइट्रोजन गैस के रूप पाये जाते हैं। केवल दलहनी फसले ही इसको उपयोग करने में सक्षम है वे इस गैस रूपी नाइट्रोजन को विशेष प्रकार के जीवाणु जिसे कि 'राइजोबियम' कहते हैं की सहायता से यौगिकरण करते हैं।

दलहनी फसलों की जड़ों में कई ग्रन्थियाँ पाई जाती है जिसमें लाखों की संख्या में राईजोबियम नामक जीवाणु पाये जाते हैं। ये जीवाणु वायुमंडल से नाइट्रोजन लेते हैं और स्थिर कर पौधों को देते हैं।

किसी फसल के द्वारा भूमि में एकत्रित जैविक नाइट्रोजन की मात्रा उसकी जड़ो में सक्रिय गाँठों की संख्या, उनके आकार और जीवन अवधि पर ही केवल निर्भर नही करती बल्कि जीवाणुओं की संख्या और उनकी कार्य क्षमता पर भी बहुत कुछ निर्भर होती है।

फसल विशिष्टता

राईजोबियम जीवाणु फसल विशिष्ट होते है। विभिन्न वर्गों के राईजोबियम होते हैं (सारणी सं० 1) प्रत्येक दलहनी फसल के लिए एक विशिष्ट प्रकार के राईजोबियम की आवश्यकता होती है, उदाहरण के लिए मसूर के साथ सहजीवी क्रिया करने वाला जीवाणु चना के साथ सहजीवी क्रिया नहीं कर सकता। अतः यह आवश्यक होता है कि प्रत्येक फसल के लिए उपयुक्त राईजोबियम को उपयोग में लाया जाये।

भूमि में अधिक से अधिक नाइट्रोजन जमा करने के लिए यह आवश्यक है कि ये जीवाणु पौधों की जड़ों के आसपास अधिक से अधिक संख्या में जमा हो। इसके लिए दलहनी बीजों को बोने से पहले उचित कल्चर से उपचारित करते हैं। कल्चरों से उपचारित बीज जैसे ही अंकुरित होते है ये जीवाणु जड़ों की बारिक शाखाओं में प्रवेश कर जाते हैं और पुष्ट एवं अधिक उपयोगी गाँठों का निर्माण करते हैं। फसल काटने के बाद जड़ें और गाँठें सड़ जाती है तथा मिट्टी की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है। इस तरह हवा के नाइट्रोजन आने वाले फसल को प्राप्त होता है। सारणी सं० में दलहनी फसलों द्वारा नाइट्रोजन का स्थिरीकरण विभिन्न दलहनी फसलों में दर्शाया गया है।

सारणी 2: दलहनी फसलों द्वारा नाइट्रोजन का स्थिरीकरण (बीजोपचार के बाद)

दलहनी फसल	स्थिर नाइट्रोजन की मात्रा (कि०ग्रा०/हे०)	
	औसत	अनुमानित सीमा
अरहर	224	168–280
मूँग	202	63–342
मूँगफली	124	92–184
सोयाबीन	90	80–100
चना	102	89–115
मटर	64	42–77
मसूर	101	88–114

राईजोबियम कल्चर से बीज उपचार करने की विधि

लगभग 300 मि०ली० पानी में 35 ग्राम गुड़ डालकर खौला दे और घोल को तब तक उबालते रहे जब तक घोल हल्का लसीला न हो जाये। घोल को ठंडा होने के लिए छोड़ दे। राइजोबियम कल्चर का एक पैकेट (जो आधा एकड़ बीज के लिए पर्याप्त है) ठंडे गुड़ के घोल में डालें और अच्छी तरह मिलाये। आधा एकड़ बीज को गुड़ के घोल में डालकर हाथ से अच्छी तरह मिलावे ताकि प्रत्येक बीज पर कल्चर की परत चिपक जाये। उपचारित बीज को ठंडे स्थान पर या छाया में सूखने दे तथा बुआई सुबह या संध्या में करे। यदि फफूँदी नाशक दवा का उपचार बीज पर किया गया हो तो कल्चर से उपचार 24 घंटे बाद करें।

राईजोबियम कल्चर से लाभ

1. पौधों को नाइट्रोजन हवा से प्राप्त होता है। जिससे नाइट्रोजनयुक्त रसायनिक खाद की बचत होती है।
2. उपज में 15–20 प्रतिशत की वृद्धि होती है।
3. दलहनी फसल के उपरान्त अन्य दूसरी फसलों को भी नाइट्रोजन प्राप्त होता है।
4. इससे 60–320 कि०ग्रा० नाइट्रोजन प्रति हेक्टर प्रतिवर्ष मिलता है।
5. मिट्टी का स्वास्थ्य बना रहता है एवं पर्यावरण भी दूषित होने से बचता है।

एजोटोबैक्टर जीवाणु उर्वरक की उपयोगिता

एजोटोबैक्टर एक मुक्त जीवी जीवाणु है जो कि मृदा में पाया जाता है तथा नाइट्रोजन यौगिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एजोटोबैक्टर शर्करा तथा मृदा में उपस्थित कार्बनिक अम्लों का उपयोग अपने पोषण के लिये करता है, जिससे की उसे कार्बन की पूर्ति हो जाती है। नाइट्रोजन इसे नाइट्रोजन यौगिकीकरण की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त हो जाती है

जिसका की प्रयोग खेत में लगी फसलों के द्वारा भी होता है। स्वतंत्र अवस्था में नाइट्रोजन यौगिकरण का कार्य इस जीवाणु द्वारा 15 से 20 कि०/हे० प्रतिवर्ष हुआ करता है, एजोटोबैक्टर के सक्रिय जीवाणु कल्चर के उपयोग से शाक भाजी वाली फसलों में 15–30 प्रतिशत और शस्य फसलों में 10–15 प्रतिशत की बढोतरी उर्वरक के मात्रा के साथ प्राप्त की जा सकती है।

एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक द्वारा लाभान्वित फसलें

एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक का उपयोग गेहूँ, बाजरा, धान, सब्जियों, सूर्यमुखी, सरसों, तिल तथा पुष्पीय एवं वानिकी पौधों में किया जाता है।

एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक की क्रियाशीलता 20 से 30 से०ग्रे० के बीच अच्छी रूप से चलती है तथा उसको अधिक क्रियाशील होने के लिए पी०एच० मान 6.0 से 7.8 के बीच होना चाहिए।

एजोटोबैक्टर कल्चर का उपयोग विभिन्न फसलों में करने की भिन्न–भिन्न विधियाँ हैं–

1. बीज उपचार

- इस विधि का उपयोग बीज द्वारा बुवाई करने वाली फसलों में किया जाता है।
- 200 ग्राम जैव उर्वरक 10–15 कि०ग्रा० मध्यम आकार का बीजों के उपचार हेतु पर्याप्त होता है।
- 200 ग्राम जैव उर्वरक 500 मिली पानी में घोल लेते हैं।
- इस घोल को 10–12 कि०ग्रा० बीज पर डालकर हाथ से भली–भाँति मिला लेते हैं।
- इन बीजों को साफ कागज या बोरी पर छायादार स्थान पर 10–15 मिनट के लिए सूखने के लिए रख दें।
- सूखने के तुरंत बाद बीजों की बुआई कर दें।

2. शिशु पादप उपचार

- इस विधि द्वारा उपचार उन फसलों में किया जाता है जिनमें पौधे का उपयोग बुआई हेतु किया जाता है।
- एक से दो किलो जैव उर्वरक का बडे बर्तन में 5–10 लीटर पानी में घोल बनायें। ये घोल एक एकड़ जोत में लगने वाली पौध के लिए पर्याप्त होता है।
- उपचार किये जाने वाले शिशु पादपों की जड़ों को इस घोल में 10–15 मिनट के लिए डुबोकर रख दें तत्पश्चात तुरन्त इसकी रोपनी कर दें।

3. मृदा उपचार

- जैव उर्वरकों द्वारा मृदा का उपचार केवल खड़ी फसलों में किया जाता है:–

लघु अवधि फसलों में उपचार

3–5 किग्रा० एजोटोबैक्टर कल्चर का 60–100 किग्रा उसी खेत की मिट्टी या कम्पोस्ट के साथ मिश्रण बना लें। इस मिश्रण पर थोड़ा पानी डालकर रात भर छोड़ दें तथा इसके पश्चात इसे खेत में खड़ी फसल की मृदा में छिड़क कर फसल को पानी दे।

लम्बी अवधि फसलों में उपचार

इसमें जैव उर्वरक की मात्रा 6–7 किग्रा तथा मृदा या कम्पोस्ट 100–120 किग्रा० लें। किसी भी फसल में जैव उर्वरक उपयोग करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि जैव उर्वरक के साथ फास्फेट विलेयीकारी जैव उर्वरक का प्रयोग अत्यन्त लाभकारी होता है।

याद रखने योग्य कुछ बातें

1. विभिन्न दलहनी फसलों के लिए विभिन्न राइजोबियम कल्चर होते हैं। फसल विशिष्ट कल्चर का ही उपयोग करें।
2. एजोटोबैक्टर कल्चर का भंडारण 20–28^0 से०ग्रे० के बीच करें।
3. कल्चर का इस्तेमाल प्रयोग करने की अंतिम तिथि से पहले कर ले।
4. कल्चर लगे बीज को किसी रसायनिक खाद एवं कीटनाशक दवा के सम्पर्क में न आने दें।
5. कल्चर को धूप से दूर ठंडे स्थान पर रखें। कल्चर बीज की बुआई यथासंभव प्रातः या सांयकाल में करें।

(iii) स्फुर घोलक जीवाणु

ये जीवाणु मृदा में उपस्थित जैविक अम्ल उत्पन्न करते हैं जिनकी सहायता से अघुलनशील फॉस्फेट को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करते हैं जिन्हे पौधे द्वारा आसानी से ग्रहण कर लिया जाता है।

विशिष्ट लाभ

- भूमि में अघुलनशील फॉस्फेट को पौधों को उपलब्ध कराना।
- आवश्यक पोषक तत्व जैसे सल्फर, लोहा, जस्ता, मैग्नीशियम, तत्वों की सक्रियता बढ़ाकर पौधौं को उपलब्ध कराना।
- विभिन्न रोगों जैसे पाले, सूखे आदि के प्रति पौधों की सहनशीलता में विकास करना।
- फॉस्फेटीक उवर्रक के व्यवहार में 25.30% में 15.20% तक की वृद्धि।

तनु संस्सलित फसलें

आलू, गन्ना, गेहूँ, धान, केला, अंगूर, आम, टमाटर, मटर, मिर्च व अन्य खाद्यान, दलहनी तिलहनी फालें एवं फलहार वृक्ष।

प्रयोग विधि

प्रति हेक्टेयर 4.0 किलोग्राम मात्रा को 4 किलोग्राम कम्पोस्ट में मिलाकर 4.5 घंटे छायादार स्थान पर रखने के पश्चात आखिरी जुताई से पूर्व खेत में भुरकाव करें। नर्सरी पौधों के लिए 1 किलोग्राम कल्चर को 2.5 लीटर पानी में मिलाकर रोपनी के पूर्व विचड़ों को 20 मिनट तक घोल में डुबाकर टोपाई करें।

(iv) नील हरित शैवाल

ये सूक्ष्मजीव वायुमंडल से पेत्रजन एकत्रित करने की क्षमता रखते हैं। धान के खेतों में इनकी वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण मिलता है जहाँ पे मिट्टी की सतह एवं पानी के एपर नीले हरे रंग की परत के रूप में उगती हैं। इनके द्वारा एकत्रित नेत्रतन धान केक पौधों को आसानी से मिलता है। इस प्रकार से जीवाणु धान के खेतों की मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं। कल्चर के उपयोग से 25.30 किलोग्राम नेत्रजन की बचत की जा सकती है एवं धान के पेदावार में 20 प्रतिशत तक वृद्धि कर सकते हैं।

उपयोग विधि

धान रोपने के 7.10 दिनों के बाद अल्गी कल्चर की 10 किलोग्राम मात्रा प्रति हेक्टर की दर में छिड़काव करते हैं। ध्यान यह रखना चाहिए की खेत में 15.20 दिनों तक जमा रहना चाहिए।

अजोला

जैविक खाद केक रुप में अजोला का विशेष महत्व है। इसकी पत्तियों में नीलहरित शैवाल परजीवी के रुप में रहकर वायुमंडल से नेत्रजन को एकत्र करती है। अजोला का व्यवहार धान की फसल में नेत्रजन देने कर एक अच्छा साधन है जो काफी लाभप्रद पाया जाता है। इसके व्यवहार से मिट्टी में जैविक पदार्थ की वृद्धि होती है और उर्वराशक्ति कायम रहती है।

व्यवहार का तरीका

एक हेक्टर खेत में 200 किलोग्राम हरा अजोला धान की रोपनी के 7.10 दिनों के बाद नपानी की सतह पर डालते हैं। यह धान के पौधों के साथ–साथ बढ़ता है और 15.20 दिनों में पानी की सतह को ढ़क लोता है। अजोला के उपयोगी से खरपतवारों को उगने एवे बढ़ने का मौका नही मिलता है।

कुपोषण निवारण हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में पोषण वाटिका द्वारा फल एवं सब्जियों की सामयिक उपलब्धता

सुधा जुकारिया एवं शशि तिवारी
कृषि विज्ञान केन्द्र, ज्योलीकोट, नैनीताल

गृह वाटिका में सब्जियाँ, पुष्प व फलदार वृक्ष लगाये जाते है। इसका मुख्य उददेश्य परिवार के सदस्यों की रूचि व आवष्यकता के अनुसार वर्षभर विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ एवं फल उपलब्ध कराना है। सुव्यवस्थित ढंग से बनाई गई गृह वाटिका में पूरे वर्ष ताजी व शुद्ध सब्जियाँ उपलब्ध रहती हैं। पेड़ पौधे लगे होने के कारण घर के आस पास हरियाली रहती है तथा वातावरण भी शुद्ध रहता है। इसके अतिरिक्त बाजार में बिकने वाली सब्जियों में प्रायः रसायनों का छिड़काव अधिक रहता है, जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। परंतु पोषण वाटिका में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि रसायनों का कम से कम प्रयोग किया जाय।

फल व सब्जियाँ खनिज लवणों का मुख्य स्रोत हैं। हमारे शरीर के लिये आवश्यक खनिज लवणों के अधिकांश भाग की पूर्ति मुख्यतः फल सब्जियों से होती है। इनके बिना संतुलित भोजन की कल्पना करना संभव नहीं है। एक वयस्क पुरूश को प्रतिदिन भोजन में 125 ग्राम हरी पत्तेदार सब्जियों, 75 ग्राम अन्य सब्जियॉ, 100 ग्राम कन्दमूल, 30 ग्राम फल तथा एक वयस्क स्त्री को क्रमशः 125 ग्राम, 75 ग्राम,75 ग्राम, 30 ग्राम हरी पत्तेदार सब्जियों, अन्य सब्जियॉ कन्दमूल व फल की आवश्यकता होती है। एक नाली भूमि (200 वर्गमीटर) में वैज्ञानिक ढंग से तैयार की गई गृहवाटिका से यह आवश्यकता पूरी की जा सकती है। पोशण वाटिका में उगायी जाने वाली फल एवं सब्जी फसलें निम्न है (तालिका 1):

तालिका–1: पोषण वाटिका के लिए उपयुक्त फल एवं सब्जी फसलें

क्रम.सं.	सब्जियाँ (रबी)	सब्जियाँ (खरीफ)	औषधीय पौधे	फल एवं वृक्ष
1.	मटर	बैंगन	तुलसी	पपीता
2.	मैंथी	मिर्च	पुदीना	केला
3.	प्याज	भिन्डी	तेजपत्ता	नींबू
4.	लहसुन	खीरा	सौंफ	करौंदा
5.	धनिया	कद्दू	हल्दी	अनार
6.	पालक	लौकी	अदरक	अमरूद
7.	पत्ता गोभी	तोरई	इलायची	आम
8.	गाजर	टमाटर	करीपत्ता	अंगूर
9.	सरसों	मक्का	–	खुबानी

गृह वाटिका की रूपरेखा

गृह वाटिका की रूपरेखा भूमि की उपलब्धता, व्यक्ति विशेष की आवश्यकता व रूचि के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार की हो सकती है। पर्वतीय क्षेत्रों में गृह वाटिकाओं का आकार छोटा होता है। यहाँ मुख्यतः सब्जी एव फलदार वृक्षों को प्राथमिकता दी जाती है। गृह वाटिका का रेखांकन करते समय कुछ बातों का अवष्य ध्यान रखना चाहियेः

स्थान का चुनाव

गृहवाटिका खुली जगह पर बनानी चाहिए जहाँ पूरे दिन धूप रहे तथा सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो।

प्रवेश द्वार व रास्ता

गृहवाटिका में प्रवेष द्वार व रास्तों का विषेश ध्यान रखना चाहिए जिससे सिंचाई या अन्य कृषि क्रियायें करते समय फसल खराब न हो।

बाड़

गृहवाटिका में लगी सब्जियों की सुरक्षा के लिये बाड़ अत्यन्त आवष्यक है। बाड़ के लिये भूमि के चारों तरफ झाड़ीदार पौधे तथा एंगिल आयरन लगाकर कटीले तारों का प्रयोग किया जा सकता है। बेल वाली सब्जियाँ एवं फल जैसे लौकी, कद्दू, करेला, खीरा अंगूर कीवी आदि उगाकर तार बाड़ पर चढाया जा सकता है। ये गृह वाटिका की सुन्दरता बढ़ाने के साथ–साथ अच्छी उपज भी देते है। बाड़ लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह अधिक ऊँची न हो अन्यथा क्यारियों में छाया रहेगी।

सिचाई की नाली

रास्ते के किनारे–किनारे सिंचाई की नाली बनाई जा सकती है। नालियॉं इस प्रकार हो कि पानी प्रत्येक क्यारी में पहुँच सके।

पौधशाला

पौधशाला के लिये जमीन के छोटे से टुकड़े की आवश्यकता होती है। यह खुली जगह में एक किनारे की ओर होनी चाहिए जहाँ पर्याप्त धूप हो। पौधशाला का स्थान जमीन की सतह से कुछ ऊँचा हो जिससे पौधशाला में पानी न रूके।

खाद का गड्ढा

गृहवाटिका में एक किनारे पर लगभग 1.0 X 1.5 मीटर का गड्ढा बना लेना चाहिए। गड्ढा भूमि की उपलब्धता एंव आवश्यकतानुसार छोटा या बड़ा भी बनाया जा सकता है। इस गड्ढे में सब्जियों के अवशेष व सड़ने योग्य घर का कूड़ा इकट्ठा करते रहना चाहिये। गड्ढा भर जाने पर उसे मिट्टी से ढक दें जिससे कूड़ा सड़कर कम्पोस्ट में परिवर्तित हो जाये।

फलदार वृक्षों का स्थान

गृहवाटिका में कुछ फलदार वृक्ष जैसे नाशपाती, गुठलीदार फल, नींबू, केला, अंगूर, कीवी आदि को अवश्य लगाना चाहिए क्योंकि सब्जियों की भांति प्रतिदिन भोजन में फलों का भी प्रयोग अवश्य करना चाहिये। बड़े व घनें वृक्षों को हमेशा उत्तर या पश्चिम दिशा में लगाना चाहिये जिससे पेड़ों की छाया क्यारियों में न पड़े।

फूलों की क्यारियाँ

मुख्य रास्ते के दोनों ओर यदि एकवर्षीय/बहुवर्षीय पुष्पों को लगाया जाये तो उत्तम होगा। गृहवाटिका में मुख्यतः गुलाब, गैंदा, रजनीगंधा, डहेलिया, ग्लेडियोलाई, वोगेनबीलिया आदि फूल के पौधों को लगाया जाता है।

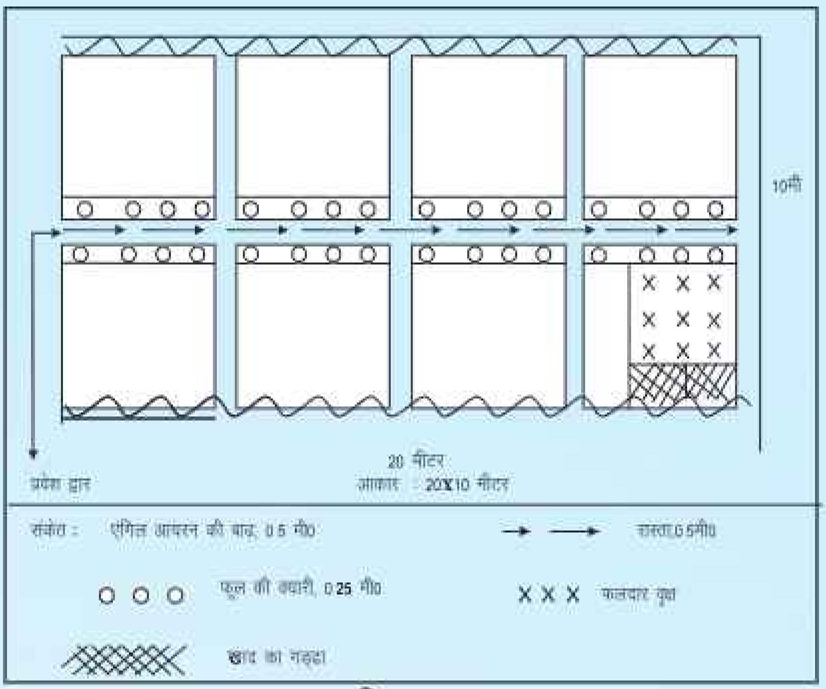

गृह वाटिका का प्रारूप

खाद व उर्वरकों के प्रयोग की विधि

गोबर की खाद/ पौधे लगाने से 4–6 सप्ताह पूर्व खेत में डालकर जुताई द्वारा मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें। यूरिया की आधी मात्रा, सुपर फास्फेट सिंगल एवं एम.ओ.पी (म्यूटेट ऑफ पोटाश) की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई/पौध लगाने के समय मिट्टी में मिलायें। शेष यूरिया बुवाई/पौधे लगाने के 20–30 दिन बाद खड़ी फसल में छिड़काव करें। उर्वरकों के प्रयोग के समय क्यारी में नमी का होना आवश्यक है। साथ–साथ क्यारी में खरपतवार नहीं होने चाहिए।

एक अच्छी गृह वाटिका किसी भी परिवार के लिए उसके स्वास्थ्य के लिए वरदान सिद्ध होती है, क्योंकि गृहवाटिका में न केवल ताजी हरी सब्जियाँ ही उगायी जाती है, बल्कि फूल एवं सुगंधित पौधे लगाकर आस–पास के वातावरण शुद्ध एवं मनोरम बनाया जा सकता है। एक सफल वाटिका में कम से कम एक ऋतु में 15 से अधिक सब्जियाँ उगाई जाती है। गृह वाटिका में उगाने हेतु सब्जियों के बीज मौसम के अनुसार बीज विक्रेताओं के पास पैकेट में उपलब्ध होते है। इन बीजों को निर्धारित दूरी पर पौधो की ऊँचाई के आधार पर बुवाई करनी चाहिए तथा पूरब दिशा में कभी लंबी जाति वाली सब्जियाँ नहीं लगानी चाहिये।

गृह वाटिका में कोई बीमारी या कीट लग जाने पर जैविक कीटनाशी उत्पादों का ही प्रयोग करना चाहिए। खरीफ में जो सब्जियाँ उगाई जाती है उनमें प्रमुख रूप से कद्दू वर्गीय सब्जियों में फल मक्खी का आक्रमण होता है। फल मक्खी को प्रबंधित करने के लिए हम बाजार से मिथाइल यूत्रिनॉल से बना फेरोमेन प्रपंच लगाया जा सकता है। खरीफ ऋतु में आर्द्रता अधिक होने पर बीमारियों का प्रकोप अधिक होता है इसके लिए ट्राइकोडरमा नाम जैविक फफूंदी नाशक का प्रयोग करना चाहिए। 100 ग्राम ट्राइकोडरमा पाउडर को गोबर की सडी हुई खाद में मिलाकर पौधों की जड़ों के पास निराई करते समय मिट्टी में मिला देने से बीमारियाँ कम लगती है। उपरोक्त बिंदुओं को ध्यान में रखते हुये उचित प्रबंधन द्वारा गृहवाटिका में पूरे वर्ष हरी एवं ताजी सब्जियाँ प्राप्त करने के साथ–साथ लाभ भी अर्जित किया जा सकता है। (तालिका– 2 एवं 3)

तालिका–2: शीत ऋतु सब्जी फसलों की उत्पादकता एवं लाभ लागत अनुपात

फसल	उपज (किग्रा/है0)	कुल आय (रू/है0)	उत्पादकता लागत	शुद्ध लाभ	लाभ लागत अनुपात
गाजर	8800.00	106568.00	29011.00	77557.00	2.68
धनिया	2600.00	23660.00	6471.00	17189.00	2.65
फ्रेंचबीन	5300.00	84800.00	18211.00	66589.00	3.65
मूली	18400.00	204600.00	48172.00	156428.00	3.24
सरसों	17600.00	194824.00	46122.00	148702.00	3.20
मैंथी	5600.00	67872.00	23233.00	44639.00	1.92
पालक	18800.00	227668.00	47411.00	180197.00	3.70
सब्जी मटर	5100.00	82365.00	17195.00	65170.00	3.70
लहसुन	7300.00	376315.00	79412.00	296903.00	3.73
पत्ता गोभी	12600.00	124488.00	35125.00	89363.00	2.54
टमाटर	14700.00	198744.00	63142.00	135602.00	2.21

तालिका–3: ग्रीष्म ऋतु सब्जी फसलों की उत्पादकता एवं लाभ लागत अनुपात

फसल	उपज (किग्रा/है0)	कुल आय (रू/है0)	उत्पादकता लागत	शुद्ध लाभ	लाभ लागत अनुपात
बैंगन	12500.00	87500.00	31000.00	56500.00	1.82
मिर्च	5000.00	100000.00	34000.00	66000.00	1.95
भिन्डी	7000.00	105000.00	29000.00	76000.00	2.62
पत्ता गोभी	20000.00	160000.00	49000.00	111000.00	2.30
लौकी	8000.00	48000.00	18000.00	30000.00	1.67
फ्रैंचबीन	7000.00	77000.00	29000.00	48000.00	1.65
मूली	18000.00	234000.00	49000.00	185000.00	3.77
धनिया	11000.00	176000.00	27000.00	149000.00	5.50
पालक	19000.00	171000.00	23000.00	148000.00	6.40
शिमला मिर्च	6500.00	975000.00	31000.00	66500.00	2.14

गृह वाटिका से अधिक उत्पादन तथा कीड़े एवं बीमारी से बचाने हेतु ध्यान देने योग्य मुख्य बातेः

- प्रतिवर्ष क्यारियों को बदल कर सब्जी प्रजातियों की बुवाई करें।
- उन्नत किस्मों का चुनाव कर सही समय पर बुवाई करें।
- बुवाई से पूर्व बीज का 2ग्राम थाइरम तथा 1 ग्राम बावेस्टीन/किग्रा बीज की दर से शोधित करके बुवाई करें।
- पौधशाला का स्थान भी प्रत्येक दो वर्ष के बाद बदल दें।
- संभव हो तो गर्मी में क्यारियों की गुड़ाई करके कुछ समय के लिए खुला छोड़ दें।
- गोबर की खाद के रूप में कच्चे गोबर का प्रयोग न करें।
- फली बेधक कीट की रोकथाम के लिए फूल आने के तुरंत बाद कीटनाशी का छिड़काव करें।
- क्यारियों में जल निकास का उचित प्रबंध करें।
- अधिक समय तक वर्षा का पानी क्यारी में नहीं ठहरना चाहिये।
- वाटिका में पौधों को कीट के प्रकोप से बचाने के लिए गेदें के फूल लगाये जा सकते है।
- समय–समय पर सौर उर्जाकरण द्वारा मिट्टी में होने वाले रोग, कीड़े व खरपतवार का उचित नियंत्रण करते रहना चाहिए।

लाभ

1. परिवार के सदस्यों को मौसमानुसार शुद्ध एवं ताजी सब्जियाँ एवं फल प्राप्त होते है।
2. पोशण वाटिका द्वारा परिवार के सदस्यों को पोशक तत्वों की कमी से होने वाले रोगों से बचाया जा सकता है।
3. पोषण वाटिका द्वारा उत्पादित फल एवं सब्जियों के विक्रय द्वारा अतिरिक्त आयोपार्जन किया जा सकता है।

वैज्ञानिक विधि द्वारा गृह वाटिका में जैविक सब्जी उत्पादन

आत्मनिर्भर भारत हेतु कृषकों में कौशल विकास : चुनौतियाँ एवं अवसर

गिरिजेश सिंह महरा[1], प्रतिभा जोशी[2] एवं रेनू जेठी[3]
[1]वैज्ञानिक कृषि प्रसार संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[2]कृषि प्रौद्योगिकी ऑकलन एवं स्थानांतरण केंद्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[3]भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

एक सौ तीस करोड़ से अधिक जनसंख्या वाले देश में लगभग 68.84 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं तथा 57.8 प्रतिशत लोग आजीविका हेतु कृषि से जुड़े हुए है (जनगणना, 2011)। कृषि क्षेत्र में भारत ने आजादी के बाद एक लंबा एवं संघर्ष भरा सफर तय किया है। हरित क्रांति तथा कृषि वैज्ञानिको के अनुसंधान तथा प्रसार ने भारत को न सिर्फ खाद्यान में वरन दुग्ध उत्पादन में भी विश्व के शिखर में खड़ा कर दिया और आज भारत फल एवं सब्जियों, दूध, मसाले एवं जूट में वैश्विक स्तर पर सबसे बड़ा उत्पादक है। धान एवं गेहूँ में भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक एवं वैश्विक स्तर पर भारत 80 प्रतिशत से अधिक फसलों का सबसे बड़े उत्पादको में से एक है। गत हरित क्रांति रणनीति द्वारा भारत में कृषि क्षेत्र के विकास के लिए कृषि उत्पादन बढ़ाने और देश की खाद्य सुरक्षा में सुधार लाने पर जोर दिया गया था। हरित क्रांति ने विश्व पटल पर भारत को अन्न पर्याप्त देश बनने में अत्यधिक मदद की तथा इस लक्ष्य को भली भांति पूरा भी किया गया है। परंतु आज समय की मांग खाद्य सुरक्षा में सुधार के साथ–साथ अधिक आय अर्जित करना भी है।

लेकिन जहाँ एक तरफ हमने विश्व में अपने आप को कृषि उत्पादन में साबित किया है वही दूसरी ओर भारत में किसान कृषि त्यागना चाहते है तथा गाँव का युवा वर्ग कृषि को त्याग कर शहरों मे नौकरी करने हेतु बड़ी संख्या में पलायन कर रहें हैं। बढ़ती आबादी, घटती उपजाऊ कृषि भूमि, कम होते रोजगार तथा निवेश के अवसर एवं बाजार के जोखिमों ने कृषि क्षेत्र में कार्यरत युवाओं के समक्ष कृषि को लाभकारी बनाने में बड़ी चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। कृषि में कार्यरत लोगों की संख्या गिरती ही जा रही है। अनुसंधानो से पता चला है की सन 1999 से लगातार 2000 किसान प्रति दिन कृषि का त्याग कर रहे हैं तथा हमारे देश के आधे से ज्यादा (54.6 प्रतिशत) किसान, कृषि को त्याग कर मजदूर बन गए हैं (जनगणना, 2011). आकड़े दर्शाते है की देश के कुल कार्यबल में निरंतर वृद्धि हुई है किन्तु कृषि का कुल कार्यबल मे योगदान घटता चला गया है जो यह सिद्ध करता है कि किसानो तथा युवाओं ने कृषि को त्याग कर किसी अन्य कार्यबल में योगदान दिया है। कृषि सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर वर्ष 2016–17 में 6.27% से घटकर वर्ष 2018–19 में मात्र 2.90 रह गई। कृषि कि घटती महत्ता व आत्मनिर्भरता विकास के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है। यद्यपि कोविड–19 महामारी के समय में केवल कृषि ही नहीं अपितु अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र भी अत्यधिक प्रभावित हुए, परन्तु हमारी स्थापित सशक्त कृषि व्यवस्था ने बहुत सीमा तक अर्थव्यवस्था को गिरने से बचाया है। इस समय कृषि को नवीन नवोन्मेषी तकनीकों, विविधीकरण, कृषि उद्यमिता के साथ सुदृढ़ एवं रूपांतरित करने की आवश्यकता है। इसमें संसाधनों का संरक्षण, उनका कुशल उपयोग हेतु कृषि पद्धतियां शामिल है जिससे उपलब्ध खेतिहर भूमि का उत्तम निर्वाहकर व्यवसायीकरण एवं मुनाफे में वृद्धि प्राप्त की जा सके। कृषि मे कौशल विकास इन चुनतियों का उचित समाधान बन सकता हैं किन्तु वर्तमान परिपेक्ष में कृषि क्षेत्र में युवाओं का कौशल विकास करना अपने आप में एक बड़ी चुनौती है।

आत्मनिर्भर भारत

'आत्मनिर्भर भारत', भारत को एक

आत्मनिर्भर राष्ट्र बनाने सम्बन्धी एक दृष्टि (विजन) है। इसका पहली बार सार्वजनिक उल्लेख भारत के प्रधानमंत्री ने 12 मई, 2020 को किया था जब वे कोरोना–वाइरस विश्वमारी सम्बन्धी एक आर्थिक पैकेज की घोषणा कर रहे थे। इसके तहत 20 लाख करोड़ रुपए के राहत पैकेज की घोषणा की थी जो देश की सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 10 प्रतिशत है। आत्मनिर्भर भारत अभियान के तहत सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों के कल्याण के लिए कुल 16–घोषणाएं एवं गरीबों, श्रमिकों और किसानों के लिए अनेक घोषणाएं की गई हैं जिनमें मुद्रा शिशु ऋण के लिए 1500 करोड़ रुपये, स्ट्रीट वेंडर्स के लिए 5 हजार करोड़ रुपये की विशेष क्रेडिट सुविधा, सीएएमपीए फंड का उपयोग कर 6 हजार करोड़ रोजगार तथा नाबार्ड के माध्यम से किसानों के लिए 30 हजार करोड़ रुपये की अतिरिक्त आपातकालीन कार्यशील पूंजीगत निधि तथा किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से ढाई करोड़ किसानों को बढ़ावा देने के लिए 2 लाख रुपये का आवंटन शामिल है। साथ ही साथ किसानों की आय दोगुनी करने के लिए 11 घोषणाएं भी की गई हैं। आत्मनिर्भर भारत अभियान के पाँच स्तम्भ निम्नलिखित हैं:–

(1) अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो छोटे–छोटे परिवर्तन (इंक्रिमेंटल चेंज) नहीं, बल्कि ऊँची छलांग (क्वांटम जंप) लाए।
(2) बुनियादी ढांचा एक ऐसा बुनियादी ढांचा, जो आधुनिक भारत की पहचान बने। विदेशी कंपनियों को आकर्षित कर सके।
(3) प्रौद्योगिकी का उपयोग बढ़ाना शामिल है।
(4) जनसंख्यिकी (डेमोग्राफी) भारत की जीवन्त जनसांख्यिकी हमारी ताकत है, आत्मनिर्भर भारत के लिए ऊर्जा का स्रोत है।
(5) मांग भारत के पास बड़ा घरेलू बाजार और मांग है, उसे पूरी क्षमता से इस्तेमाल किए जाने की जरूरत है।

आत्मनिर्भर भारत अभियान के अंतर्गत सरकार एवं रिजर्व बैंक के द्वारा 27.1 लाख करोड़ रुपए का निवेश किया गया है। यह राशि देश की जीडीपी की 13% है।

कृषि में कौशल विकास के समक्ष चुनौतियाँ

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का घटता हुआ योगदान सारिणी 1 दर्शाती है की देश के कुल कार्यबल में निरंतर वृद्धि हुई है किन्तु कृषि का कुल कार्यबल मे योगदान घटता चला गया है जो यह सिद्ध करता है कि किसानो तथा युवाओं ने कृषि को त्याग कर किसी अन्य कार्यबल में योगदान दिया है।

सारिणी 1: भारत में कृषि का कुल कार्यबल मे योगदान

साल	कुल कार्यबल (दस लाख)	कृषि कार्यबल (दस लाख)	कृषि का कुल कार्यबल मे योगदान (प्रतिशत)
1999—00	398	238	59.8
2004—05	459	269	58.5
2009—10	460	245	53.2
2011—12	474	232	48.9

स्रोत: स्टेट ऑफ इंडियन एग्रिकल्चर, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार (2015–16)

कृषि सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर वर्ष 2016–17 में 6.27% से घटकर वर्ष 2018–19 में मात्र 2.90 रह गई। साथ ही साथ कृषि क्षेत्र का देश की कुल सकल घरेलू उत्पाद में योगदान भी वर्ष 1951 में 60% से घटकर मात्र वर्ष 2017 में मात्र 17% रह गया है। कृषि कि घटती महत्ता निःसंदेह कौशल विकास के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है।

2. कृषि क्षेत्र मे कार्यरत किसानों तथा युवाओं में कौशलता का आभाव

किसी भी देश के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए कौशल और ज्ञान दो प्रेरक बल हैं। वर्तमान वैश्विक माहौल में उभरती अर्थव्यवस्थाओं की मुख्यत चुनौती से निपटने में वे देश आगे हैं जिन्हाने कौशल का उच्च स्तर प्राप्त कर लिया है। भारत की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा उत्पादक आयु समूह में है क्योंकि भारत के पास 60.5 करोड़ लोग 25 वर्ष से कम आयु के हैं। यह भारत को सुनहरा

ICAR-DCFR

अवसर प्रदान करता है, परंतु एक बड़ी चुनौती भी पेश करता है। हमारी अर्थव्यवस्था को इसका लाभ तभी मिलेगा जब हमारी जनसंख्या विशेषकर युवा स्वस्थ, शिक्षित और कुशल होगी। जहां एक ओर कृषि क्षेत्र में कार्यरत कार्यबल वर्ष 2022 में 33% तक घटकर मात्र 19 करोड़ रह जाएगा वहीं दूसरी ओर कुल कार्यबल का मात्र 18.5% ही कृषि में औपचारिक रूप से कौशलता प्राप्त है। सारिणी 2 स्पष्ट करती है कि कृषि क्षेत्र मे कार्यरत 21.9 करोड़ कार्यबल में केवल 0.3% (7,54000) ही कौशल पूर्ण हैं, जबकि विनिर्माण क्षेत्र, गैर विनिर्माण क्षेत्र एवं सेवाएँ क्षेत्र के लिय यह आकड़ा क्रमशः 4%, 2% एवं 6.3% है। यह साफ दर्शाता है कि वर्तमान में कृषि मे कौशल कि भारी कमी है।

सारिणी 2: भारत में कुल कार्यबल में कौशल पूर्ण शिक्षा का स्तर (हजार में)

कौशल पूर्ण शिक्षा का स्तर	कृषि एवं संबन्धित क्षेत्र	विनिर्माण क्षेत्र	गैर विनिर्माण क्षेत्र	सेवाएँ क्षेत्र
औपचारिक डिग्री/उपाधि	40	323	133	1542
औपचारिक डिप्लोमा/सर्टिफिकेट (स्नातक से निम्न स्तर)	427	1273	471	3491
औपचारिक डिप्लोमा/सर्टिफिकेट (स्नातक से उच्च स्तर)	287	341	265	1918
कुल	754	1937	869	6951
कुल क्षेत्र का प्रतिशत	0.3 (219)	4 (48)	2(44)	6.3(110)

स्रोतः राष्ट्रीय श्रम अर्थशास्त्र अनुसंधान एवं विकास संस्थान, नीति आयोग, भारत सरकार (2013)

कृषि में कौशल विकासः संभावनाएं

किसानों में आत्मनिर्भरता विकास के लिए कौशल और ज्ञान दो प्रेरक बल हैं। वर्तमान वैश्विक माहौल में उभरती अर्थव्यवस्था की मुख्य चुनौती से निपटने एवं आत्मनिर्भरता विकास में वे देश आगे हैं जिन्हों‌ने कौशल का उच्चओ स्तर प्राप्ते कर लिया है। भारत की जनसंख्याा का एक बड़ा हिस्साो उत्पोदक आयु समूह में है क्योंकि भारत के पास 60.5 करोड़ लोग 25 वर्ष से कम आयु के हैं। यह भारत को सुनहरा अवसर प्रदान करता है, परंतु एक बड़ी चुनौती भी पेश करता है। हमारी अर्थव्यवस्था को इसका लाभ तभी मिलेगा जब हमारी जनसंख्या विशेषकर युवा स्वास्थ्य, शिक्षित और कुशल होगी।

1. कृषि में आय वृद्धि हेतु नए उद्यमों में कौशल विकास

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (2014) के सर्वेक्षण के अनुसार किसानों की औसत आय 6426 रुपये प्रति माह है और इस आय में किसान 3078 रुपये कृषि से, 2069 रुपये मजदूरी/पेंशन, 765 रुपये पशुधन व 514 रुपये गैर–कृषि कार्यो से अर्जित करता है, साथ ही साथ सीमांत और छोटे किसान फसल उत्पादन में तेजी से तकनीकी विकास के साथ तालमेल रखने में असमर्थ हैं। गैर–कृषि क्षेत्र में रोजगार की कमी और इनपुट की बढ़ती लागत और विभिन्न अन्य कारकों के कारण बढ़ती ऋणग्रस्तता ने छोटे और सीमांत किसानों के अस्तित्व को मुश्किल बना दिया है। विस्तार सेवाओं को सीमांत और छोटे किसानों की जरूरतों को पूरा करने हेतु पुनर्निर्मित किया जाना चाहिए। आज कृषि आय में वृद्धि की दर त्वरित करने की आवश्यकता है जो कृषि क्षेत्र के विभिन्न उद्यमों में किसानों के कौशल विकास से संभव है इसलिये परंपरागत कृषि के साथ साथ अन्य उद्यम श्रोतों को पहचानना तथा उनमें किसानों का कौशल विकास करवाना होगा।

कुछ प्रमुख उद्यम तथा नवोन्मेषी गतिविधियां निम्नलिखित हैं:

1. विपणन

किसानों को अपने उत्पादों का सीधा विपणन करना आवश्यक है तथा अपने उत्पादन की अच्छी कीमत कहाँ मिलेगी उसका सर्वे कर

अपने उत्पादों को उन बाजारों तक भेजने की व्यवस्था खुद करनी चाहिए। इस मॉडल से बिचौलियों की भागीदारी समाप्त हो जाती है तथा उपभोक्ता के प्रत्येक रुपये का अधिकांश हिस्सा किसान के हक में जाता है।

(2) मूल्य संवर्धन

अपने उत्पादों की ग्रेडिंग, पैकजिंग एवं प्रसस्करण कर किसान उससे अधिक से अधिक आमदनी प्राप्त कर सकते हैं तथा स्वरोजगार को भी बढ़ावा दे सकते हैं। अपना ब्रांड बनाकर एक अपना बाजार स्थापित कर विश्वसनीयता बनाई जा सकती है जिसका अधिकतम लाभ उत्पादक किसान, किसान समूह/उत्पादक समूह एवं उपभोक्ता सभी को होगा।

(3) संगठित उत्पादन

उत्पादन की मात्रा के आधार पर ही उसका विपणन निर्धारित होता है। अतः कुछ किसान संगठित होकर एक ही तरह की फसल/फल/फूल/सब्जियों की खेती करेंगे तो उसे दूर भेजने में परिवहन खर्च में कमी आएगी तथा दूरस्थ बाजारों में मिलने वाली अच्छी कीमतों का लाभ उठाया जा सकेगा। इसमें भारत सरकार द्वारा 2016 में स्थापित 'ई–नाम' पोर्टल का सहयोग कारगर हो सकता है जो भारत की मंडियों को डिजिटली जोड़ता है।

(4) उत्पाद विशेष पर केन्द्रित रहना

किसी एक उत्पाद पर केन्द्रित रहने का अर्थ है उससे संबंधित ज्ञान अर्जन, उत्पादन, मूल्य सवर्धन आदि में महारथ हासिल होना। इसका फायदा समय के साथ मिलता है। साथ ही अन्य उत्पादकों की तुलना में पहले होने की वजह से बाजार में भी अच्छी पकड़ रहती है,जिससे बाजार में अपना ब्रांड स्थापित करके उसका फायदा उठाने में मदद मिलती है।

(5) समेकित कृषि प्रणाली

एक विशेष उत्पाद के अतिरिक्त किसान अन्य कृषि उत्पादों पर भी ध्यान देंगे तो आय में संमृद्धि होगी और जोखिम प्रबंधन भी होगा। फसल प्रणाली की सघनता को बढ़ाकर भी प्रति इकाई उत्पादकता/आमदनी को बढ़ाया जा सकता है। नियमित आमदनी के लिए धान्य फसलों के साथ–साथ डेयरी, मुर्गीपालन, सब्जियों की खेती, फल उत्पादन, मछली पालन आदि को भी अपनाना आवश्यक है।

(6) बागवानी फसलों की सुरक्षित खेती

बागवानी फसलों की सुरक्षित खेती से परंपरागत कृषि उत्पादन प्रणाली के स्थान पर विविधीकरण का एक बेहतर विकल्प उपलब्ध होता है। सुरक्षित दशाओं में फसलोत्पादन से मुख्य तथा बेमौसम में सब्जियों, पुष्पों तथा कुछ फल फसलों की उत्पादन क्षमता व गुणवत्ता बढ़ाने में बहुत सफलता मिलती है क्योंकि इसका उपयोग उच्च मूल्य वाली सब्जी की फसलें जैसे टमाटर, चेरी टमाटर, रंगीन शिमला मिर्च, अनिषेकजनित खीरा, कर्तित फूलों जैसे गुलदाउदी, लिलियम आदि के पुष्प, स्ट्राबेरी, अंगूर आदि को उगाने के लिए लाभदायक ढंग से किया जा सकता है। इस प्रकार सब्जियों की बेमौसम खेती करने से आमदनी को बढ़ाया जा सकता है।

(7) मधुमक्खी पालन

मधुमक्खी पालन विशेष रूप से भूमिहीन युवाओं के लिए रोजगार सृजन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण व्यवसाय के रूप में उभरा है क्योंकि इसके लिए भूमि की आवश्यकता नहीं होती है। मधुमक्खी के छत्ते सड़क के किनारे, नहरों के आस–पास की खाली जमीन तथा खेतों की मेड़ पर रखे जा सकते हैं। यह उद्यम मधुमक्खियों की 20 कालोनियों से आरंभ किया जा सकता है और प्रति कालोनी की लागत 5000 रुपये आती है। यहां इस्तेमाल होने वाले अन्य उपकरण हैं शहद निकालने की युक्ति, छत्ता से संबंधित औजार, बिना ढक्कन की ट्रे और चाकू जो आसानी से उपलब्ध हैं और सस्ते भी हैं।

(8) डेरी पालन

दूध उत्पादन भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देता है। परंपरागत खेती के साथ इसे अपनाने वालों के लिए डेरी पालन प्राकृतिक आपदाओं के विरुद्ध एक प्रकार से

बीमा का कार्य करती हैं और इसके साथ ही खाद्य सुरक्षा व पोषणिक पुनश्चक्रण में भी सहायता पहुंचाती हैं। यदि डेरी पालकों का डेरी से संबन्धित क्रिया विधियों, सामग्री और इसके साथ–साथ डेरी पशुओं से उपयुक्ततम उत्पादन में कौशल विकास किया जाए तो डेरी उद्यम से होने वाले लाभ में बहुत वृद्धि की जा सकती है। इसके लिए दूध व दूध से निर्मित पदार्थों के उचित विपणन की भी आवश्यकता होगी।

(९) कुक्कुट पालन

कुक्कुट पालन भारत में कृषि क्षेत्र का सबसे तेजी से वृद्धि करने वाला व्यवसाय है जिसकी वृद्धि दर प्रति वर्ष लगभग ८ प्रतिशत है। भारत में कुक्कुट पालन क्षेत्र में संरचना और परिचालन की दृष्टि से अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है और अब यह मात्र घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन की क्रिया से बढ़कर चार दशकों की अवधि में एक प्रमुख वाणिज्यिक कृषि आधारित उद्योग बन गया है। नई प्रौद्योगिकियों के उन्नयन, रूपांतरण तथा अनुप्रयोग के निरंतर प्रयासों से कुक्कुट तथा अन्य सम्बद्ध क्षेत्रों में कई गुनी तथा अनेक आयामी वृद्धि का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इसका यह तात्पर्य है कि भारतीय कुक्कुट बाजार में इस व्यवसाय के अपार अवसर हैं। इसके अतिरिक्त मछली पालन, केंचुआ खाद उत्पादन, सब्जियों की खेती आदि आयामों से किसानों की आमदनी बढ़ाने व स्वरोजगार उत्पन्न करने की दिशा में सार्थक प्रयास किया जा सकता है।

2. कौशल विकास हेतु भारत सरकार की पहल

भारत सरकार ने कृषि सहित विभिन्न क्षेत्रों में कौशल विकास हेतु कई योजनाएँ आरंभ की हैं जो कौशल विकास के क्षेत्र में अपार संभावनाओं को जन्म देती हैं, जिनमें से प्रमुख योजनाएँ निम्नलिखित हैं:–

(1) फसल कटाई के बाद फसल की हानि रोकने के लिए वेयर हाउसिंग और कोल्ड चेन में निवेश

कृषि उत्पादों की आपूर्ति श्रृंखला में नुकसान को रोकने के लिए और खाद्य प्रसंस्करण के लिए मौजूदा बुनियादी ढांचे में सुधार करने के लिए, खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय, मेगा फूड पार्क आदि एकीकृत शीत चेन, मूल्य संवर्धन और संरक्षण इंफ्रास्ट्रक्चर और बूचड़खानों की स्थापना / आधुनिकीकरण की योजनाओं को लागू कर रहा है। कोल्ड चेन की योजना, मूल्य संवर्धन और संरक्षण बुनियादी ढांचा का उद्देश्य बागवानी और गैर–बागवानी उपज के बाद फसल नुकसान को कम करना और उनके उत्पादन के लिए किसानों को लाभप्रद मूल्य प्रदान करना मुख्य कारक है। इस योजना के अंतर्गत एकीकृ त शीत शृंखला और संरक्षण बुनियादी ढांचा, उद्यमियों, सहकारी समितियों, स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी), किसान निर्माता संगठन (एफपीओ), गैर सरकारी संगठनों, केंद्रीय ६ राज्य सार्वजनिक उपक्रमों आदि द्वारा स्थापित किया जा सकता है।

(2) प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई)

वर्ष 2015 में मंजूर की गई प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई) युवाओं के कौशल प्रशिक्षण के लिए एक प्रमुख योजना है। इसके तहत पाठ्यक्रमों में सुधार, बेहतर शिक्षण और प्रशिक्षित शिक्षकों पर विशेष जोर दिया गया है। प्रशिक्षण में अन्य पहलुओं के साथ व्यशवहार कुशलता और व्यववहार में परिवर्तन भी शामिल है। नवगठित कौशल विकास और उद्यम मंत्रालय के अंतर्गत राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी) के माध्यकम से इस कार्यक्रम को क्रियान्वित कर रहा है। इसके तहत 24 लाख युवाओं को प्रशिक्षण के दायरे में लाया जाएगा है। कौशल प्रशिक्षण नेशनल स्किहल क्वालिफिकेशन फ्रेमवर्क (एनएसक्यूएएफ) और उद्योग द्वारा तय मानदंडों पर आधारित होगा। कार्यक्रम के तहत तृतीय पक्ष आकलन संस्थारओं द्वारा मूल्यांकन और प्रमाण पत्र के आधार पर प्रशिक्षुओं को नकद पारितोषिक दी जाएगी। नकद पारितोषिक औसतन 8,000 रूपए प्रति प्रशिक्षु होगी।

(3) राष्ट्रीय कृषि विकास योजना

भारत सरकार ने वर्ष 2007–08 राष्ट्रीय कृषि विकास योजना की शुरूआत की थी जो तब से

प्रचलन में है। स्कीम के कार्यान्वयन हेतु राज्य कृषि विभाग नोडल विभाग रहेगा। मुख्य खाद्य फसलों जैसे गेहूँ, धान, मोटे अनाज, छोटे कदन्न, दलहन तथा तिलहन का समेकित विकासय किसानों को प्रमाणित/एचवाईवी बीजों की उपलब्धताय प्रजनक बीजों के उत्पादनय आईसीएआर, सार्वजनिक क्षेत्र बीज निगमों से प्रजनक बीजों की खरीदय आधारी बीजों का उत्पादनय प्रमाणित बीजों का उत्पादनय बीज उपचारय प्रदर्शन स्थलों पर किसान फील्ड स्कूलय किसानों को प्रशिक्षण आदि के लिए सहायता प्रदान की है।

कृषि मशीनीकरण, मृदा स्वास्थ्य की वृद्धि के संबंध में गतिविधियां (किसानों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड वितरणय सूक्ष्म पोषक तत्व प्रदर्शनय प्रचारध्उपयोग साहित्य के मुद्रण सहित क्षारीय तथा अम्लीय जैसी स्थितियों से प्रभावित मृदा के सुधार), पनधारा क्षेत्रों में तथा के बाहर वर्षा सिंचित कृषि प्रणाली का विकास, गरीबी रेखा से नीचे के किसानों को आजीविका प्रदान करने के लिए समेकित कृषि प्रणाली (कृषि, बागवानी, पशुधन, मात्स्यिकी), समेकित कीट प्रबंधन स्कीमें, विस्तार सेवाओं को प्रोत्साहन (इसमें कौशल विकास के लिए नई पहलें तथा कृषक समुदाय को प्रशिक्षण तथा मौजूदा राज्य कृषि विस्तार प्रणाली का पुनरोद्धार) ,बागवानी उत्पादन की वृद्धि से संबंधित गतिविधियां ,पशुपालन तथा मात्स्यिकी विकास गतिविधियां के लिए सहायता प्रदान की जा सकती है।

(4) भारतीय कृषि कौशल परिषद

भारतीय कृषि कौशल परिषद का निर्माण वर्ष 2013 में कृषि तथा कृषि से संबन्धित क्षेत्रों में कौशल एवं उद्यमिता विकास हेतु किया गया। देश में खेती–बाड़ी के साथ पशुपालन, बागवानी, डेरी, मुर्गी पालन, मछली पालन, वानिकी, रेशम कीट पालन, कुक्कुट पालन, बत्तख पालन जैसे कृषि संबन्धित क्षेत्रों में भारतीय कृषि कौशल परिषद किसानों का कौशल विकास कर रहा है। भारतीय कृषि कौशल परिषद देश भर में 956 प्रशिक्षण संस्थाओं, 685 उद्योग साथियों के साथ मिलकर अभी तक 9,55,900 प्रशिक्षणार्थीओं को कृषि में कौशल विकास हेतु प्रशिक्षण दे चुका है।

(अ) भारत में निर्माण (मेक इन इंडिया)

इस योजना को दिनांक 25 सितम्बर, 2014 को प्रारंभ किया गया था ताकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साथ साथ घरेलू कम्पनियों को भी अपने उत्पादों का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। इस पहल के पीछे मुख्य लक्ष्य अर्थव्यवस्था के 25 क्षेत्र में रोजगार उत्पन्न करना और कौशल संवर्धन करना था। इस पहल का उद्देश्य उच्च गुणवत्ता मानक बनाये रखना और पर्यावरण पर प्रभाव को न्यूनतम करना भी है। इस पहल के अंतर्गत भारत में पूंजीगत एवं प्रौद्योगिकीय निवेश को आकर्षित करने की प्रयास है।

(5) 'स्टार्ट–अप इंडिया' पहल

इसका प्रयोजन भारतीय युवाओं के बीच उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करना है। 'स्टार्ट–अप इंडिया स्टैण्ड अप इंडिया' द्वारा उद्यमशीलता को बढ़ाने और रोजगार उत्पन्न करने में स्टार्ट–अप के लिए वित्तीय सहायता को बढ़ावा दिया जाता है और अन्य प्रोत्साहन दिए जाते हैं। इस पहल के अंतर्गत 1.25 लाख बैंक शाखाओं द्वारा विभिन्न उद्योगों के साथ साथ दलित अथवा आदिवासी उद्यमी और महिला उद्यमिओं को भी बढ़ावा दिया जा रहा है।

(6) कृषि विज्ञान केन्द्रों में कौशल विकास

ग्रामीण युवाओं को स्वावलंबी बनाने के लिए कृषि विज्ञान केंद्र वर्मी कंपोस्ट, डेयरी फार्मिंग, मशरूम उत्पादन इत्यादि के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है जो कि कृषि में कौशल विकास की ओर एक स्वर्णिम कदम होगा। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत होने वाले इस प्रशिक्षण में युवाओं को 200 घंटे का प्रशिक्षण दिया जाता है तथा प्रशिक्षणार्थियों को संबंधित यूनिटों का दौरा कराकर उन्हें इसमें आने वाली समस्याओं को समाधान के बारे में अवगत भी कराया जाता है। प्रशिक्षण देने के बाद अभ्यर्थी की परीक्षा लेकर

उनका आकलन किया जाता है। कृषि क्षेत्र में प्रशिक्षित युवाओं की जरूरत को पूरा करने के लिए देश लगभग सात सौ कृषि विज्ञान केंद्र में यह कौशल विकास कार्यक्रम किया जा रहा है जिससे 'कौशल भारत से कुशल भारत' का महत्वकांशी लक्ष्य पूरा हो सकता है। इनमें एग्री–वेयरहाउसिंग, कोल्डप–चेन, सप्लाई–चेन, डेयरी, पोल्ट्री , मत्य–एग पालन, बागवानी, कृषि यंत्रीकरण तथा सूक्ष्मी सिंचाई जैसे आयाम शामिल हैं। वर्ष 2016–17 में 100 कृषि विज्ञान केंद्रों तथा 8 राष्ट्रीय प्रशिक्षण संस्थाानों में 200 घंटे की अवधि के 203 कौशल विकास कार्यक्रम आयोजित किये गए। इन कार्यक्रमों के माध्यंम से 3,549 युवाओं को प्रशिक्षित किया गया। राष्ट्री य कृषि विकास योजना के तहत इस पर 3.53 करोड़ रुपए खर्च किये गए। वर्ष 2017–18 में 94 प्रशिक्षण संस्थाकओं ने 116 कौशल विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करके 2,320 युवाओं को प्रशिक्षण प्रदान किया।

निष्कर्ष

आत्मनिर्भर भारत अभियान के लाभ देश के गरीब नागरिक, श्रमिक, प्रवासी मजदूर, पशुपालक, मछुआरे, किसान, संगठित क्षेत्र व असंगठित क्षेत्र के व्यक्ति, काश्तकार, कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, मध्यमवर्गीय उद्योग को मिलेंगे जिससे 10 करोड़ मजदूरों को लाभ होगा, एमएसएमई से जुड़े 11 करोड़ कर्मचारियों को फायदा होगा, उद्योग से जुड़े 3.8 करोड़ और वस्त्र उद्योग से जुड़े साढ़े चार करोड़ कर्मचारियों को लाभ पहुंचेगा। इस योजना के तीन भाग हैं। पहले भाग में उत्तर पूर्वी क्षेत्र आता है जिसके लिए 200 करोड़ रुपए आवंटित किए गए हैं। आसाम को वहां की जनसंख्या तथा भौगोलिक क्षेत्र को देखते हुए 450 करोड़ रुपए आवंटित किए गए हैं। दूसरे भाग में वह सभी राज्य आते हैं जो पहले भाग में नहीं आते हैं। दूसरे भाग के लिए सरकार द्वारा 7500 करोड रुपए की राशि आवंटित की गई है। इस योजना के तीसरे भाग के अंतर्गत 2000 करोड़ रुपए आवंटित किए गए हैं। यह तीसरे भाग की राशि केवल उन्हीं राज्यों को प्रदान की जाएगी जो सरकार द्वारा बताए गए चार सुधारों में से कम से कम तीन सुधार राज्यों में लागू करे। कृषि को एक सतत् उद्योग के रूप में रूपांतरित करने के लिए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने कृषि समर्थक कई ऐतिहासिक पहल की है जिसमें कृषक समुदाय के लाभ के लिए नीतिगत सुधारों और योजनाओं को बनाने करने का कार्य किया गया है जिसका उद्देश्य इन नीतिगत सुधारों और योजनाओं को लागू करके देश के किसान को 'आत्मनिर्भर कृषि' के लिए सक्षम बनाना है। इस परियोजना का केंद्र बिंदु सरकार का 'मेक इन इंडिया' का सिद्धांत है। भारत में बने उत्पाद जिसमें कृषि भी शामिल है, में स्थानीय संसाधनों एवं उत्पाद के उपयोग को प्रोत्साहित करना है।

***अपने मिशन में कामयाब होने के लिए,
आपको अपने लक्ष्य के प्रति एकचित निष्ठावान
होना पड़ेगा।***

–ऐ.पी.जे. अब्दुल कलाम

कुपोषण से कैसे बचें?

शशि तिवारी एवं सुधा जुकारिया
कृषि विज्ञान केन्द्र, ज्योलीकोट, नैनीताल

कुपोषण क्या है?

कुपोषण एक ऐसा चक्र है जिसके चुंगल में बच्चा अपनी माँ के गर्भ से ही आ जाता है तथा जन्म के बाद अनुवांशिक रूप से प्राप्त शारीरिक विकास के जीन्स होने के बाद भी उचित शारीरिक विकास अवरूद्ध होने लगता है तथा एक स्तर के बाद मानसिक विकास को भी अवरूद्ध करने लगता हैं। बहुत छोटे बच्चों में विशेषकर जन्म से लेकर 5 वर्ष की आयु तक के बच्चों को भोजन के माध्यम से पर्याप्त पोषण आहार न मिलने के कारण उनमें कुपोषण जन्म लेती है। जिसके कारण बच्चों में रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती जाती है तथा छोटी–छोटी बीमारियाँ उनकी मृत्यु का कारण बन जाती है।

शरीर को लम्बे समय तक संतुलित आहार की प्राप्ति न होने से शारीरिक विकास के लिए आवश्यक पोशक तत्वों की अनुपस्थिति के कारण शरीर का विकास रूक जाता है तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण शरीर रोगग्रस्त होने लगता है। बच्चों एवं महिलाओं में अधिकाशतः रोग कुपोषण के कारण होते है। भारत में मुख्यतः बच्चों में कुपोशण "सूक्ष्म पोषक तत्वों" (माइक्रोन्यूट्रियन्ट) की कमी एवं फास्ट फूड खाद्य पदार्थों को मुख्य आहार के रूपमें लिये जाने कारण "मोटापे" के रूप में पाया जाता हैं।

भारत में कुपोषण की स्थिति

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार भारत में प्रति वर्ष कुपोषण के कारण पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु संख्या दस लाख से अधिक है। दक्षिणी एशिया में भारत कुपोषण के सम्बन्ध में चिन्ताजनक स्थिति में है। भारत में अनुसूचित जनजाति (28%), अनुसूचित जाति (21%) पिछड़ी जाति (20%) तथा ग्रामीण समुदाय (21%) पर कुपोषण का अत्यधिक प्रभाव है। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली कुल जनसंख्या का 25.70% तथा शहरीय क्षेत्रों में 13.70% परिवार गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करते है। जिसकी वजह से लोगों को संतुलित आहार तथा स्वच्छ वातावरण नहीं मिल पाता है, फलस्वरूप शारीरिक एवं मानसिक विकास बाधित हो जाता है। बीते कुछ वर्षों में भारत में कुपोषण को लेकर नये सिरे से चर्चा शुरू हुई है। अक्टूबर 2019 में जारी **वैश्विक** भुखमरी सूचकांक में भारत 117 देशों में से 102 वें स्थान पर था। वर्ष 2017 में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थ नीति जारी की गयी जिसमें नागरिकों की उत्पादकता पर कुपोषण के नकारात्मक प्रभाव और देश की मृत्यु दर का मुख्य कारण माना गया। यूनीसेफ (UNICEF) के अनुसार वर्ष 2017 में सबसे कम वजन वाले बच्चों की संख्या में 10 वें स्थान पर रहा। वर्ष 2019 में 'द लैंसेट' नामक पत्रिका द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार भारत में पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की 1.04 मिलियन मौतों में से दो तिहाई मृत्यु का कारण कुपोषण था।

वर्तमान की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व बैंक द्वारा कहा गया है कि भारत में गरीबी से लड़ने के लिये अतुलनीय कार्य किया गया है और इससे देश में गरीबी रेखा की दर में काफी गिरावट आयी है किन्तु कुपोषण और भूखमरी की समस्या अभी भी देश में है। हाल में जारी **'द स्टेट ऑफ वर्ल्ड्स चिल्ड्रन–2019** की रिपोर्ट के अनुसार विश्व में 5 वर्ष तक की उम्र के प्रत्येक 3 बच्चों में से प्रत्येक एक बच्चा कुपोषण अथववा अल्प वजनकी समस्या से ग्रस्त है। बच्चों के साथ–साथ 23% महिलाँए तथा 20 % पुरूष भी कुपोषण की समस्या से ग्रसित है। भारत में बच्चों की सही ढंग से टीकाकरण एवं इलाज की उचित व्यवस्था न मिल पाने से कुपोषण जैसी समस्यायें और गम्भीर हो जाती है।

कुपोषण को कैसे पहचानें?

मानव शरीर को सन्तुलित आहार के जरूरी तत्व लम्बे समय तक न मिलने से निम्नलिखित शारीरिक लक्षण दिखाई देते है। जिसके माध्यम से व्यक्ति के कुपोषित होने की स्थिति का पता लगाया जा सकता है:

- जन्म के समय शरीर का वजन कम होना
- शरीर की वृद्धि रूकना
- मॉस पेशियाँ का ढीला होना अथवा सिकुड़ जाना
- झुरियॉं युक्त पीले रंग की त्वचा
- कार्य करने पर शीघ्र थकान आना
- मन में उत्साह का अभाव चिड़चिड़ापन तथा घबराहट होना
- बाल रूखे और चमक रहित होना
- चेहरा कान्तिहीन, ऑखे धँसी हुई तथा उनके चारों ओर काला घेरा बनना
- शरीर का वजन कम होना या अत्यधिक होना तथा कमजोरी
- नींद एंव पाचन क्रिया का गड़बड़ होना
- हाथ पॉव पतले और पेट बढ़ा होना तथा शरीर में सूजन आना (अक्सर बच्चों में)

कुपोषण के कारण

विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा विकासशील देशों में कुपोषण की समस्या विकराल है। इसका प्रमुख कारण है। गरीबी/धन के अभाव में गरीब लोग पर्याप्त, पौष्टिक चीजें जैसे दूध, फल तथा सब्जियॉं, दाल आदि हीं खरीद पाते है एवं सिर्फ चावल या रोटी से ही पूरे भोजन की आवश्यकता पूर्ण करते है। दूसरा मुख्य कारण सन्तुलित भोजन के बारे में जानकारी का अभाव होने के कारण स्वयं कुपोषित होने के साथ–साथ उनके बच्चे भी कुपोषण का शिकार हो जाते है। कुपोषण वास्तव में घरेलू खाद्य असुरक्षा का सीधा परिणाम है। सामान्य रूप से खाद्य सुरक्षा का अर्थ सब तक खाद्य पदार्थों की पहुँच। कई बार उपयुक्त नीतियों के अभाव में यह जरूरत मंदों तक पहुँच नहीं पाता है। अनाज भंडारण के अभाव में बड़ा भाग भूखे पेट ही सो जाता है। भारत में गर्भावस्था के दौरान शरीर में खून की कमी के कारण हर तीन गर्भवती महिलाओं में से एक महिला कुपोषण का शिकार होती है साथ ही गर्भ में पल रहा बच्चा भी कुपोषण का शिकार होता है। कुपोषण के कुछ मुख्य कारण इस प्रकार है:

- व्यक्ति को पर्याप्त मात्रा में आहार प्राप्त न होना
- पोषक तत्वों की आवश्यक मांग की पूर्ति न होना
- आयु, लिंग, क्रियाशीलता एवं शारीरिक अवस्था के अनुरूप भोजन की अनुउपलब्धता
- आर्थिक कारण
- सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकं (बाल विवाह)
- अज्ञानता
- अस्वास्थ्यकर वातावरण
- दोषपूर्ण पाचन एवं अवशोषण
- दोशपूर्ण भोजन सम्बन्धी आदतें

कुपोषण के प्रकार

विभिन्न पोषण सर्वेक्षणों से यह ज्ञात होता है कि भारत में निम्न आय वर्ग के बच्चे एवं महिलाएँ कुपोषण से ग्रसित है। बड़ी संख्या में बच्चे प्रोट्रीन, उर्जा कुपोषण, विटामिन "ए" की कमी एनीमिया जेसे रोगों द्वारा ग्रसित है, किशोरियों तथा महिलाओं में भी लौह लवण की कमी द्वारा उत्पन्न एनीमिया रोग बहुतायत में दिखाई देता है। सामान्यत: भोजन की मात्रा की उपलब्धता के आधार पर कुपोषण दो प्रकार की होते है:

1. अल्पपोषण
2. अतिपोषण

1. अल्प पोषण

इस स्थिति में शरीर को पर्याप्त एवं आवश्यक मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त नहीं होते है। परिणाम स्वरूप शरीर प्रोट्रीन उर्जा कुपोषण से ग्रसित हो जाता है। प्रोट्रीन की अल्पता के कारण शारीरिक विकास बाधित होता है तथा उर्जा की कमी होने के कारण शरीर थोड़ा भी कार्य करने में जल्दी ही थकान का अनुभव करता है। अल्प पोषण मुख्यत: दो कारणों से उत्पन्न होता है:

1. व्यक्ति को पर्याप्त मात्रा में भरपेट भोजन उपलब्ध न हो।

2. व्यक्ति को पर्याप्त मात्रा में भोजन उपलब्ध होता है परन्तु भोजन में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी होती है।

अल्प पोशण की दशा में व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। अतः विभिन्न संक्रमण एवं पोषक तत्वों की कमी से होने वाले रोग बहुत जल्दी हो जाते है।

2. अतिपोषण

इस स्थिति में व्यक्ति आवश्यकता अधिक उर्जा/कैलोरी अपने आहार में सम्मिलित करता हैं। यह अतिरिक्त उर्जा शरीर में वसा के रूप में संग्रहित कर ली जाती है। इस स्थिति को अति पोषण द्वारा उत्पन्न कुपोषण के नाम से जाना जाता है।

बच्चों में कुपोषण के प्रकार

1. स्टनिंग

स्टनिंग एक रोगी समस्या है, जिससे बच्चे का वजन और लम्बाई में विकास सामान्य रूप से नहीं हो पाता हैं इसका मुख्य कारण गर्भधारण के बाद में तो माताएँ अपने खान–पान पर ध्यान नहीं देती तो यह प्रक्रिया भ्रूण विकास के दौरान ही बच्चे को प्रभावित करती है। बच्चे की दो वर्श की आयु होने तक यह अवस्था पूरी तरह दिखने लगती है।

2. वास्टिंग

यह एक ऐसी समस्या है जो खासकर किसी लम्बे संक्रमण या बीमारी (जैसे मलेरिया और डायरिया) होने की स्थिति में होती है। ऐसे में बच्चे में अचानक से जरूरी पोषक तत्वों को अवशोषित करने की क्षमता कम हो जाती है। जिस कारण से बच्चे का सामान्य शारीरिक विकास रूक जाता है।

3. क्वास्यिोरकर

यह एक ऐसी गम्भीर समस्या है जो प्रोटीन और उर्जा की अत्यधिक कमी के कारण पैदा होती हैं इसमें इंसान की मॉसपेशियाँ कमजोर हो जाती हैं तथा शरीर में सूजन हो जाती हें आहार में हाई कार्बोहाइड्रेट और कम प्रोट्रीन युक्त खाद्य को शामिल करने के कारण यह स्थिति पैदा हो सकती है।

4. मरासम्स

यह समस्या और कैलोरी की अत्यधिक कमी होने के कारण उत्पन्न होती है। इस स्थिति में टिशू एवं मॉसपेशियाँ ठीक से विकसित नहीं हो पाते है।

5. माइक्रोन्यूट्रियन्टस की कमी

विटामिन ए, मल्टीविटामिन फोलिक एसिड, जिंक, कॉपर और आयरन जैसी कई जरूरी पोषक तत्वों की कमी के कारण बच्चों में कुपोषण की समस्या देखी जाती है।

कुपोषण का प्रभाव

कुपोषण बच्चों को सबसे अधिक प्रभावित करता है। यह जन्म से पहले शुरू होता है तथा 6 महीने से 3 वर्ष की अवधि में तीव्रता से बढ़ता हैं। इसके परिणाम स्वरूप दृष्ट बाधिता, मृत्यु, कम दक्षता और 15% तक आईक्यू का नुकसान होता है। कुपोषण मानव उत्पादकता 10–15% तक कम कर देता है। जिस कारण सकल घरेलू उत्पाद 5–10% तक कम हो जाता हैं। कुपोषण के कारण बच्चों के सीखने की क्षमता कम हो जाती है फलस्वरूप बच्चे विद्यालय छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं। स्कूल के बाहर वे सामाजिक उपेक्षा तथा घटी हुआ कमाऊँ क्षमता के कारण जीवन पर्यन्त शोषण का शिकार होते रहते है। इसी कारण बडी संख्या में बच्चे बाल श्रमिक या बाल वैश्यावृत्ति के लिये मजबूर हो जाते है।

बच्चों को कुपोषण से किस प्रकार बचाया जाए?

- बच्चों को जन्म से लेकर 1 वर्ष की आयु तक अधिक से अधिक स्तनपान करायें। साथ ही छः महीने की आयु के बाद फलों के रस के साथ फैट, शुगर और सोडियम की अधिक मात्रा युक्त खाद्य का सेवन भी करवायें।
- अगर किसी कारणवश मॉ दूध पिलाने में असमर्थ हो तो इस स्थिति में डाक्टरी सलाह के साथ गाय के दूध अथवा फार्मूला मिल्क दे।

- एक वर्ष से अधिक उम्र के बच्चों के लिये खाद्य पदार्थों से उचित मात्रा में उर्जा, विटामिन ए और मिनरल्स की मात्रा सुनिश्चित करें।
- बच्चे के शारीरिक रूप से सक्रिय रहने पर ध्यान दें।
- बच्चों की पोषण सम्बंधी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए आहार में कार्बोहाइड्रेट, प्रोट्रीन के साथ–साथ विटामिन ए, सी, ई, डी, कैल्शियम, पोटेशियम, फाइबर, लिनोलेइक तथा अल्का लिनोलेइक एसिड युक्त खाद्य पदार्थ शामिल होने चाहिए।

ICAR-DCFR

पोषण वाटिका में अधिक उत्पादन हेतु उन्नत तकनीकें

[1]रेनू जेठी, प्रतिभा जोशी एवं गिरिजेश महरा
[1]भाकृअनुपरि–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल
वैज्ञानिक कृषि प्रसार संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

पोषण वाटिका पहले पारम्परिक खेती की आधारशिला थे परन्तु पिछले कुछ वर्षों में धीरे–धीरे इन्होंने अपना महत्व खोना शुरु कर दिया। वर्तमान में पोषण सुरक्षा हेतु इनके महत्व को एक बार फिर से पहचाना जा रहा है। जैविक खाद्य पदार्थों की उपयोगिता के कारण भी पोषण वाटिका का प्रचलन अब गाँव व शहरों में बढ़ रहा है। भारत सरकार द्वारा चलाए जा रहे पोषण अभियान कार्यक्रम के अन्तर्गत कुपोषण उन्मूलन हेतु पोषण वाटिका को बढ़ावा दिया जा रहा है। पर्वतीय क्षेत्रों में कुपोषण को कम करने के लिए पोषण वाटिका व्यापक रूप से एक उपाय के रूप में उपयोग किये जा सकते हैं। पोषण वाटिका के कई सामाजिक लाभ भी हैं जैसे खाद्य व पोषण सुरक्षा, महिला सशक्तिकरण, पारंपरिक ज्ञान वर्धन आदि।

पर्वतीय क्षेत्रों में परिवार की खाद्य जरूरतों को पूरा करने हेतु 100 से 200 वर्ग मीटर के खेत में पोषण वाटिका का निर्माण किया जा सकता है। पोषण विशेषज्ञों के अनुसार संतुलित आहार के लिए वयस्क महिला व पुरूष को प्रतिदिन 100 ग्राम फल और 300 ग्राम सब्जियों (हरी पत्तेदार सब्जियाँ 50 ग्राम, जड़ वाली सब्जियाँ 50 ग्राम व अन्य सब्जियाँ 200 ग्राम) का सेवन करना चाहिए। इन्हें रक्षात्मक खाद्य पदार्थों की श्रेणी में रखा गया है क्योंकि इनके लगातार सेवन से कई जटिल बीमारियों से बचा जा सकता है। सामान्यतः पर्वतीय क्षेत्रों में व विशेषकर ग्रामीण महिलाओं में आवश्यक पोषक तत्वों की अक्सर कमी देखी गयी है। पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाएँ अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कई–कई घण्टे कठिन परिश्रम करती हैं और अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दे पाती। विभिन्न क्षेत्रों में पहले की तुलना में खाद्य उपलब्धता में बदलाव आया है लेकिन फल व सब्जियों का उत्पादन एवं उपलब्धता पर्वतीय क्षेत्रों में अभी भी कम है। साथ ही कुपोषण, मधुमेह, रक्त अल्पता, कैंसर की समस्याऐं बढ़ रही हैं। पोषण वाटिका में महिलाओं की भागीदारी द्वारा उनको आत्मनिर्भर बनाने के साथ–साथ लघु स्तर पर जैव विविधता का संरक्षण भी किया जा सकता है। उन्नत कृषि तकनीकी का उपयोग कर पोषण वाटिका में अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

एन.एम.एच.एस परियोजना के अर्न्तगत पोषण वाटिका का निर्माण व प्रसार

पॉलीटनल (प्लास्टिक लो टनल)

पर्वतीय क्षेत्रों में जाडों के समय पाला पड़ने से सब्जी फसलों की नर्सरी तैयार करने में समस्या उत्पन्न हो जाती है। नर्सरी में पॉलीटनल का उपयोग कर इस समस्या को कम किया जा सकता है। यह एक पारदर्शी एवं लचीली संरक्षित संरचना है। इसका प्रयोग पौध की

रोपाई के बाद एवं पौध तैयार करने हेतु किया जाता है। इसे लगाने के बाद ऊपर से पारदर्शी प्लास्टिक शीट से ढक दिया जाता है। इस तरह पौध को एक संरक्षित वातावरण मिल जाता है। सर्दियों में इससे पौधे के आस पास का सूक्ष्म वातावरण बाहर के वातावरण की तुलना मे अधिक गर्म रहता है जिससे पौधे का उचित विकास होने में सहायता मिलती है। लो–टनल बनाने के लिए लोहे की अर्धचंद्राकार छड़ों को क्यारी के ऊपर एक निश्चित दूरी पर गाढ़ देते हैं जिसके ऊपर प्लास्टिक शीट बिछाकर इसके किनारों को चारों तरफ से मिट्टी मे दबा देते हैं ताकि हवा अंदर न जा सके और टनल के अंदर का वातावरण गर्म रहे। इस तकनीक से बेमौसमी सबिजयों का उत्पादन किया जा सकता है। कद्दू वर्गीय सब्जियों का लो टनल के अंदर मुख्य मौसम से 30 से 60 दिन पहले उत्पादन लिया जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों में विशेषकर सर्दियों में सब्जियाँ तैयार करने हेतु बाँस पर बने पॉलीटनल सस्ता व लाभदायक विकल्प है। वर्तमान में विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा लोहे के हल्के, कम लागत वाले पॉलीटनल (वी.एल पॉलीटनल) का निर्माण कर विभिन्न परियोजनाओं के अन्तर्गत कृषकों को उपलब्ध कराए जा रहे हैं।

नर्सरी हेतु पॉलीटनल का उपयोग

पॉलीटनल का आकार

- आकृति– अर्द्धवृत्ताकार (5 वर्गमीटर)/ अर्धचंद्राकार
- लम्बाई– 5 मीटर
- चौड़ाई– 1 मीटर
- मध्य से ऊचाई– 0.5 मीटर
- जोड़– कील एवं पालीफिल्म वॉशर द्वारा

पोर्टेबल पॉलीहाउस

प्रायः पर्वतीय क्षेत्रों में खेत का आकार काफी छोटा होता है जिसमें मौसमी व बेमौसमी सब्जी उत्पादन हेतु पॉलीहाउस का निर्माण संभव नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में पोरटेबल पॉलीहाउस का निर्माण कर छोटे क्षेत्र में भी अधिक सब्जी उत्पादन कर परिवार के खाद्य ज़रूरतों को पूरा किया जा सकता है। साथ ही अतिरिक्त उत्पादन को बाजार में बेच कर मुनाफा प्राप्त किया जा सकता है। भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा विकसित वी.एल पोरटेबल पॉलीहाउस की लम्बाई 12 मीटर एवं चौड़ाई 5.2 मीटर है। कुल भूमि क्षेत्र 62.4 वर्ग मीटर है। आवश्यक्ता के अनुसार इसे एक खेत से दूसरे खेत में स्थानांतरित किया जा सकता है। वर्तमान में संस्थान द्वारा विभिन्न परियोजनाओं के अन्तर्गत वी.एल पोरटेबल पॉलीहाउस का निर्माण कर कृषकों को उपलब्ध कराए जा रहे हैं।

केंचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट)

केंचुआ खाद या वर्मी कम्पोस्ट पोषक तत्व समृद्ध जैविक खाद है जो कि केंचुओं की कुछ प्रजातियों द्वारा तैयार की जाती है। केंचुए खेती के लिए अत्यंत लाभदायक है क्योंकि इनके आवागमन से कुदरती तौर पर मिट्टी पलटने

का कार्य होता है और वायु का संचार भी अच्छा रहता है। केंचुओं की कुछ प्रजातियाँ भोजन के रुप में व्यर्थ कार्बनिक पदार्थों का ही उपयोग करती हैं। इन कार्बनिक पदार्थों की कुल मात्रा का 5–10 प्रतिशत भाग शरीर की कोशिकाओं द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है शेष मल के रुप में विसर्जित हो जाता है जिसे वर्मी कम्पोस्ट कहते हैं। नियंत्रित दशा में केंचुओं द्वारा केंचुआ खाद उत्पादन की विधि को वर्मी कम्पोस्टिंग और केंचुआ पालन विधि को वर्मीकल्चर कहते हैं।

अब पहले की तुलना में खेतों में केंचुए इतनी अधिक मात्रा में दिखाई नहीं देते। आधुनिक कृषि प्रणाली, भारी कृषि उपकरण, कृषि रसायन आदि के प्रयोग से इन नन्हे जीवों की संख्या कम होती चली गई है। कृषि में इनके लाभकारी योगदान को देखते हुए इनका व्यवस्थित पालन किया जा रहा है। यह जीव मिट्टी, सड़े–गले पत्ते, गोबर, जैव अपशिष्ट आदि खाते हैं और इनके द्वारा उत्सर्जित मल ही केंचुआ खाद है। यह रोजाना लगभग अपने वजन के बराबर भोजन करते हैं और इतना ही खाद भी उत्पन्न करते हैं। इस तरह खाद बनने की कुदरती प्रक्रिया चलती रहती है। केंचुओ द्वारा उत्सर्जित मूत्र भी अत्यंत लाभदायक है, जिसे वर्मी वॉश कहा जाता है।

केंचुआ पालन की प्रक्रिया में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

- स्थान का चुनाव

चयनित जगह में वर्षा का पानी एकत्र नहीं होना चाहिए साथ ही कार्बनिक पदार्थो में नमी बनाए रखने के लिए आस–पास स्वच्छ पानी की व्यवस्था होनी चाहिए।

- भंडारण
- केंचुआ

खाद बनाते समय, कार्बनिक पदार्थों के भंडारण के लिए छायादार स्थान का होना जरूरी है ताकि खाद में उचित नमी बनी रहें। नमी कम होने पर खाद की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। कम से कम 35 से 40 प्रतिशत नमी बनी रहनी चाहिए।

वर्मी कम्पोस्ट का बचाव

- केंचुओ को मेंढक, चिड़िया, दीमक, लाल चींटी आदि से नुकसान होने का डर रहता है। अतः इस नुकसान को रोकने के लिए कंपोस्ट पिट के चारों तरफ मुर्गा जाली लगाकर या अन्य तरीकों से सुरक्षा व्यवस्था करना जरूरी है।
- सप्ताह में एक बार बेड को रेक द्वारा पलट लेना चाहिए ताकि गोबर में हवा का संचार हो जाए और बेड मे अधिक गर्मी न बढ़ने पाए।
- ताजे गोबर का प्रयोग कभी भी नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह गर्म होता है जिससे केंचुए मर सकते हैं।
- केंचुए सर्वाधिक क्रियाशील 15 से 25 डिग्री तापमान में रहते हैं और खाद भी जल्दी तैयार हो जाती है। अतः बेड के तापमान पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- हवा का पर्याप्त संचार होना चाहिए किंतु बेड पर रोशनी कम से कम रहनी चाहिए क्योंकि प्रकाश पड़ने पर केंचुए तले पर चले जाते हैं और अक्रियाशील हो जाते हैं।
- वर्मीबेड में केंचुए छोड़ने से पूर्व गोबर का आंशिक विच्छेदन करना जरूरी है। इसमें 15 से 20 दिन का समय लगता है। आंशिक विच्छेदन की पहचान के लिए, गोबर के ढेर मे नीचे तक हाथ डालने पर गर्मी महसूस नहीं होनी चाहिए।
- केंचुआ खाद बनाने के लिए कार्बनिक अपशिष्ट में गोबर की मात्रा कम से कम 20 प्रतिशत होनी चाहिए।
- अपशिष्ट का पी एच मान उदासीन (7 के आसपास) होने पर केंचुए अधिक सक्रिय होते हैं, अतः इसके लिए अपशिष्ट भरते समय उसमे राख अवश्य मिला लें।
- खाद की पलटाई या उसे एकत्र करते समय फावड़े, खुरपी आदि का प्रयोग नहीं करें क्योंकि इससे केंचुए के कटने और मरने का डर रहता है।
- केंचुओं को अंधेरा पसंद होता है इसलिए बेड को हमेशा टाट, बोरा या सूखी घास से ढक के रखना चाहिए। इससे केंचुओ का

चींटी, दीमक, चिड़िया आदि से भी बचाव होता है।

केंचुआ खाद

केंचुआ अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ऊपर से नीचे की तरफ खाना प्रारंभ करते हैं इसलिए खाद पहले ऊपर के भाग में तैयार होती है। केंचुआ खाद, तैयार हो जाने पर दानेदार व गहरे रंग की दिखाई देती है साथ ही दुर्गंध रहित भी हो जाती है। छूने पर यह खाद चाय के दानो के समान लगती है। इस खाद को तैयार होने में कम से कम 3 महीने का समय लगता है जो केंचुओं की प्रजाति, प्रबंधन, परिस्थितियों आदि पर निर्भर करता है। जैसे–जैसे खाद तैयार होती रहे उसे हटाकर एकत्र कर लेना चाहिए ताकि उस क्षेत्र में वायु संचार बना रहे। केंचुआ खाद निकालने के 5 से 7 दिन पहले पानी का छिडकाव बंद कर देना चाहिए जिससे केंचुए खाद से निकलकर नीचे की तरफ चले जाएँ। पूरी तरह से तैयार हो चुकी खाद की पहचान यह है कि इसमें बिल्कुल भी दुर्गंध नहीं आती। केंचुआ खाद बनने के बाद कृषक इसके रखरखाव पर ध्यान नहीं देते जिससे खाद के भौतिक व जैविक गुण घट जाते हैं और यह इतनी अधिक प्रभावशाली नहीं रह जाती। अतः इसके भंडारण के समय कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है

वर्मीवॉश

वर्मीवॉश एक तरल जैविक खाद है जो ताजा तैयार की गई वर्मीकम्पोस्ट और केंचुओ के शरीर को धोकर तैयार की जाती है। यह न केवल उत्पादन व गुणवत्ता बनाने मे कारगर है बल्कि यह प्राकृतिक जैव कीटनाशक के रूप मे भी उपयोगी है। इसमे मौजूद मुख्य घुलनशील तत्व नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश है। इसके अलावा कई सूक्ष्म तत्व, हार्मोन, अमीनो अम्ल, एंजाइम आदि भी इसमें होते हैं। वर्मीवॉश की प्रकृति तीव्र होती है, अतः उचित मात्रा में पानी मिलाकर ही इसका प्रयोग करना चाहिए।

पोषण वाटिका हेतु केंचुआ खाद तैयार करती महिलाऐं

पॉलीटैंक

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में सिंचाई एक बड़ी समस्या है। यहाँ की औसत वार्षिक वर्षा 1,250 मि.मी. है। एक अनुमान के अनुसार यदि कुल वर्षा का 2.5 प्रतिशत भाग भी संरक्षित किया जाए तो सिंचाई की समस्या को दूर किया जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियों के कारण वर्षा का पानी ढलानों से नीचे की तरफ बह जाता है और अपने साथ उपजाऊ मिट्टी भी बहा के ले जाता है। इस पानी को व्यर्थ होने की अपेक्षा यदि संरक्षित कर लिया जाए तो इसके कई उपयोग किये जा सकते हैं। जल संरक्षण के लिए विभिन्न तरीके अपनाए जा सकते हैं जिनमें से एक है पॉलीटैंक का निर्माण। पर्वतीय क्षेत्रों में ऊपर के खेत में पॉलीटैंक बनाकर इससे नीचे की तरफ गुरूत्व आधारित सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली का प्रयोग भी किया जा सकता है। पॉलीटैंक का प्रयोग मत्स्य पालन के लिए भी किया जा सकता है। वर्षा वाले क्षेत्रों में मल्टीलेयर्ड एवं क्रास लेमिनेटेड पॉलीफिल्म का प्रयोग कर पौलीटैंक बनाना कृषकों के लिए काफी लाभदायक सिद्ध हो सकता है। साथ ही पौलीफिल्म का पराबैंगनी रूप से उपचारित होना भी जरूरी है। पॉलीफिल्म 250 जी.स.एम. (250 ग्राम प्रति वर्ग मीटर) की होने चाहिए।

- जिस क्षेत्र में पॉलीटैंक के पानी का प्रयोग करना हो उसके नजदीक ही पॉलीटैंक बनाना चाहिए।
- जानवरों का आवागमन उस क्षेत्र में नहीं होना चाहिए।
- पॉलीटैंक के लिए जो गढ्ढा खोदा गया हो उसमें 45डिग्री का ढाल जरूर होना चाहिए।
- टैंक को उपर की तरफ से 8 मीटर लम्बा, 4 मीटर चौड़ा और 45 डिग्री का ढाल एवं तल में 5 मीटर लंबाई, 1 मीटर चौड़ाई के साथ बनाना अधिक उपयुक्त रहता है। टैंक की गहराई 1.5 मीटर तक रखी जाती है, जिसमें 25 हजार लीटर जल संग्रहण की क्षमता होती है।
- गढ्ढे मे बड़े एवं नुकीले पत्थर हो तो उन्हे अलग कर लेना चाहिए क्योंकि इससे पॉलीथीन कट–फट सकती है।
- गढ्ढे मे पॉलीथीन बिछाने से पहले इसकी दीवारों को गोबर से लीपना अधिक उपयुक्त रहता है।

सिंचाई एवं मत्स्य पालन हेतु पॉलीटैंक

हरी खाद

हरी खाद का प्रयोग मिट्टी की उर्वरता बढाने के लिए पुराने समय से ही किया जा रहा है। लेकिन किसानों ने अधिक उत्पादन लेने के लिए रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग शुरू कर दिया, जिसका प्रभाव मिट्टी की उर्वरता के साथ साथ पर्यावरण पर भी पड़ा है। हरी खाद उन फसलों से तैयार की जाती है जिन्हें भूमि में पोषक तत्वों को बढ़ाने और उसमें जैविक पदार्थों की आपूर्ति करने के उद्देश्य से लगाया जाता है। हरी खाद तैयार करने के लिए, दलहनी और गैर दलहनी फसलों को उनकी हरी अवस्था में ही मिट्टी में अपघटित कर दिया जाता है। इस तरह तैयार की गयी खाद को हरी खाद कहते हैं। इससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ने के साथ साथ उसमें मौजूद सूक्ष्मजीवों की सक्रियता भी बढ़ती है।

हरी खाद तैयार करने की विधियाँ

- **स्थानिक विधि**

इस विधि में हरी खाद की फसल को उसी खेत में उगाया जाता है जहाँ इसका प्रयोग करना हो। फसल में फूल आने से पहले ही इसे मिट्टी में पलट लेते हैं और समय पर खेत में जुताई द्वारा मिट्टी में दबा लिया जाता है।

ICAR-DCFR

- **हरी पत्तियों से तैयार खाद**

इस विधि में हरी खाद वाली फसलों की पत्तियों व कोमल शाखाओं को तोड़कर खेतों की मिट्टी में दबा लिया जाता है और यह धीरे–धीरे सड़ जाती है।

हरी खाद का प्रयोग करने से मिट्टी में हवा का संचार, जल धारण क्षमता और सूक्ष्म जीवों की संख्या में भी वृद्धि होती है। हरी खाद क्षारीय मृदा के लिए भी उपयोगी है क्योंकि इनकी जड़ों का पी.एच. मान 3–5 तक होता है। हरी खाद को खेत में पलट देने के 15–20 दिन बाद अगली फसल की बुवाई की जानी चाहिए।

पलवार का प्रयोग

फसलों के बीच की मिट्टी को निम्न पदार्थों से ढका जा सकता है– जैविक खाद, काला प्लास्टिक पलवार, सूखी घास, अखबार, सूखी पत्तियाँ आदि।

पलवार लगाने के लाभ

- सूर्य के प्रकाश न मिलने के कारण खरपतवार उग नहीं पाते।
- मृदा में नमी बनी रहती है।
- मिट्टी का तापमान सामान्य बना रहता है। दिन में न बहुत अधिक गर्म रहती है और रात में न बहुत ठण्डी।
- पौधों की पत्तियाँ व फल साफ रहते है क्योंकि मिट्टी के छीटें उस पर नहीं पड़ते हैं।

विभिन्न प्रकार के पलवार

1. जैविक पलवार

इसके लिए प्राकृतिक पदार्थ जैसे–छाल, लकड़ी के टुकड़े, सूखी घास, पुआल, भूसा, सूखी पत्तियाँ, बुरादा आदि प्रयोग किया जाता है। लेकिन यह सारे पदार्थ कीटों को आकर्षित करते हैं जो इन्हें खाकर इनका अपघटन कर देते हैं।

- **पुआल**

धान और गेहूँ के पुआल का प्रयोग पलवार के लिए किया जाता है। यह अन्य जैविक पुआल की तुलना मे अधिक समय तक टिकी रहती है।

- **समाचार पत्र**

अखबारों की 2 सेमी. मोटी परत बनाकर इसे पलवार की तरह बिछा दिया जाता है एवं किनारों को पत्थरों से दबा देते है लेकिन अधिक वायु प्रवाह वाली परिस्थितियों में इस मल्च का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

- **खाद**

जैविक पलवार के लिए प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न पदार्थो में खाद सबसे अच्छा पदार्थ है। इससे मिट्टी के भौतिक गुणों के साथ साथ संरचना में भी सुधार होता है। साथ ही पोषक तत्वों की मात्रा में भी वृद्धि होती है।

- छाल यह भी पलवार का अच्छा साधन है। कठोर छाल मुलायम छाल की अपेक्षा अधिक पोषक तत्व रखती है किन्तु आसानी से उपलब्ध नही हो पाती। कुछ पेड़ों की छालें हानिकारक रसायन भी स्राव करती है। अतः इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए।
- **लकड़ी का बुरादा**

यह बहुत धीरे धीरे अपघटित होता है। अम्लीय प्रकृति का होने के कारण, अम्लीय मिट्टी में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

2. अजैविक पलवार

- कंकड़ पत्थर

यह बहुवर्षीय फसलों में प्रयोग किया जाता है किंतु गर्मी में मिट्टी के तापमान को बढ़ा सकते हैं।

- प्लास्टिक पलवार– यह दो प्रकार की होती है

1. प्रकाश अपघटनीय प्लास्टिक पलवार– यह पलवार कुछ समय बाद प्रकाश द्वारा ही नष्ट हो जाती है।
2. जैव अपघटनीय प्लास्टिक पलवार– यह पलवार कुछ समय बाद मिट्टी में खुद ही नष्ट होने लगती है।

प्लास्टिक पलवार के विभिन्न रंग– प्लास्टिक पलवार कई रंग की आती है–काला, रजत, सफेद, नीला, लाल आदि जिसका चयन कार्य विशेष के अनुसार किया जाता है।

- काली प्लास्टिक पलवार– यह सूर्य के विकिरणों को बाहर जाने से रोकती है और खरपतवार के नियंत्रण में प्रभावी होती है। काली परत नमी अवशोषण में भी सहायता करती है।
- रजत प्लास्टिक पलवार– यह प्लास्टिक परत पौधे के जड़ क्षेत्र में नमी बनाए रखने में सहायता करती है।
- पारदर्शी पलवार– इस परत का मुख्य उपयोग मृदा के सौरीकरण में किया जाता है क्योंकि ये मिट्टी के तापमान को बढ़ाने का कार्य करती है।

सूक्ष्म सिंचाई तकनीक

पर्यावरण में हो रहें बदलावों के कारण जल स्तर लगातार कम हो रहा है। विशेषकर पर्वतीय क्षेत्रों में सिंचाई के लिए जल की कमी एक बढ़ी चुनौती है। इसलिए यह जरूरी है कि उपलब्ध जल का कुशल प्रयोग किया जाए और आवश्यकतानुसार ही विभिन्न फसलों की सिंचाई की जाए। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली एक ऐसी ही तकनीक है जिसके द्वारा नियंत्रित जल वितरण कर जल का दक्षता पूर्वक उपयोग किया जा सकता है साथ ही फसल की भी अच्छी पैदावार प्राप्त होती है। सूक्ष्म सिंचाई की विभिन्न विधियाँ निम्न प्रकार हैं:

ड्रिप सिंचाई

इस सिंचाई प्रणाली में पाइपों के नेटर्वक (मुख्य पाइप, उपमुख्य पाइप, पार्श्व पाइप) में लगे उत्सर्जकों से पौधों के जड़ क्षेत्र में जल दिया जाता है। इस प्रणाली में जल के रिसाव पर अच्छा नियंत्रण होता है। साथ ही मृदा में एक समान रूप से नमी प्राप्त होती है। इस प्रणाली का प्रयोग विभिन्न सब्जी फसलों टमाटर, मिर्च, शिमला मिर्च, पत्तागोभी, फूलगोभी, प्याज, लौकी, पालक, मटर आदि के साथ साथ कई औद्योगिक फसलों, नकदी फसलों, फूल आदि में भी किया जाता है।

ड्रिप सिंचाई प्रणाली के प्रकार

- सतही ड्रिप सिंचाई प्रणाली–1 प्रणाली मे ड्रिपर व पार्श्व लाइनों को मिट्टी की सतह पर ही बिछा दिया जाता है। ड्रिपर द्वारा पानी के स्राव से पौधे को अपनी वृद्धि के लिए आवश्यक नमी प्राप्त होती रहती है।
- उपसतही ड्रिप सिंचाई प्रणाली– इस प्रणाली में पार्श्व लाइन और ड्रिपरों को मिट्टी की सतह के नीचे बिछाया जाता है। ड्रिपरों द्वारा धीरे धीरे जल रिसता रहता है।

ड्रिप प्रणाली के घटक– सामान्यतः प्रयोग किए जाने वाले ड्रिप सिंचाई प्रणाली के निम्न घटक है फिल्टर, मुख्य पाइप, उपमुख्य पाइप, पार्श्विक पाइप, माइक्रो स्प्रिंकलर, ड्रिपर

ड्रिप सिंचाई के लाभ

1. इस सिंचाई प्रणाली द्वारा बाढ़ विधि की तुलना में 40 से 100 प्रतिशत तक पानी बचाया जा सकता है।
2. विधि में पानी के उपयोग की दक्षता 90 से 95 प्रतिशत तक होती है।
3. सीमित मिट्टी के गीले होने के कारण खरपतवार के उगने की संभावना भी बहुत कम होती है।
4. पौधे के आसपास के वातावरण में नमी कम होने के कारण रोगों और कीटों के आने की संभावना भी काफी कम हो जाती है।
5. इस प्रणाली में उर्वरक उपयोग दक्षता भी काफी बढ़ जाती है क्योंकि नियंत्रित जल बहाव के कारण पोषक तत्वों का ह्रास कम होता है।
6. मृदा क्षरण की कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती है।
7. पौधों के जड़ क्षेत्र मे उचित नमी मिलती है और इस सिंचाई प्रणाली द्वारा फसल उत्पादन भी 20–100 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है।

इस सिंचाई प्रणाली में विभिन्न आकार के पाइपों का जाल बनाया जाता है जो मुख्य स्रोत से पानी को पौधे तक पहुँचने पर बूँद के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। मुख्य पाइप स्रोत से खेत तक पानी पहुँचाने का कार्य करता है। इससे जुड़े उपमुख्य पाइप पानी को खेत के अलग अलग हिस्सों तक पहुँचाते हैं। इसके बाद पार्श्विक पाइप प्लॉटों (क्यारियाँ) तक पानी पहुँचाने का कार्य करते हैं। निक्षेपण इकाई का प्रयोग पौधों को पानी देने में किया जाता है।

शेड नेट का प्रयोग

शेड नेट का प्रयोग विभिन्न सामाग्री जैसे जी.आई पाइप, बाँस, लकड़ी आदि की सहायता से एक सुरक्षात्मक संरचना के निर्माण के लिए किया जाता है। इसका नेट पॉलीइथाइलीन रेशे से बना होता है और यह विभिन्न छाया प्रतिशत में उपलब्ध है। यह दिन के समय मे प्रकाश तीव्रता और गर्मी को नियंत्रित कर पौधों की वृद्धि के लिए आंशिक रूप से नियंत्रित वातावरण बनाने मे सहायता करता है। यह बाजार में विभिन्न छाया प्रतिशत जैसे 15, 35, 40, 50, 75, 90 प्रतिशत तक उपलब्ध है। 75 छाया प्रतिशत का अर्थ है कि यह प्रकाश तीव्रता में 75 प्रतिशत की कटौती कर देगा और केवत 25 प्रतिशत प्रकाश के भाग को ही नेट से गुजरने देगा।

प्रत्येक पौधे व प्रत्येक फसल की सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता अलग अलग होती है। अतः शेड नेट द्वारा अनुकूल जलवायु परिस्थितयाँ बनाकर फसल उत्पादकता को बढाया जा सकता है।

शेड नेट लगाने के लाभ

- विभिन्न फसलों के लिए अनुकूल परिस्थियाँ बनाने में मदद करता है।
- फल व सब्जियों की नर्सरी बनाने में प्रयोग होता है।
- गर्मियों में अधिक गर्मी के प्रभाव से पौधों को बचाता है।
- विभिन्न कीटों से सुरक्षा प्रदान करता है।
- प्रतिकूल वातावरण जैसे हवा, बारिश, ठण्ड, ओले, पाला, बर्फ आदि से भी सुरक्षा करता हैं
- सुखाकर तैयार किये जाने वाले विभिन्न कृषि उत्पादों में अच्छी गुणवत्ता प्रदान करता है।
- वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए भी अनुकूल वातावरण बनाने में सहायता करता है।

शेड नेट के प्रकार

- हरा–काला– अवांछनीय पराबैंगनी किरणों में कटौती करता है। छाया प्रदान करने के साथ ड्राइंग (सुखाने) में भी मदद करता है।
- काला–काला– यह शेड नेट हाउस के अन्दर गर्मी को अवशोषित और विकिरणित करता है। नर्सरी बनाते समय इसका उपयोग किया जाता है।
- सफेद–काला– यह शेड नेट हाउस के अन्दर प्रकाश को फैलाता है।
- हरा–हरा– पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को बढ़ाता है। फोलिऐज (पत्तियों–तनों वाला भाग) वाले पौधों की अच्छी उत्पादकता प्रदान करता है।

पोषण वाटिका हेतु फसल चक्र

<table>
<tr><th>फसल</th><th>जनवरी</th><th>फरवरी</th><th>मार्च</th><th>अप्रैल</th><th>मई</th><th>जून</th><th>जुलाई</th><th>अगस्त</th><th>सितम्बर</th><th>अक्टूबर</th><th>नवम्बर</th><th>दिसम्बर</th></tr>
<tr><td>टमाटर</td><td></td><td></td><td colspan="6">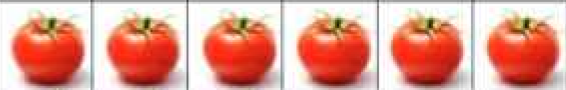</td><td></td><td></td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>शिमला मिर्च</td><td colspan="5">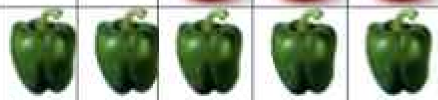</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>बंदगोभी</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td colspan="4"> </td></tr>
<tr><td>आलू</td><td></td><td colspan="2"> </td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>फूलगोभी</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td colspan="5"> </td></tr>
<tr><td>छप्पन कद्दू</td><td></td><td></td><td colspan="2">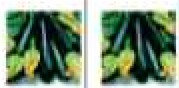</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>गाजर</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td colspan="3">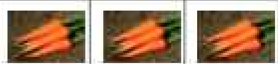</td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>बेबीकार्न</td><td></td><td></td><td></td><td colspan="3"> </td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>लहसुन</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td colspan="2">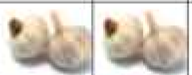</td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>प्याज</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td colspan="2">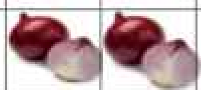</td><td></td><td></td><td></td><td>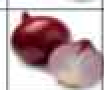</td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>फ्रासबीन</td><td></td><td></td><td colspan="6"> </td><td></td><td></td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>मटर</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td colspan="2"> </td><td></td></tr>
<tr><td>तुरई</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td colspan="2"> </td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>बैंगन</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td colspan="2"> </td><td></td><td></td><td></td><td> </td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>मूली</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td colspan="3"> </td><td></td></tr>
<tr><td>पालक</td><td></td><td> </td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td> </td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>भिण्डी</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td colspan="2"> </td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>धनिया</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td colspan="4">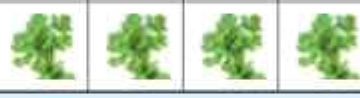</td></tr>
</table>

ICAR-DCFR

उत्तर पश्चिमी पर्वतीय राज्यों हेतु अनुमोदित प्रमुख सब्जी प्रजातियाँ

फसल	प्रमुख सब्जी प्रजातियाँ
मटर	वी.एल. अगेती मटर 7, विवेक मटर 10, विवेक मटर 11, विवेक मटर 12, विवेक मटर 13, विवेक मटर 15, अर्किल, पंत सब्जी मटर 3, आजाद पी 1
मूली	जापानी सफेद, पूसा चेतकी, दूनागिरी लोकल, पूसा हिमानी, व्हाइट इसिकल
प्याज	वी.एल. प्याज 3, पूसा रेड, पटना रेड, ब्राउन स्पेनिश, अर्ली ग्रेनो, पूसा नासिक सफेद
बंदगोभी	गोल्डन एकर, प्राइड ऑफ इण्डिया, पूसा ड्रम हैड, संकर किस्में– वरूण, कृष्णा
फूलगोभी	पूसा स्नोबॉल 1, पूसा स्नोबॉल 2, पूसा स्नोबॉल के1, पूसा स्नोबॉल के25, पंत शुभ्रा, पूसा शुभ्रा
शिमला मिर्च	कैलिफोर्निया वण्डर, वी.एल. शिमला मिर्च 2, वी.एल. शिमला मिर्च 3, वी.एल. शिमला मिर्च हाइब्रिड 1, पूसा दीप्ती, निशांत 1 संकर किस्में– भारत, महाभारत, स्वर्णा, हीरा, इंदिरा, बाम्बी (रेड), ओरेबेले (ओरेबेले)
फ्रासबीन	वी.एल. बौनी बीन 1, वी.एल. बीन 2, कण्टेण्डर, पूसा पार्वती, अर्का कोमल, अर्का अनूप, पंत अनुपमा
भिण्डी	परभनी क्रांति, पूसा सावनी, पूसा मखमली, अर्का अनामिका, वी.आर.ओ. 5
टमाटर	वी.एल. टमाटर 4, वी.एल. टमाटर 5, वी.एल. चेरी टमाटर 1, पूसा रूबी संकर किस्में– मनीषा, नवीन, अविनाश–2, वैशाली,
बैंगन	पंत सम्राट, पंत ऋतुराज, पूसा पर्पल लौंग, इम्प्रूव्ड शालीमार लौंग संकर किस्में– पंत संकर बैंगन–1, पूसा हाइब्रिड–5,9,6
लहसुन	वी.एल. गार्लिक 1, वी.एल. लहसुन 2, एग्रीफाउण्ड पार्वती, यमुना सफेद 3, जी 282

कर्मभूमि की दुनिया में श्रम सभी को करना है....
ईश्वर सिर्फ लकीरें देता है
रंग हमें ही भरना है

भगवत् गीता

बकरियों के लिए प्राकृतिक खेती द्वारा हरे चारे का उत्पादन

मोहम्मद आरिफ, अरविन्द कुमार, रविन्द्र कुमार, गोपाल दास एवं दिनेश कुमार शर्मा
भाकृअनुप–केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, मथुरा (उ०प्र०)

भारत एक कृषि प्रधान देश है एवं हमारे देश की अर्थव्यवस्था कृषि पर निर्भर हैं। यह न केवल हमारी आर्थिक उन्नति की राह को आसान बनाती है अपितु हमारी सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का भी साधन हैं। देश की स्वतंत्रता के बाद एक समय था जब हम अपनी खाद्यान्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहते थे लेकिन हरित क्रांति के दौर में रसायनों ने कृषि में चार चाँद लगा दिए एवं हमारा देश कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भर तो बना ही वर्तमान में हम दूसरे देशों को खाद्यान्न फसलों का निर्यात भी कर रहे हैं। परन्तु बढ़ती आवश्यकता, महत्वाकांक्षा व सीमित भूमि से अधिक उत्पादन के लालच के चलते अंधाधुंध कृषि रसायनों का प्रयोग करना शुरू कर दिया गया। भारतीय नाइट्रोजन ग्रुप की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में नाइट्रोजन प्रदूषण का मुख्य स्रोत कृषि ही हैं। पिछले पांच दशक में हर भारतीय किसान ने औसतन 6,000 कि०ग्रा० से अधिक यूरिया का इस्तेमाल किया हैं। चावल और गेहूं की फसलों में प्रयोग किए गए यूरिया का 33 प्रतिशत ही फसलों द्वारा प्रयोग होता है जबकि 67 प्रतिशत मिट्टी, पानी और पर्यावरण में पहुंचकर उसे प्रदूषित करता हैं। जरूरत से अधिक यूरिया की वजह से वातावरण में नाइट्रेट की मात्रा बढ़ रही हैं। भोजन अथवा जल में नाइट्रेट की ज्यादा मात्रा से कैंसर उत्पन्न होने का खतरा बना रहता हैं। यूरिया सिर्फ अकेला ही नहीं अपितु इसके अलावा भी बहुत सारे ऐसे रसायन हैं जो न केवल मानव जीवन को प्रभावित कर रहे हैं बल्कि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से इनसे पशु–पक्षी व जलीय जीव–जंतु भी सकंट के दौर से गुजर रहे हैं। अत्यधिक रसायनों के प्रयोग ने कृषि को लाभ के स्थान पर हानि का सौदा बना दिया हैं जिससे हमारे देश के 80 प्रतिशत से अधिक छोटे एवं मध्यम श्रेणी के किसानो की आजीविका पर खतरा मंडरा रहा है एवं वे कर्ज के बोझ के तले दबते जा रहे हैं।

अतः वर्तमान परिदृश्य को देखते हुए खेती में रसायन उपयोग को बंद करने एवं कृषि लागत को कम करने के लिए हमें प्राकृतिक खेती की तरफ बढ़ना होगा एवं इसे बढ़ावा देना होगा। शून्य बजट प्राकृतिक खेती, खेती का वह स्वरूप हैं जिसमें किसी भी तरह के रसायन का प्रयोग नहीं किया जाता हैं अपितु यह प्राकृतिक उत्पादों के प्रयोग को बढ़ावा देती हैं। इस प्रकार की खेती में उपयोग में आने वाले सभी संसाधन खेत पर या इसके आसपास स्थानीय रूप से पाए जाने वाले होते हैं। चूंकि इस पद्धति में कोई भी संसाधन बाहर से नहीं खरीदना पड़ता हैं अतः कोई लागत नहीं आती हैं, इसलिए इसे शून्य बजट प्राकृतिक खेती कहा जाता हैं। शून्य बजट प्राकृतिक खेती के चार मुख्य स्तम्भ हैं:

1. जीवामृत

जीवामृत शून्य बजट प्राकृतिक खेती का पहला और महत्वपूर्ण स्तम्भ है। जीवामृत की सहायता से भूमि को पोषक तत्वों की प्राप्ति होती हैं और यह उत्प्रेरक एजेंट की भांति कार्य करता हैं। इससे भूमि में सूक्ष्मजीवों की गतिविधियाँ बढ़ जाती हैं और फसलों का उत्पादन भी बढ़ जाता हैं। जीवामृत के लिए सबसे पहले एक बड़े बर्तन में 200 लीटर पानी लें। इसके बाद पानी में लगभग 10 कि०ग्रा०

गाय का ताजा गोबर, 5 से 10 लीटर गाय का मूत्र, 2 कि०ग्रा० बेसन, 2 कि०ग्रा० गुड़ और एक मुट्ठी खेत की मिट्टी को मिला दें। यह सभी सामग्री मिलाने के बाद इस मिश्रण को 48 घंटों के लिए छाया में रख दें एवं इसके पश्चात् इस मिश्रण का इस्तेमाल करें।

2. बीजामृत

बीजामृत शून्य बजट प्राकृतिक खेती का दूसरा स्तम्भ हैं। इसे तैयार करने के लिए 20 लीटर पानी में 5 लीटर गौमूत्र, 5 कि०ग्रा० गोबर, 50 ग्राम चूना और एक मुट्ठी खेत की मिट्टी को अच्छी तरह मिलाकर 12 घंटे के लिए रखते हैं। बीजामृत से किसी भी फसल के बीजों का उपचार किया जा सकता हैं। बीजों को अच्छे से रगड़ कर बीजामृत लेप चढ़ाएं एवं सुखाकर बुवाई के लिए इस्तेमाल करें। दलहनी फसलों के बीजों के उपचार के लिए बीजों को घोल में डुबाकर निकालें और सुखाएं।

3. पलवार करना (मल्चिग)

मल्चिग शून्य बजट प्राकृतिक खेती का तीसरा स्तम्भ हैं। यह मिट्टी में नमी की मात्रा को बनाए रखने में मदद करता हैं। मल्चिग 3 प्रकार की होती हैं:

मृदा मल्च

कृषि कार्यो के दौरान मिट्टी की ऊपरी सतह को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे, इसके लिए मृदा मल्च का उपयोग किया जाता हैं। यह मिट्टी की जल प्रतिधारण क्षमता को बढ़ावा देता हैं।

स्ट्रॉ मल्च

इसे आमतौर पर पिछली फसलों के अवशेषों से या अन्य सूखे पत्तों से फसल वालें खेत की मिट्टी को ढककर किया जाता हैं। इससे खेत में नमी बनी रहती है एवं जब ये अवशेष विघटित होते हैं तो मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा को बढ़ाते हैं जिससे मृदा की उत्पादकता बढ़ती हैं।

लाइव मल्च (अन्तःफसल और मिश्रित फसलें)

दो या दो से अधिक फसलों की एक साथ एक निश्चित अनुपात में बुवाई करना अन्तः फसलोत्पादन कहलाता हैं। एकबीजपत्री और द्विबीजपत्री चारा फसलों के अन्तः फसलोत्पादन से मिट्टी को सभी आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं और मिट्टी की उत्पादकता में सुधार होता हैं। द्विबीजपत्री समूह की फसलें नाइट्रोजन स्थिर करने एवं एकबीजपत्री समूह की फसलें पोटाश, फॉस्फेट और सल्फर जैसे अन्य तत्वों की मिट्टी में आपूर्ति करने में सहायक हैं।

ICAR-DCFR

4. वाष्प (नमी)

इस अवधारणा के अनुसार पौधों की वृद्धि के लिए अधिक जल की आवश्यकता नही होती हैं और पौधे वाष्प की सहायता से वृद्धि कर सकते हैं। वाष्प एक ऐसी स्थिति होती हैं, जिसमें हवा और जल दोनों के अणु मिट्टी में मौजूद होते हैं और इन दोनों अणुओं की सहायता से पौधे का विकास होता हैं। यह फसल में सिंचाई को कम करने के लिए प्रोत्साहित करता हैं।

हाल ही में केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम द्वारा किसानों, बकरी पालकों एवं अन्य पशु पालकों द्वारा हरे चारे एवं दाने का प्राकृतिक खेती से उत्पादन करने एवं उन्हें जागरूक करने के लिए प्राकृतिक खेती पर एक प्रदर्शन इकाई की स्थापना की गई हैं। इस विधि द्वारा संस्थान में कुछ चारा फसलों का उत्पादन भी किया जा रहा हैं जिसमे ग्रीष्म ऋतु के दौरान ज्वार एवं लोबिया का उत्पादन किया गया। प्राकृतिक खेती के अंतर्गत ज्वार एवं लोबिया चारा फसल में जीवामृत की विभिन्न फॉर्मूलेशन्स एवं इसके छिड़काव समय के अंतराल पर अध्ययन किया गया। अध्ययन में यह पाया गया कि दोनों चारा फसलों में जीवामृत फॉर्मूलेशन्स (200 लीटर पानी + 10 कि०ग्रा० गाय का गोबर + 5 लीटर गौमूत्र + 2 कि०ग्रा० बेसन + 2 कि०ग्रा० गुड़) एवं छिड़काव समय अंतराल (प्रत्येक 15 दिन के अंतराल पर) द्वारा अधिकतम हरे चारे का उत्पादन प्राप्त किया गया।

किसानो एवं बकरी पालकों को प्राकृतिक खेती द्वारा हरे चारे एवं दाने का उत्पादन करने के लिए प्रेरित करने हेतु केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम द्वारा समय–समय पर विभिन्न प्रदर्शनों का आयोजन भी किया जाता है जिसमें इन्हें जीवामृत एवं बीजामृत तैयार करना, मल्चिंग, अन्तः फसलोत्पादन आदि के बारे में बताया एवं समझाया जाता है। साथ ही संस्थान के सर्वाधिक लोकप्रिय वैज्ञानिक बकरी पालन पर राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा भी बकरी पालकों को बकरी पालन के लिए प्राकृतिक चारा खेती को अपनाने के लिए जागरूक किया जा रहा है।

प्राकृतिक खेती द्वारा उगाई गई ज्वार एवं लोबिया की चारा फसलें

ICAR-DCFR

केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान द्वारा किसानो एवं बकरी पालकों के लिए प्राकृतिक खेती पर प्रदर्शनों का आयोजन

निष्कर्ष

केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान द्वारा स्थापित प्राकृतिक खेती प्रदर्शन इकाई किसानों, बकरी पालकों एवं अन्य पशु पालकों को हरे चारे एवं दाने का प्राकृतिक खेती से उत्पादन करने के लिए जागरूक कर रही हैं। साथ ही संस्थान आसपास के ग्रामीण क्षेत्रो में प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए कई प्रदर्शनों का आयोजन भी कर रहा है जिससे कि हमारा कृषि प्रधान देश हानिकारक रसायनों के प्रभाव से बच सके एवं हमारे खेतों की मिट्टी स्वस्थ बनी रहे क्योकि स्वस्थ धरा तो खेत हरा।

विनाशकारी खरपतवार गाजर घास (पार्थेनियम): प्रभाव व नियन्त्रण

पार्थ दास और अभय कुमार गिरि
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

परिचय

प्रकृति में अत्यंत महत्त्वपूर्ण वनस्पतियों के अलावा कुछ वनस्पतियाँ ऐसी भी हैं, जो कि धीरे–धीरे एक अभिशाप का रूप लेती जा रही हैं। बरसात का मौसम शुरू होते ही गाजर के तरह पत्तियों वाली एक वनस्पति काफी तेजी से बढ़ने और फैलने लगती है। इसे वानस्पतिक जगत में पार्थेनीयम हिस्ट्रोफोरस के नाम से जाना जाता है। पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस, एस्टेरिया परिवार में फूलों के पौधे की एक प्रजाति है। इसकी कुछ उल्लेखनीय प्रजातियाँ हैं, जैसे कि Parthenium argentatum तथा P. hysterophorus। यह खरपतवार कम्पोजिटी कुल की होती है और हूबहू गाजर के (Carrot) पौधों जैसी दिखती है। देश के विभिन्न भागों में अलग–अलग नामों जैसे कैरट ग्रास, कांग्रेस घास (Congress grass) और क्षेत्रीय भाषा में सफेद टोपी, चटक चांदणी, गंधी बूटी, सांता मारिया, फीवरफ्यूव, वाइटेटॉप वीड, और अकाल वीड आदि नामों से भी जाना जाता है। यह वर्तमान में विश्व के सात सर्वाधिक हानिकारक पौधों में से एक है तथा इसे मानव एवं पालतू जानवरों के स्वास्थ्य के साथ–साथ सम्पूर्ण पर्यावरण के लिये अत्यधिक हानिकारक माना जा रहा है।

इस घास के पौधे का तना रोयेदार अत्यधिक शाखा युक्त एक वर्षीय शाकीय पौधा है, जिसकी लम्बाई लगभग एक से डेढ मीटर तक हो सकती है। प्रत्येक पौधा 1000 से 50000 अत्यंत सूक्ष्म बीज पैदा करता है, जो शीघ्र ही जमीन पर गिरने के बाद प्रकाश और अंधकार में नमी पाकर अंकुरित हो जाते हैं। यह प्रकाश एवं तापक्रम के प्रति उदासीन होने के कारण पूरे वर्ष भर उगता एवं फलता–फूलता रहता है। यह पौधा 3–4 माह में ही अपना जीवन चक्र पूरा कर लेता है और वर्ष भर उगता और फलता फूलता है। यह हर प्रकार के वातावरण में तेजी से उग जाती है मगर नम और छायादार स्थानों पर अधिक तेजी से उगती है। यह मुख्यतः खाली स्थानों, अनुपयोगी भूमियों, औद्योगिक क्षेत्रों, बगीचों, पार्कों, स्कूलों, आवासी क्षेत्रों, सड़कों तथा रेलवे लाइन के किनारों आदि पर बहुतायत में पाई जाती है। पिछले कुछ वर्षो से इसका प्रकोप सभी प्रकार की खाद्यान्न, फसलों जैसे धान, ज्वार, मक्का, सोयाबीन, मटर तिल, अरंडी, गन्ना, बाजरा, मूंगफली, सब्जियों एवं उद्यान फसलों में भी देखा गया है। इसके बीज अत्यधिक सूक्ष्म होते हैं, जो अपनी दो स्पंजी गद्दियों की मदद से हवा तथा पानी द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से पहुंच जाते हैं।

गाजर घास की बीस प्रजातियां पूरे विश्व में पाई जाती हैं। इस पौधे का कृषि मंत्रालय और भारतीय वन संरक्षण संस्थान के सर्वेक्षण के अनुसार भारत में पहले कोई अस्तित्व नहीं था। अमेरिका, मैक्सिको, वेस्टइंडीज, भारत, चीन, नेपाल, वियतनाम और आस्ट्रेलिया के विभिन्न भागों में फैली खरपतवार का भारत में प्रवेश तीन दशक पूर्व अमेरिका या कनाडा से आयात किये गये गेहूं के साथ हुआ। अल्पकाल में ही लगभग पांच मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र में इसका भीषण प्रकोप हो गया। गाजर घास कन्याकुमारी से लेकर जम्मू–कश्मीर तक अपनी जड़े जमा चुका है। यह खरपतवार जम्मू–कश्मीर, हिमाचल, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, महाराष्ट्र, बिहार, उत्तर–प्रदेश, मध्यप्रदेश, उडीसा, पश्चिमी बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, अरुणाचल प्रदेश और नागालैण्ड के विभिन्न भागों में भयंकर वृद्धि हुई है और इसके प्रभावों की समस्या सामने आ चुकी है।

पशु और मानव पर हानिकारक प्रभाव

गाजर घास केवल फसली पौधों के लिए हानिकारक नहीं है बल्कि मनुष्य और जानवरों के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो रहा है। इसकी पत्तियों के काले छोटे–छोटे रोमों में पाया जाने वाला रासायनिक पदार्थ 'पार्थिनम' मनुष्यों में एलर्जी का मुख्य कारण है। दमा, खाँसी, बुखार

व त्वचा के रोगों का कारण भी यही पदार्थ ही है। गाजर घास के परागकण सांस की बीमारी का भी कारण बनते हैं। गाजरघास से मनुष्यों में त्वचा संबंधी रोग (डरमेटाइटिस), एक्जिमा, एलर्जी, बुखार, दमा आदि जैसी गंभीर बीमारियाँ हो जाती हैं। अत्यधिक प्रभाव होने पर मनुष्य की मृत्यु तक हो सकती है। पशुओं के लिये भी यह घास अत्यन्त हानिकारण सिद्ध हो रही है। इसकी हरियाली के प्रति लालायित होकर पशु इसके करीब आते हैं, परन्तु इसकी गंध से निराश होकर लौट जाते हैं। यदा–कदा घास की कमी होने से जो पशु इसे खाते हैं, उनका दूध कड़वा एवं मात्रा में कम हो जाता है।। गाजरघास के तेजी से फैलने के कारण अन्य उपयोगी वनस्पतियाँ खत्म होने लगती हैं। जैव विविधता के लिए गाजरघास एक बहुत बड़ा खतरा बनती जा रही है। इसके कारण फसलों की उत्पादकता बहुत कम हो जाती है।

पर्यावरण के असंतुलन का खतरा

गाजर घास के पौधे कम प्रकाश–सुग्राही होते हैं तथा इसकी प्रजनन क्षमता अत्यधिक होती है। गाजर घास के एक पौधे से औसतम 650 अंकुरण योग्य बीज प्राप्त होते हैं। जब यह एक स्थान पर जम जाती है, तो अपने आस–पास किसी अन्य पौधे को जमने नहीं देती है। जिसके कारण अनेकों महत्त्वपूर्ण जड़ी–बूटियों और चरागाहों के नष्ट हो जानें की सम्भावना पैदा हो गई है। अनेकों स्थानों पर इसने चरागाहों को पूरी तरह ढक लिया है और खाली पड़े मैदान के मैदान अपने चपेट में ले लिये हैं। यदि यह कहा जाए कि वनस्पति जगत में यह घास एक शोषक के रूप में उभर रही है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। साथ ही, इसके परागकण वायु को दूषित करते हैं तथा जड़ो से स्रावित रासायनिक पदार्थ 'इक्यूडेर' धरती की मिट्टी को दूषित करता है। भूमि–प्रदूषण फैलाने वाला यह पौधा उस मिट्टी की सुरक्षा भी नहीं कर पाता है, जहाँ पर यह उगता है, इसीलिए इसकी पहाड़ो में फैलना बहुत ही हानिकारक है, क्योंकि एक तो स्वयं मिट्टी को बांधता नहीं है, दूसरे इसकी उपस्थिति में अन्य पौधे भी नष्ट हो जाते हैं। वनस्पति विज्ञान में इस प्रक्रिया को "एलिलोपैथी" के नाम से जाना जाता है।

एलिलोपैथी

जब किसी पौधे द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप से वातावरण में विसर्जित अथवा उत्सर्जित पदार्थ अन्य पौधे को प्रभावित अथवा हानि पहुँचाता है, वनस्पति विज्ञान में इस प्रक्रिया को एलिलोपैथी कहा जाता है। अनेक पौधे मृदा अन्य संवर्धन माध्यमों में जड़ों द्वारा अनेक रसायनों का उत्सर्जन अथवा स्त्राव करते हैं। भूमि में पौधों के अवशेषों के सड़ने गलने से भी अनेक कार्बनिक रसायनों का उत्पादन होता है। ये पदार्थ उसी पौधे अथवा अन्य विभिन्न प्रकार के पौधों के वर्धन को उनकी जड़ों को प्रभावित करके परिवर्तित करते हैं। करीब–करीब सभी पौधों में एलिलोपैथी के लिए जिम्मेदार यौगिक होते हैं, जो मुख्यतः पत्तियों, तनों एवं जड़ों में पाये जाते हैं। पौधों की जड़ों से उत्सर्जित होने वाले अथवा पौधों के विभिन्न अंगों के सड़ने से उत्पन्न होने वाले कुछ रसायन स्कोपोलेटिन, सिन्नामिक एसिड, कोमेरिक एसिड, 5–हाइड्रोक्सीनेप्थो क्यूनोक, एबसिन्थिन, 3–एसिटिल–6 मिथाक्सीबेन्जालडिहाइड एवं अनेक फिनोलिक यौगिक, बायलोफोस, अलीलोसोथायोसायनेट, पट्लिन कैफीन, गैलिक एसिड, सोरालेन, फ्लोरिजिन आदि है। मोथा की गांठों के जलीय अर्क को बाजरा, सनई, घान, मक्का, ज्वार, कपास, चना, मूंगफली, तिल, लोबिया के बीजों के अंकुरण एवं उनके नव पादपों के वर्धन को अवरुद्ध करते हैं। पूरे देश में महामारी का रुप ले चुकी गाजरघास की वजह से फसलों की पैदावार में भी 40 फीसदी की कमी आई है। इसमें सेरक्यूटरपीन लैक्टोन नामक विषाक्त पदार्थ पाये जाने से यह फसलों के अंकुरण एवं वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। यही नहीं इसकी जड़े व पराग कण भी सब्जी व फलों के उत्पादन को कम व विकृत पैदावार कर रहे है।

शोध कार्यो से हाल ही में एक नतीजा सामने आया कि पारथेनियम नामक खरपतवार केवल मानव अथवा पशुओं के स्वास्थ्य पर ही बुरा असर नहीं डाल रहा है बल्कि इसका

सर्वाधिक प्रभाव दलहनी फसलों पर पड़ रहा है। कृषि वैज्ञानिक की जांच के दौरान पाया गया है कि गाजरघास के पौधे दलहनी फसलों जड़ ग्रंथियों के विकास को प्रभावित करता है तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं की क्रियाशीलता को भी कम कर देता है। बीच उग आते हैं तो दलहनी पौधों की जड़ों की गांठों में पाये जाने वाले बैक्टीरिया काम करना बंद कर देते हैं। नतीजन दलहनी पौधों की उत्पादन क्षमता स्वतः घट जाती है। इसके अलावा दलहनी पौधों की जड़ों में पाये जाने वाले बैक्टीरिया काम करना बंद कर देते हैं तो खेत की उर्वरता बढने की संभावना भी समाप्त हो जाती है। दलहनी पौधों की जड़ों में पाये जाने वाले बैक्टीरिया वायुमंडल से नाइट्रोजन का अवशोषण करने में सक्षम होते हैं इसलिए मिट्टी की उर्वर क्षमता भी बढ़ाते हैं। अब अगर ये बैक्टीरिया काम करना बंद कर देंगे तो किसानों द्वारा अपनाया जाने वाला फसल चक्र प्रक्रम भी अर्थहीन हो जाएगा और दलहनी फसलों का उत्पादन घटेगा।

गाजर घास का नियंत्रण

इसकी रोकथाम के लिए मैनुअल, वैज्ञानिक, वैधानिक, यांत्रिक, रासायनिक एवं जैविक विधियों का उपयोग किया जाता है। यदि इसे जड़ से उखाड़कर आग लगा दी जाए, तो शायद किसी सीमा तक इससे छुटकारा मिल सकता है। इसे हाथ से न छुआ जाए, अन्यथा एलर्जी एवं चर्म रोग होने का खतरा हो सकता है। इसके पौधों को जोर से न काटा जाए, अन्यथा इसके बीज और ज्यादा दूर तक फैल सकते हैं। कैसिया सीरेसिया नामक पौधा भी गाजर घास का नियंत्रण प्रभावी ढंग से करता है। अतः इसके बीजों को उन स्थानों पर बोया जाता है, जो स्थान पार्थेनियम से अत्यधिक प्रभावित हैं। चॉर माह के कैसिया सीरेसिया के पौधे गाजर घास के पौधों की संख्या 93 प्रतिशत तक कमी कर देते हैं। एक शोध–कार्य के परिणामों के अनुसार यदि गाजर घास के बीजों को कैसिरा सीरेसिया के सम्पूर्ण पौधे के निष्कर्ष से उपचारित किया जाए, तो बीजों के अंकुरण का प्रतिशत 87 प्रतिशत तक कम हो जाता है तथा बीजांकुर की वृद्धि भी अत्यधिक प्रभावित होती है। गैर कृषि क्षेत्रों में इसके नियंत्रण के लिए शाकनाशी रसायन एट्राजिन का प्रयोग फूल आने से पूर्व 1.5 कि. ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर पर उपयोग किया जाना चाहिए। खाली जमीन में गाजरघास की किसी भी अवस्था में ग्लाइफोसेट (Glyphosate) 1.0–1.5 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर 500 लीटर पानी के साथ स्प्रे करें, या 2,4–डी (1 þ) नाम के रसायनों का प्रयोग करें। सोडियम क्लोराइड 15þ तथा अमोनियम सल्फेट 20þ का घोल घास के फूल आने तक कभी भी 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर खेतों में एक समान रूप से उस पौधे के ऊपर इस पानी का स्प्रे कर पौधे को पूरी तरह गीला कर देना चाहिए। फसलों में गाजरघास को रसायनिक विधि द्वारा नियंत्रित करने के लिए खरपतवार वैज्ञानिक की सलाह अवश्य लें। मेक्सिकन बीटल (जाइग्रोग्रामा बाइकोलोराटा) नामक कीट को वर्षा ऋतु में गाजरघास पर छोड़ना चाहिए। जगह–जगह संगोष्ठियाँ कर लोगों को गाजरघास के दुष्प्रभाव एवं नियंत्रण के बारे में जानकारी देकर उन्हें जागरूक करें।

गाजर घास का उपयोग

वैसे तो यह अधिक हानिकारक घास या खरपतवार है, मगर सही प्रबंधन से इसका नियंत्रण और उपयोग किया जा सकता है, जैसे गाजर घास के पौधे में अनेक प्रकार के औषधीय गुण भी पाये जाते हैं जिनका प्रयोग कीटनाशकों (Insecticids), जीवाणुनाशक एवं खरपतवारनाशक दवाइयों के निर्माण में किया जा सकता है। बॉयोगैस (Biogas) निर्माण में भी गोबर के साथ इसका प्रयोग किया जा सकता है। पलवार के रूप में इसका जमीन पर आवरण बनाकर प्रयोग करने से दूसरे खरपतवार की वृद्धि में कमी आती है, साथ ही मिट्टी में अपरदन (Soil erosion) एवं पोषक तत्व खत्म होने को भी नियंत्रित किया जा सकता है।

जैविक खाद उत्पादन

गाजर घास से कम्पोस्ट एवं वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए इसका प्रयोग करें। इसके लिए थोड़ी ऊंचाई वाली भूमि ही जरूरत पड़ती है।

यहां पानी का जमाव नहीं होना चाहिए। लगभाग 10 फीट लंबे, छह फीट चौड़े और तीन फीट गहरे आकार के गड्ढे में गाजर घास एवं अन्य उपादान के उपयोग से चॉर से पॉच माह में कंपोस्ट तैयार की जा सकती है। कंपोस्ट बनाने पर गाजर घास की जीवित अवस्था में पाया जाने वाला विषाक्त रसायन पार्थेनिन का पूर्णतया विघटन हो जाता है। गाजर घास जैविक खाद बनने के बाद पर्यावरण का अच्छा मित्र बन जाता है। बहुत कम लागत में भूमि की शक्ति को बढ़ाता है। इसे फसलों में इस्तेमाल कर और बेचकर अधिक आय प्राप्त कर सकते हैं। गर्म मौसम में अच्छी कंपोस्ट तैयार होने के लिए चॉर से पॉच माह का समय लगता है, जबकि ठंडे मौसम में अधिक समय लग सकता है।

गाजर घास से जैविक खाद बनाकर पर्यावरण की सुरक्षा की जा सकती है। किसान इसके जरिए अपनी आय भी बढ़ा सकते हैं। इससे बनी कंपोस्ट में मुख्य पोषक तत्वों की मात्रा, गोबर खाद से दोगुनी तथा केंचुआ खाद के बराबर होती है। गाजर घास के उपयोग से कंपोस्ट का निर्माण जैविक खेती का एक अच्छा विकल्प साबित हो सकता है। अक्सर कृषकों के बीच पार्थेनियम घास से कंपोस्ट निर्माण पर प्रशिक्षण कृषि विज्ञान केंद्र में होता रहता है। किसानों को इसके प्रति जागरूक भी किया जाता है।

पार्थेनियम के औषधीय और संबंधित उपयोग

दुनिया में विभिन्न देशों में पार्थेनियम का अलग–अलग तरीकों से उपयोग किया जाता रहा है। ये उपयोग संभवतः संघटक एलीलोकेमिकल्स और अन्य घटकों में मौजूद होने के कारण होते हैं। पहले घटकों का ज्ञान की परवाह किए बिना किया गया था उपयोग। वर्तमान में अनुसंधान के माध्यम से देखा गया है कि इस पौधे में विभिन्न औषधीय गुण हैं।

पार्थेनियम के औषधीय और संबंधित उपयोगः (टावर्स एवं सहयोगी, 1977)

देश/स्थान	प्रयोग
बारबाडोस	फूल और पत्तियों का उपयोग सूजन, एक्जिमा और त्वचा पर चकत्ते के इलाज के लिए किया जाता है।
क्यूबा	एक औषधीय पौधे के रूप में माना जाता है, जिसका उपयोग मुख्य रूप से बुखार में किया जाता है।
ग्वाडेलोप	बुखार, दांत और जोड़ों का दर्द में प्रयोग किया जाता है।
ग्वाडेलोप और मार्टीनिक	महिला रोगों के इलाज के रूप में उपयोग किया जाता है।
गुयाना	त्वचा के फटने में उपयोग किया जाता है।
जमैका	स्नान, जलसेक, घावों के उपचार, सर्दी के लिए काढ़े की तैयारी में उपयोग किया जाता है।
त्रिनिदाद	त्वचा की सफाई के लिए स्नान की तैयारी में अन्य जड़ी बूटियों के साथ प्रयोग किया जाता है।
मेक्सिको	सिरदर्द और अल्सर घाव के खिलाफ एक उपाय के रूप में पेशीय गठिया में एक एनाल्जेसिक के रूप में प्रयोग किया जाता है।
यूएस वर्जिन द्वीप	एनाल्जेसिक, मांसपेशियों में खिंचाव, वर्मीफ्यूज और दिल की परेशानी में उपयोग किया जाता है।
मोंटगोमरी, अलास्का (अमेरिका)	त्वचा के लिए वृद्ध लोगों द्वारा टॉनिक के रूप में उपयोग प्रभावोत्पादक होने का दावा किया।
सिक्किम, भारत	एक औषधीय पौधे के रूप में माना जाता है (बेनेट 1985)।

अध्ययन से पता चलता है कि पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस एल का सक्रिय अंश, फूलों का अर्क मधुमेह मेलेटस के लिए मानकीकृत फाइटोमेडिसिन विकसित करने के लिए बहुत आशाजनक है।

निष्कर्ष

आज आवश्यकता इस बात की है कि, विभिन्न संस्थाओं के वैज्ञानिक एकत्रित होकर इसे समूल नष्ट करने का कोई ऐसा हल निकालें जो आर्थिक दृष्टि से भी अनुकूल हो, या इसमें से कोई दुर्लभ पदार्थ निकाले जो की सम्मोहित रूप से मनुष्य, पशु और वातावरण के लिए लाभदायक हो। इस हानिकारक घास की वृद्धि और उत्पादन को पर्यावरण हितैषी तरीके से कैसे प्रतिबंधित किया जा सकता है, विशेष रूप से पादप क्षेत्र से जुड़े वैज्ञानिकों को आनुवंशिक स्तर पर कठोर शोध का प्रयास करना चाहिए। पार्थेनीयम में एलिलोपैथी का गुण होता है जिसके कारण यह अपने आस–पास अन्य पौधों को उगने नहीं देता है, अतः इस दिशा में भी शोध कार्य किया जाना जाहिए कि क्या इसके निष्कर्ष या किसी भाग को शाकनाशी की तरह उपयोग किया जा सकता है।

फसलों और व्यक्तियों के लिए हानिकारक सिद्ध हो रही गाजरघास नियंत्रण के लिए केवल वैज्ञानिकों को ही नहीं बल्कि किसानों और जनता को भी एक अभियान के दृष्टिकोण से कार्य करना होगा। राष्ट्रीय खरपतवार का दर्जा प्राप्त गाजरघास का समूल उन्मूलन जल्द ही नहीं किया गया तो खाद्य उत्पादन और कम होने के साथ ही यह महामारी का रुप लेगा।

मूर्ख को जवाब मत दो
ज्ञानी को ठुकराओ मत
अच्छे को जाने मत दो
बुरे को अपनाओ मत

महात्मा गाँधी

लाभदायक एवं सरल व्यवसायः बकरी पालन

अजय सिंह गोदारा, गुरदीप सिंह एवं प्रज्ञा भदौरिया
कृषि विज्ञान केन्द्र, मानसा
भाकृअनुप– कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसन्धान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)

भारत वर्ष एक कृषि प्रधान, विकासशील और बहुसंख्य देश है। इसके सामने कुछ चुनौतियाँ है उनमें मुख्य रूप से बेरोजगारी, पोषण सम्बन्धी कमी और खादय असुरक्षा है। इन समस्याओं के पिछे मुख्य कारण देश की बढती जनसंख्या, जो राष्ट्र के लिये बड़ा खतरा है। इन समस्याओं को दूर करने के लिए भारत के पास एक अच्छा पशुधन है और कृषि सकल घरेलू उत्पाद का एक चौथाई योगदान पशुधन के द्वारा दिया जाता है। पशुधन की प्रजातियों में, बकरी का एक महतवपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसे समाज के आर्थिक रूप से कमज़ोर और माध्यम वर्ग के किसानों द्वारा पाला जाता है। अन्य प्रजातिओं की अपेक्षा बकरी में तेज़ी से बढ़ने की क्षमता होती है, इसके साथ–साथ कुछ निहित गुण जैसे कि कम–लागत, साधारण आवास, जल्दी परिपक्वता व कम पीडी अन्तराल, सामान्य रख–रखाव तथा पालन–पोषण के साथ बकरी पालन सम्भव है। यह किसानों के लिए एक लाभदायक व्यवसाय है और मिश्रित खेती में इसको सम्मिलित किया जा सकता है। इससे होने वाली आमदनी समाज के युवा वर्ग और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को अपनी और आकर्षित कर रही है।

बकरी पालन का राष्ट्रीय महत्व

भारत जैव–विविधता की दृष्टि से एक सम्पन्न राष्ट्र है। 20वीं पशुगणना के अनुसार भारत देश में बकरियों के कुल संख्या 148.88 मिलियन है और पंजाब में इनकी संख्या लगभग 3.5 लाख (347949) है। 2012–19 की अंतर–गणना के दौरान बकरियों की संख्या में 10.14 प्रतिशत के वृद्धि हुई है। बकरियों की संख्या 2012 में 135.17 मिलियन थी, जो 2019 में बढकर 116.76 मिलियन हो गई। कुल पशुधन में बकरियों का योगदान लगभग 27.7% है। ग्रामीण क्षेत्र में बकरियों की संख्या 10.35 प्रतिशत बड़ी, जबकि शहरी शेत्र में 5.78 प्रतिशत कीहीबढ़ोतरी हुई है द्य भारत में वर्ष 2018–19 दौरान बकरियों के द्वारा 6098.73 हज़ार टन दूध उत्पादन और 97190.24 हज़ार टन मीट/मांस का उत्पादन हुआ तथा भारत में पशु उत्पादन का कुल निर्यात 26383.99 करोड़ रूपये रहा, इसमें भेड़/बकरी मांस का 646.69 करोड़ रूपये का निर्यात शामिल है।

पंजाब में बकरी पालन के लाभ

पंजाब देश का कृषि आधारित राज्य है, जिसमे डेयरी पशुओं के साथ–साथ छोटे जुगाली करने वाले पशुओं की भी अर्थव्यवस्था में महतवपूर्ण भूमिका है। पंजाब का वातावरण बीटल (अमृतसरी) नस्ल की बकरी पालने के लिए अनुकूल है। बीटल बकरी का शरीर काले या भूरे रंग का या काले–भूरे रंग पर सफेद धब्बे वाला होता है। इसके कान लम्बे, चौड़े तथा लटके हुए और नाक उभरा हुआ होता है द्य यह दोहरे उद्देश्य वाली नस्ल है तथा स्टाल फीडिग (Stall feeding) और अर्ध इंटेनसीव प्रणाली (Semi & intensive system) दोनों के लिए उपयुक्त है।यह दूध ,मॉंस और चमडा उत्पादन के लिए पाली जाती हैं। यह एक ब्यात की अवधि में औसतन 150-200 लीटर दूध देती है। बकरी अपने आसपास उपलब्ध छोटे पेड़, कंटीली छाड़ियाँ, कठोर वातावरण तथा कम उपजाऊ ज़मीन पर जहाँ अन्य फसल कम होती है, वहां भी अच्छी तरह पोषण कर सकती है। बकरी पालन किसानों के लिए एक लाभदायक व्यवसाय है इसे मिश्रित खेती क साथ आसानी से किया जा सकता है। पंजाब में बकरी पालन के प्रमुख लाभ है:

1. पंजाब का वातावरण बकरी पालन के लिए अनुकूल है और यहाँ हरा चारा एवं चारागाह ज़मीन आसानी से उपलब्ध हैं।
2. बकरी एक छोटा पशु और विनम्र स्वभाव होने के कारण संभालने में आसन है।

3. बकरी पालन का काम कम लागत से शुरू किया जा सकता है।
4. पंजाब में बकरी के मीट/मांस की मांग दिन प्रतिदिन बढती जा रही है और अभी तक इसमें गिरावट नहीं देखी गई है।
5. बकरी दूध, मांस, चमड़ा और खाद उत्पादन का बहुत अच्छा साधन है।
6. अन्य पशुओं की तुलना में आवास की आवश्यकता कम होती है।
7. बकरियों में उच्च उत्पादन दर और प्रौढ़ आयु 10–12 महीनों में आ जाती है। गर्भकाल 5 महीने का होता है। आमतौर पर दो बच्चों को जन्म देती है।
8. विश्व में बकरी मांस सबसे ज्यादा खाया जाता है क्योंकि इसमें लगभग 21 प्रतिशत प्रोटीन, 3.5 प्रतिशत बसा और पर्याप्त मात्र में खनिज एंव विटामिन्स पाए जाते है।
9. बकरी मांस के उपयोग में किसी प्रकार का धार्मिक प्रतिबन्ध नहीं है।
10. नर और मादा दोनों का विपणन मूल्य समान होता है।
11. ईद के त्योहार के दौरान बकरी की मांग बहुत बढ़ जाती है।
12. बकरी को चलता फिरता दूध ए.टी.एम (ATM) भी कहते है, क्योंकि इससे कभी भी कहीं भी आसानी से दूध निकाल सकते है।
13. बकरी का दूध बच्चों और बीमार व्यक्तियों के लिए अच्छा मन जाता है क्योंकि इसमें वसा के छोटे व कम और अन्य तत्व ज्यादा पाए जाते है।
14. बकरी पालन व्यवसाय ग्रामीण के साथ–साथ शहरी युवा के लिए रोज़गार पैदा करने के रूप में उभर रहा है।

बकरियों का प्रबंधन

1. आवास प्रबन्ध

बकरियों को गर्मी–सर्दी, बारिश और जंगली जानवरों से बचाने के लिए उचित आवास की आवश्यकता होती हैद्य बकरियों का आवास गृहवातावरण के अनुसार होने चाहिए। आवास के लिए सस्ती और स्थानीय रूप से उपलब्ध सामान का उपयोग करना चाहिए। व्यस्क नर, मादा और छोटे मेमनों के लिए क्रमशः 20 वर्ग फुट, 13–15 वर्ग फुट और 10 वर्ग फुट बंद स्थान (covered area) और 40 वर्ग फुट, 25–30 वर्ग फुट तथा 10–14 वर्ग फुट क्रमशः खुले स्थान की आवश्यकता होती है द्य वयस्क बकरे को झुण्ड से अलग रखना चाहिए द्य बकरे के लिए आवास के अन्दर लकड़ी के डंडों और फटियों से 1.5 × 3.0 फुट ऊँचा मचान बनाना चाहिए। मचान बनाते समय इस बात का ध्यान रखे की फटियों के बीच का अंतर (फासला) कम रखें, जिस से बकरी के पैर अन्दर ना फसे। यदि संभव हो तो बकरी आवास का निर्माण घर की दीवार या चारदीवारी के साथ करे। पीछे वाली दीवार की उंचाई 8 फुट तथा आगे वाली दीवार 6 फुट ऊँची बनायें। आवास हवादार और साफ़ होना चाहिए। फर्श रेतीला होना चाहिए, ताकि सफाई का काम आसानी से हो सके। मेमनों को ठण्ड और पाले से बचाने का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। बकरी पालन चारागाह और उपलब्ध जगह के अनुसार बंद आवास, खुला आवास यानि मुक्त आवास प्रणाली या आवर्तन्शील चारागाह प्रणाली में किया जा सकता है।

2. पोषण प्रबन्ध

यदि हम खुले आवास यानी मुक्त आवास प्रणाली में बकरी पालन करना चाहते है, तो बकरियों को चराने के लिए झाड़िया और चारागाह उपलब्ध होना अत्यन्त आवश्यक है, ताकि बकरी अपना जीवनयापन आसानी से कर सकें। इस प्रणाली से हम कम लागत द्वारा अच्छा मुनाफा कमा सकते है। अगर चारागाह का स्थान उपलब्ध नही है तो बंद आवास प्रणाली (Intensive rearing system) को अपनाना चाहिए। नवजात मेमनों को 3–5 दिन तक खीस तथा उसके बाद दूध पिलाना चाहिए। 15 दिनों के बाद हरा – चारा खिलाना शुरु करे। एक साधारण बकरी व बकरे को आयु के अनुसार 250–500 ग्राम दाना मिश्रण तथा 4–5 किलोग्राम हरा चारा प्रतिदिन देना चाहिए। साफ व ताजा पानी दिन में 3–4 बार पिलाना चाहिए। विभिन्न उम्र के मेमनों को दाना मिश्रण, सूखा व हरा चारा नीचे दर्शायी गई सारणी के अनुसार दें।

सारणी 1. विभिन्न उम्र के मेमनों के लिए दाना मिश्रण, सूखा व हरा चारा

उम्र	वजन (किलोग्राम)	दूध (मि.ली. प्रतिदिन)	दाना मिश्रण (ग्राम, प्रतिदिन)	हरा चारा (ग्राम,प्रतिदिन)
जन्म से 5 दिन	2.0–2.5	400 (खीस)	–	–
6–15 दिन	2.5–3.5	400	–	–
16–30 दिन	3.5–4.0	500	थोड़ा सा	थोड़ा सा
31–60 दिन	4.0–6.0	600	50–150	50–150
61–75 दिन	6.0–7.0	400	100–150	250–300
76–90 दिन	7.0–8.0	200	150–200	250–300

3. स्वास्थ्य प्रबंधन

बकरी पालक को प्रतिदिन सुबह–शाम अपनी बकरियों की देखभाल अच्छी तरह करनी चाहिए। स्वस्थ बकरी की आँखें चमत्कार नाक गीली तथा चमड़ी मुलायम होती है। समय पर चारा व दाना खाती है, दिन में 3–4 बार पानी पी लेती है, घुमती– फिरती तथा फुर्तीली रहती है। इसके विपरीत बीमार बकरी सुस्त तथा एक स्थान पर बैठी रहती है। चारा–दाना कम खाती है जो बकरी बीमार व सुस्त लगे उसे तुरंत झुण्ड से अलग करके उचित इलाज करवाएं। पशु–चिकित्सक की सलाह से समय–समय पर टीकाकरण और कृमिनाशक दवाई बकरी को देनी चाहिए।

4. प्रजनन प्रबंधन

प्रजनन के उद्देश्य के लिए स्वस्थ बकरी और बकरे का चैन करें, जिसमें नसल के अनुरूप शारिरिक विशेषताएं हो। स्वस्थ बकरी को 12–14 महीने की आयु में पहली बार गाभिन करवाना चाहिए। बकरे की आयु कम से कम 18–24 महीने होनी चाहिए। प्रजनन से पहले बकरी व बकरे का टीकाकरण आवश्य कराएँ। बकरी के गर्मी में आने पर दूध उत्पादन में कमी, बेचैन व इधर उधर भागना, योनी द्वार का लाल होना व योनी से साफ़ पतला लेस्दार द्रव निकलना और दूसरी बकरियों पर चड़ना आदि लक्षण दिखाती है। बकरियों में मदकाल 12–36 घंटे तक होता है। यदि बकरी सुबह के समय गर्मी में आये तो उसी दिन शाम को और यदि शाम को गर्मी मी आये तो अगले दिन सुबह गर्भाधान करवाएं। गर्भवती बकरी को व्यस्क बकरे के साथ नहीं रखना चाहिए। यदि बकरी परिपक्व है और गर्मी में नहीं आ रही हो तो पशु चिकित्सक से इलाज करवाएं तथा व्यस्क बकरे को बकरी के साथ रखें। 20–25 प्रजनन योग्य बकरियों के साथ एक व्यस्क बकरा रखना चाहिए। बच्चा न देने वाली बकरी को झुण्ड से निकाल दे। इस प्रकार बकरी पालक अपनी बकरियों की निगरानी रख कर अच्छा मुनाफा कम सकते हैं।

***"जो व्यक्ति जितना अधिक शांत होता है
वह उतनी ही गहराई से अपनी बुद्धि का प्रयोग करता है"***

–आचार्य चाणक्य

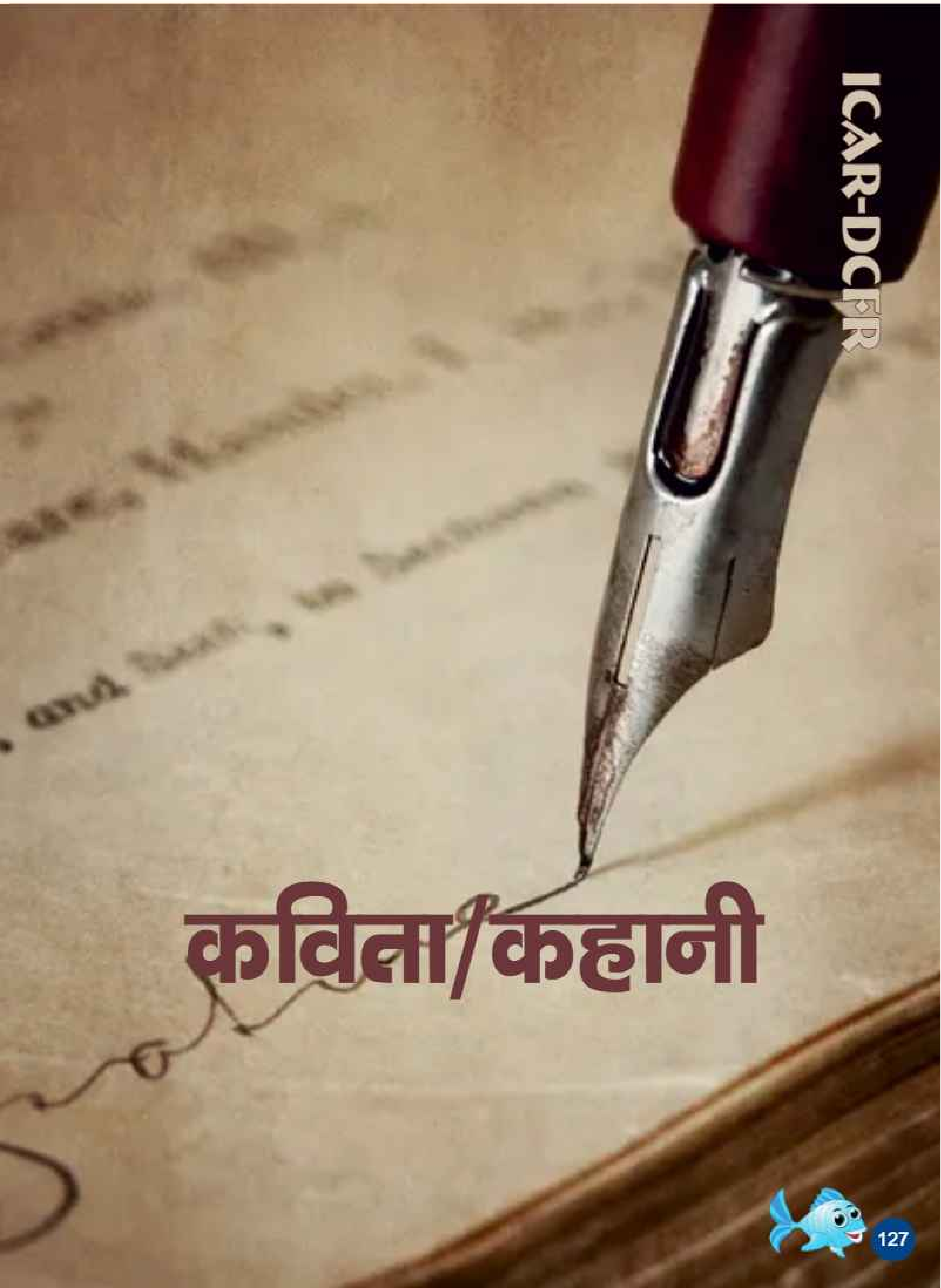

कविता/कहानी

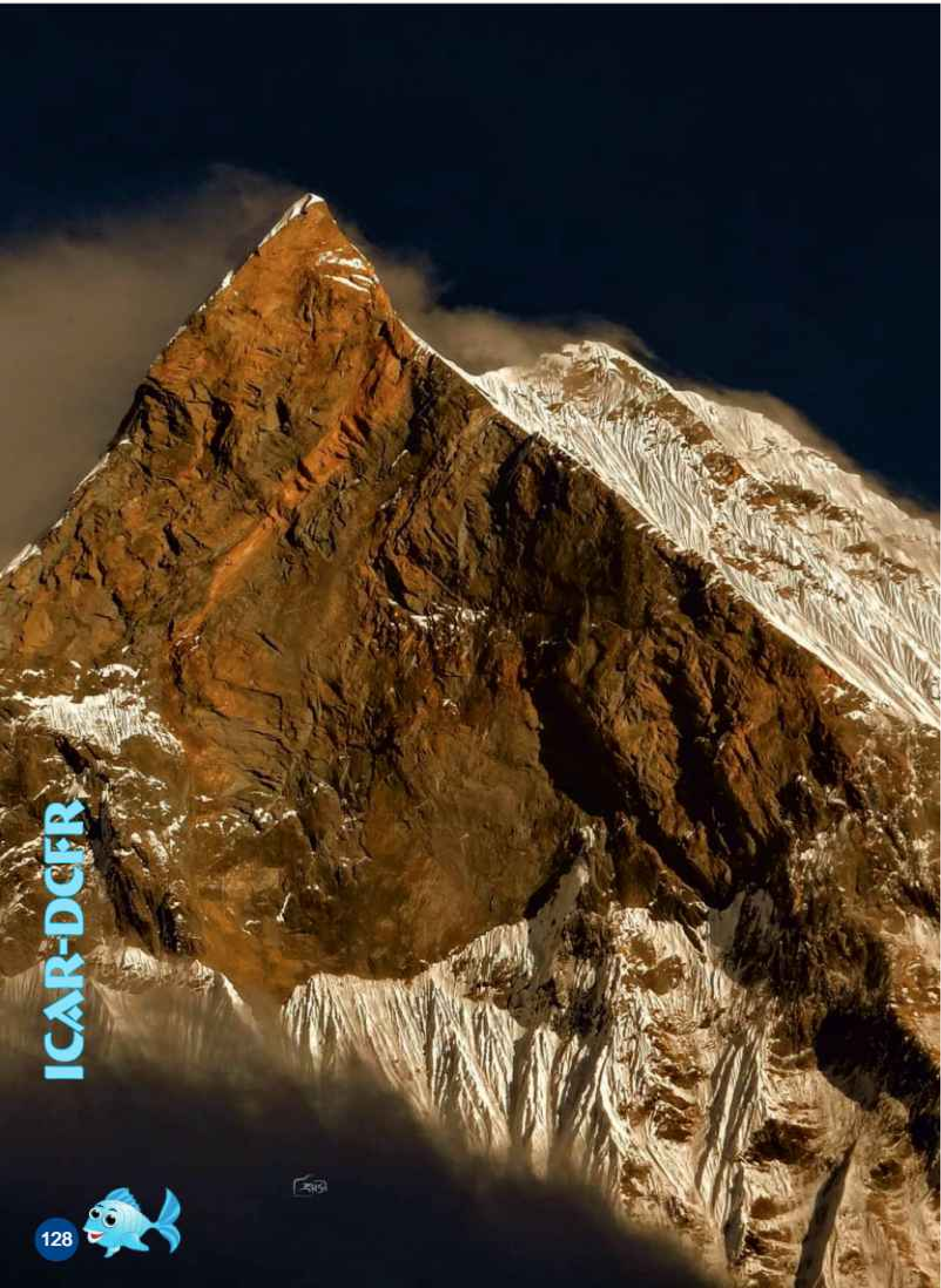

नारी, अबला बेचारी

शारदा मालरा
मुख्य उद्यान अधिकारी कार्यालय, नैनीताल

नारी, अबला–बेचारी
दुनिया के इस बाजार में,
बिकने को तैयार है।
पुरूष प्रधान समाज
बोली बोल रहा है,
चन्द सिक्कों के तराजू में
नारी को तोल रहा है,
सिक्कों का पलड़ा भारी है,
क्योंकि नारी,अबला है–बेचारी है।
चेहरे की बढ़ती सलवटें
उम्र का एहसास दिला रही हैं,
फिर भी पुरूष का साथ
यही आस दिला रही है।
पुरूष ने भी साथ निभाया,
एक कुँवारी को माँ बनाया
वह तो ब्रह्मचारी है,
चरित्रहीन तो नारी है
क्योंकि नारी अबला है–बेचारी है।
काश! समाज के आदर्श–पुरूष देवता,
उसका हर रूप देख पाते
नारी पत्नी है, बहिन है और माँ भी
इस पर तनिक सोच पाते
तो,क्यों होती चरित्रहीन नारी?
पाप की अधिकारी,
लेकिन समाज तो पुरूषों का है,
सब कुछ खोकर भी वह हारी है
क्योंकि नारी अबला है–बेचारी है।

निंदा से घबराकर अपने लक्ष्य को ना छोड़ें
क्योंकि लक्ष्य मिलते ही निंदा करने वालों की
राय बदल जाती है

स्वेट मार्टिन

सुनो क्या कहता बहता पानी

कृष्णा काला
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय,भीमताल

क्या कभी सोचा है तुम ने,
शीतल जल जो प्यास बुझाता,
सदा जो बहता कल–कल कर के,
जग में यह जल कहाँ से आता।
सुनो ! क्या कहता बहता पानी,
जग ने मेरी चाह ना जानी,
करता कोई दूषित मुझ को,
राहों की मेरी सुनों कहानी,
सुनो ! क्या कहता बहता पानी।
बूँदों बूँदों में रचा बसा मैं,
स्वच्छ था, अविरल कल–कल बहता,
उद्‌गम हुआ था अमृत जैसा,
क्यों जग मुझे अब दूषित कहता ?
सोचा था मैने जग में बहकर,
जीवों की प्यास बुझाऊंगा,
उद्‌गम हुआ था शीतल निर्मल,
मंजिल भी ऐसी पाऊंगा।
तब ना रंग ना संग में कोई,
राहें पथरीली पर खुशियॉ बोयी,
एक चिंतन में बहता रहता,
बस लोगों से कहता रहता।
स्वच्छ रहे ना जल–जीवन में,
जग प्यासा रह जायेगा,
मनुष्य की करनी के ही कारण,
हर जीव बहुत पछतायेगा।
आरम्भ था मेरा मीठे जल से,
सागर में मिला तब खारा पानी,
मैला दूषित मध्य में इनके,
राहों की ऐसी मेरी कहानी,
सुनो! क्या कहता बहता पानी।

उम्मीद के साथ शुरू हुआ प्रत्येक दिन अनुभव के साथ ही खत्म होता है।

–महात्मा बुद्ध

ICAR-DCFR

मन्नू बाबू की शादी

सुभाष चंदर
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

शादी के बाज़ार में मन्नू बाबू की ब्रांड वैल्यू ज़ीरो के आसपास थी। कुछ साल अगर ऐसे ही और निकल जाते तो यह वैल्यू माइनस में भी जा सकती थी। मतलब हालात यहां तक मज़ेदार हो सकते थे कि मन्नू मोटा दहेज़ देकर भी घोड़ी पर बैठना चाहते तो घोड़ी उन्हें लतिया देती। वैसे देखा जाए तो मन्नू में ऐसी कोई कमी थी भी ना। उनके पास दो आंखें ,एक नाक, दो कान, दो जोड़ी साबुत हाथ पैर वगैरह थे। यानी शरीर के पार्ट्स की गिनती पूरी थी। रंग भी गेंहू को टक्कर देता था। लंबाई वाले कॉलम में भी नंबर ठीक–ठाक थे। सिगरेट, शराब, गुटखा का भी शौक ना था। कमाई भी अच्छी खासी थी। यहां तक कि उनके बायोडाटा में गर्लफ्रेंड का कॉलम तक खाली था। किस्सा को ताह यह कि इन लक्षणों के हिसाब से मन्नू बाबू मोस्ट एलिजिबल बैचलर टाइप के बंदे होने चाहिए थे पर ऐसा नहीं था। उनके ब्याह की संभावना ना के बराबर थीं तो इसका सिर्फ एक कारण था कि उन्हें किसी खास दिन, खास समय पर, किसी खास लड़की से इश्क हो जाता था। ऐसा इश्क जो उनके द्वारा अटेंड की जाने वाली हर शादी में होता था। मतलब मन्नू बाबू को शादी के मौकों पर सजी धजी दुल्हन से प्यार कर बैठने की बीमारी थी। वह जिस भी शादी में जाते थे, उन्हें वहां की दुल्हन से प्यार हो जाता था। सोलह श्रृंगार किए दुल्हन जैसे ही जयमाला के लिए आती, उसे देखते ही उनके कलेजे में इतने घाव हो जाते कि दिल के टुकड़े जहां तहां गिरते, लुढ़कते पुढ़कते हुए गाते थे–तेरे बिना जी ना सकेंगे सनम।

जहां जवान बाराती लोग जयमाला के मौके पर दुल्हन की सहेलियों के साथ आंख मटक्का करते, वहीं मन्नू सीधे दुल्हन पर कंसंट्रेट करते। जयमाला के समय से वह मुग्ध भाव से दुल्हन के दर्शन करते, उसे टकटकी बांधकर देखते, फिर साथवालों के जबरदस्ती करने पर खाना खाने का इंटरवल लेते और फिर फेरों के टाइम पर फिर से अपने काम पर जुट जाते। फेरों के समय पर मामला देखा देखी से शुरू होता और मुग्ध दर्शन के भावों से घूरा घूरी में बदल जाता। यह काम तब तक चलता था जब तक कि दुल्हन के घरवाले उनके इस पुनीत कार्य में व्यवधान नहीं डाल देते। वे कुछ देर तो उन्हें बर्दाश्त करते, फिर उन्हें इशारे से समझाने की कोशिश करते पर मन्नू बाबू उन पर ध्यान न देकर पूरी तल्लीनता से अपने काम में जुटे रहते। तब तक दुल्हन पक्ष वालों का सब्र उन्हें दगा दे जाता। आखिर में मन्नू गलियाकर, धकियाकर या फिर मार पीटकर, पूरी इज्ज़त के साथ घर से भगा दिए जाते। कई बार तो ऐसा भी होता था कि यह शुभ कार्य खुद बारात पक्ष को करना पड़ता था।

एक बार तो दूल्हे और उसके परिवारवालों को भी इस कार्यक्रम को संपन्न करना पड़ा था।जबकि दूल्हे महाशय उनके बचपन के दोस्त थे। कई बार तो हालात इतने शानदार हो गए थे कि दुल्हन तक ने अपनी चप्पलों से उनकी सेवा कर दी थी। एक बार तो मोहतरमा दुल्हन महोदया उनकी घूराघूरी से इतनी प्रसन्न हो गईं थीं कि उन्होंने घोषणा कर दी थी कि जब तक मन्नू बाबू को फेरों से भगाया नहीं जाएगा तब तक वह शादी नहीं करेंगी। दूल्हे राजा यानी उनके बचपन के दोस्त गुन्नू ने उन्हें समझाया भी पर मन्नू हटने को तैयार नहीं हुए थे सो गुन्नू को अपनी बचपन की दोस्ती ताक पर रखकर पहले उन्हें गलियाना और फिर जुतियाना पड़ा था। इसके बाद दोनों पक्षों के लोग उन्हें उनकी बजरबट्टू जैसी आंखों समेत बाहर फेंक आए थे। तब जाकर दुल्हन ने शादी करने की हामी भरी थी वरना गुन्नू बेचारे कुंआरे ही रह जाते।सच कहें तो मन्नू बाबू के बायोडाटा में ऐसी कई उपलब्धियां भरी पड़ी थीं पर उन्हें उन पर कोई खास गर्व नहीं था, वह उपलब्धियां गिनने में नहीं ,कर्म करने में विश्वास रखते थे।इसीलिए उनकी अपने इलाके में

जबरदस्त प्रसिद्धि थी। इसी का कमाल था कि लोगों ने उन्हें अपनी शादी में बुलाना तक बंद कर दिया था। यहाँ तक कि उनके सगे बड़े भाई तक उन्हें अपनी शादी में नहीं ले गए थे। मज़बूरी में मन्नू बाबू को अपनी भाभी को सुबह, दोपहर, शाम तीनों टाइम बेनागा घूरना पड़ा था। यह कार्यक्रम तब तक चला था जब तक कि वह नई दुल्हन से एक बच्चे की अम्मा नहीं बन गई थीं। इतने शानदार अतीत वाले मन्नू बाबू का ब्याह होना लगभग असंभव हो चला था।कारण कि जैसे ही कहीं उनकी शादी की बात चलती उनके कारनामों की कहानियां वहां पहले पहुंच जाती। मन्नू अब खुद भी थोड़े निराश हो चले थे। जबकि शुरू में उनकी इच्छा थी कि वह किसी ऐसी लड़की से शादी करें जो विश्व सुंदरी टाइप की हो, बाद के कुछ वर्षों में जब उनकी मार्केट वैल्यू के शेयर गिरने लगे थे तो उन्होंने अपना लेवल गिराकर मामला भारत सुंदरी तक कर लिया था और अब जबकि मामला माइनस वाला था तब भी वह शहर सुंदरी से कम पर तैयार न थे।

उनकी मंशा थी कि वह ऐसी दुल्हन लाएं कि जिसे देखकर यार दोस्तों ,नाते रिश्तेदारों के कलेजे पर,जलन के मारे दो–दो मीटर के सांप लोट जाएं, पर मामला जम नहीं पा रहा था। दूसरा उनका पसंदीदा शगल दुल्हन से एक तरफा प्यार करना था मतलब घूराघूरी करना था। पर वह भी नहीं हो पा रहा था। यहां तक कि उनके पास शादी का कार्ड आए भी महीनों हो चले थे। इसी कारण वह काफी बेचैन थे। थोड़ी आशा वीनू के ब्याह की जरूर थी कि वह उन्हें अपने ब्याह में जरूर बुलाएंगे।वैसे भी वीनू उनकी रिश्ते की बुआ के लड़के थे, उनकी शादी में जाने का का मन्नू को पूरा हक था। पर मन्नू के मन में फिर भी घबराहट थी कि कहीं ऐसा न हो कि कोई वीनू के कान भर दे और उनके कारनामों से डरकर वह भी न बुलायें। सो मन्नू ने सीधे वीनू से शादी में ले जाने की बाबत बात की, बीनू ने स्वाभाविक रूप से ना नुकुर की। उनके पुराने कारनामों की याद दिलाई। उनके चक्कर में कुंआरे रह जाने का डर दिखाया। पर मन्नू नहीं माने, उन्होंने ज्यादा खुशामद की तो वीनू ने उन्हें विद्या रानी से लेकर माता रानी तक सब की बारी बारी से कसम खिलाई कि वह अपनी हरकतों से बाज आएंगे और किसी भी कीमत पर वीनू की होने वाली दुल्हन को नहीं घूरेंगे।

मन्नू बाबू ने बेबसी के पानी के साथ सारी कसमें निगल लीं। तय हो गया कि मन्नू शादी में जाएंगे पर घूरघूरी की कोई हरकत नहीं करेंगे। इस के बाद वीनू तो चले गए पर मन्नू शादी के दिन के इंतजार के काम में लग गए। शादी वाले दिन मन्नू तैयार होकर बारात में पहुंच गए। वीनू से सामना हुआ तो उन्होंने एक बार फिर अपनी शर्तें दुहरा दी।मन्नू ने बेमन से हामी भर दी और बड़ी उत्सुकता के साथ जयमाला के टाइम का इंतजार करने लगे।पर यह क्या।लड़की वालों ने कह दिया कि उनके यहां फेरों से पहले लड़की दिखाने का रिवाज़ नहीं है सो जयमाला नहीं होगी। अब तो बारातियों को सांप सूंघ गया। दूल्हे राजा यानी वीनू बाबू बुरा मान गए, जवान बारातियों के उत्साह पर पानी फिर गया।यही तो मौका था दुल्हन की सहेलियों से नैना लड़ाने का ,भविष्य की कहानियां सेट करने का। सब मारा गया। परेशान तो सब थे पर इन सबसे ज्यादा परेशान मन्नू बाबू थे।

दूल्हे से ज्यादा तो वह उत्सुक थे दुल्हन को देखने को। भला क्या क्या सपने नहीं सजाए थे कि आज दुल्हन को खूब जी भर कर घूरेंगे। जयमाल से घूरना शुरू करेंगे और फिर फेरों तक घूरते ही रहेंगे, खाने का इंटरवल तक नहीं लेंगे। पिछली सारी कसर निकाल लेंगे।।पर ये तो लफड़ा हो गया। वह तो भभक गए।उन्होंने वीनू से बात की, बात क्या की उन्हें जितना हो सका, उतना समझाया, उससे ज्यादा भड़काया। वीनू अड़ गए, पर लड़की वाले नहीं माने। उन्होंने खूब आंय बांय शांय की। वीनू भी नहीं माने। उनके न मानने में जाहिर है कि मन्नू बाबू का बड़ा हाथ रहा। उन्होंने हाथों को नचा–नचाकर, पैरों को मेंढक की तरह उछाल उछालकर और आंखों को मटका–मटका कर वीनू के सामने जयमाला के पक्ष में जो दलीलें

पेश कीं ,उनसे वीनू इतने ज्यादा प्रभावित हो गए कि उन्होंने घोषणा कर दी कि अगर जयमाला नहीं हुई तो वह शादी नहीं करेंगे यानी नो जयमाला,नो मैरिज। अब तो लड़की वाले घबरा गए।उन्हें मज़बूरी में जयमाला को मंजूरी देनी पड़ी। अब जाकर वीनू और उनसे ज्यादा मन्नू बाबू को चैन पड़ा। वे दोनों पूरी लगन के साथ दुल्हन के दर्शन के इंतजार के काम में जुट गए। इंतजार की घड़ियां खतम होने में कुल जमा तीन घंटे लगे। इन तीन घंटों में वीनू की बेचैनी ने तो ढोलक बजाई ही ,मन्नू की घबराहट ने भी तब तक दर्जनों मजीरे बजा डाले।

यह कार्यक्रम तब तक चला जब तक कि दुल्हन आ नहीं गई, पर यह क्या। दुल्हन तो लंबा घूंघट किए थी। भरी सर्दी में मन्नू के अरमानों पर फ्रिज का पानी पड़ गया। भला घूंघट में छिपी दुल्हन किस काम की? ना उसे घूरा जा सके, ना उस पर मोहित हुआ जा सके, ना उसे अपनी निजी दुल्हन बनाने की फैंटेसी को हवा दी जा सके। उधर वीनू भी परेशानी की गैया को रोटी खिला रहे थे। वह तो होनेवाली दुल्हन की फोटो लिए बैठे थे कि उससे दुल्हन के होठों के पास के तिल और गालों के गड्ढों का मिलान करेंगे। उसकी नशीली सी मुस्कान से सीधे साक्षात्कार करेंगे। यहां तो अरमानों की सारी भैंसें पानी में चली गई थीं।उन्होंने भिनककर मन्नू की ओर देखा। मन्नू पहले ही पिनापिनाए हुए थे। बस दोनों में सैना बैनी हुई। मन्नू ने वीनू के हालात का जायज़ा लिया।

इसके बाद नए सिरे से वीनू और उसके घरवालों के कान भरने शुरू कर दिए। नतीज़ा कि वीनू एक बार फिर भड़क गए, दुल्हन के घरवालों ने खूब मनाया। उसके चाचा हाथ जोड़कर बोले," आपके कहने पर हमने जयमाला पर लड़की को बुला लिया, अपनी परंपरा तोड़ दी,पर शादी से पहले हम आपको लड़की का मुंह नहीं दिखा सकते। हमारी कुलदेवी नाराज़ हो जाएंगी। एक बार नाराज़ हुई थीं तो सारे मर्दों की मूंछें और औरतों की चुटिया गायब हो गई थीं। अब फिर ऐसा जुलम क्यों कराते हैं।" यह सुनकर वीनू तो चुप हो गए पर मन्नू को कल कहां? वह तो एकदम भभक गए, बोले– "ज्यादा बहाने मत बनाइए। अगर ऐसा हुआ तो हमारे कुलदेवता के मंदिर में चलिएगा, हमारे कुलदेवता बहुत शक्तिशाली है साब घरातियों की मूंछें और चोटियां वापस ला देंगे।" अब तो चाचा समेत सभी बाराती– घराती भौचक्के रह गए।अब भला लड़की वालों की कुलदेवी की बात मानी जाएगी तो लड़के वालों के कुल देवता को भी पूरा आदर क्यों न दिया जाएगा ? मामला काफी गंभीर टाइप हो लिया था। खूब चिल्ल पों मची थी। उधर वीनू के अम्मा बाबूजी इस सोच में पड़ गए कि मन्नू उनके ऐसे कौन से कुलदेवता को जानते हैं जो लोगो की उड़ी हुई मूंछें और चोटियां वापस लाने का काम भी करते हैं। वह सोचते ही रहे, उधर मन्नू घरातियों के बहानों को अपने तर्कों की तलवार से काटते रहे। हालात इतने मजेदार हो गए कि सारे घराती एक तरफ हो गए और मन्नू एक तरफ।

जब काफी देर तक यही सब चलता रहा और कोई फैसला नहीं निकला तो मन्नू भिनक गए। पहले वह अपनी कतरनी सी ज़ुबान को लेकर वीनू की अम्मा यानी अपनी बुआ के कानों तक पहुंचे, उन्हें न जाने क्या पट्टी पढ़ाई कि वे भभक गईं। बारात वापस ले जाने का शोर मचाने लगी। इसके बाद यही काम मन्नू ने वीनू की बड़ी बहन के साथ किया। थोड़ी देर में मामले का दही सही से जम गया। पहले घरवाले उसके बाद बाकी बारातियों को बारात वापस ले जाने का दौरा पड़ गया। सीधा एजेंडा था कि या तो दुल्हन का घूंघट हटवाओ वरना बारात की वापसी झेलो। अब तो लड़की वालों की मज़बूरी हो गई। दुल्हन को घूंघट हटाना पड़ा। उसके घूंघट हटते ही सब चौंक गए। लड़की के चेहरे पर मेकअप की इतनी मोटी परतें चढ़ी थीं कि उसके रंग का अंदाज़ा लगाना मुश्किल था। बस ऊपरी टीम टाम से इतना ही पता चल रहा था कि गालों पर कुछ ठोस गड्ढे थे जिन्हें मेकअप के सीमेंट से भरा गया था।

ऑख नाक के बारे में भी निश्चित तौर पर

कुछ नहीं कहा जा सकता था क्योंकि मेहंदी रचे एक हाथ को इतने करीने से एक आंख पर रखा गया था कि नाक को भी छिपने का मौका मिल गया था। यह दृश्य देखकर मन्नू की हालत तो जैसी थी, वैसी थी ही। वीनू भी भनभना रहे थे, उन्होंने दुल्हन के फोटो का, दुल्हन का जितना भी चेहरा उपलब्ध था, उससे मिलान कराया पर मामला गधे के सर के सींगों वाला निकला। वीनू के दिमाग़ में शक के कीड़े कबड्डी खेलने लगे।लगा कि मामला कुछ गड़बड़ तो जरूर है। यह लड़की वह तो नहीं लग रही थी जिसका फोटो दिखाया गया था। जरूर दुल्हन बदली गई है। उन्होंने दुल्हन के हाथों पर नजर डाली वहां भी मेकअप की ठोस परतें जमा थीं। यकायक उन्हें कुछ याद आया तो वह एकदम नीचे झुक गए, लोग चौंके कि वीनू दुल्हन के पैर क्यों छूने जा रहे हैं।पर वीनू तो पैरों का निरीक्षण कर रहे थे। मेकअप मैन गलती से पैरों का मेकअप करना भूल गया था। दुल्हन के पैर ऐसे ही थे जैसे घनघोर सांवली लड़की के होने चाहिए थे।वीनू का मन खट्टा हो गया। उन्होंने मन्नू से बात की जो चुपचाप दुल्हन में सौंदर्य खोजने की कोशिशों में उसे टकटकी बंधे देखे जा रहे थे।वीनू की कानाफूसी से उनका ध्यान भंग हुआ।

उन्होंने ध्यान से वीनू की बात सुनी फिर उन्हें सांवले रंग की महत्ता पर प्रवचन दिया, जीवन भर कुंआरे रह जाने के नुकसान गिनाए नतीज़ा कि वीनू बेमन से राज़ी हो गए। उन्होंने रंग से कम्प्रोमाइज करने की ठान ली। पर आंखों वाला मामला अब भी संदेहास्पद था। फोटो में तो मोटी मोटी नशीली सी आंखें थीं। आंखें ठीक होती तो आगे सोचा जा सकता था पर पूरा नेत्र दर्शन तो तभी हो सकता था कि जब दुल्हन महोदया अपनी आंख से हाथ हटाती। मन्नू खुद दुल्हन के पूरे चेहरे के दर्शन के अभिलाषी थे सो उन्होंने फिर से वीनू के साथ कुछ कानाफूसी की।। वीनू तन गए। कड़ककर बोले, "आप लोग बहुत तंग कर रहे हैं।पहले तो जयमाला के लिए आयं बाय की, बड़ी मुश्किल में दुल्हन आई तो उसका घूंघट करा दिया। घूंघट हटा तो चेहरे पर हाथ रखा दिया।आप लोग चाहते क्या हैं। दुल्हन ने आंख पर हाथ क्यों रखा हुआ है?"

इस पर लड़की की अम्मा बोली, "जी, आप लोग गलत समझ रहे हैं। दरअसल बात यह है कि लड़के की जयमाला की जिद के कारण हमारी लड़की बहुत दुखी हुई थी। रोते रोते उसकी आंखें सूज गई थीं। इसलिए उसने आंख पर हाथ रखा हुआ है।" अपनी जान में उसने बहुत समझदारी की बात की थी पर दूल्हे राजा यानी वीनू माने तब ना। उन्होंने दुल्हन का एक बार फिर निरीक्षण किया, देखा तो दिखने वाली आंख पर सूजन के कोई चिह्न ना थे। उन्होंने फिर सवाल किया," क्यों जी, अगर रोते रोते आंखें सूजी हैं तो सिर्फ एक ही आंख क्यों सूजी है, दूसरी ने सूजने की तकलीफ़ क्यों ना उठाई।" इस सवाल का जवाब दुल्हन की बड़ी बहन ने दिया। हाथ नचा नचाकर कर बोली," हद है जी, आप लोग तो बहुत ही शक्की मिज़ाज हैं। अरे, हमारी लड़की की दोनों आंखें सूजी थीं।पर उसे इतना अच्छा पति और ससुराल मिल रहा है। इसके कारण वाह खुश भी तो थी बस इसी खुशी में एक आंख ठीक हो गई।" लड़की की बहन की बात सतयुग में होती तो पूरी जेनुइन मानी जाती पर यह तो कलयुग था और उसमें भी दूल्हा जो था वो वीनू जैसे चंट छोकरे थे, वह भला कैसे मान जाते। सो वीनू बिगड़ गए उन्होंने मन्नू से कुछ कानाफूसी की और उनसे दुल्हन की आंखों से हाथ हटवाने की प्रार्थना की। मन्नू पूरे प्रेमिल भाव के साथ दुल्हन के सामने उपस्थित हुए और उनसे आंखें दिखाने की प्रार्थना की। दुल्हन उनके प्रेमिल अनुरोध को अस्वीकार नहीं कर पाई। उसने अपनी आंख से हाथ हटा लिया।अब तो मन्नू और वीनू क्या सभी दर्शक चकाचौंध रह गए। दुल्हन के पास दूसरी आंख भी थी और खासी मजबूत थी क्योंकि सफेद पत्थर की बनी हुई थी। मन्नू तो इस पत्थर की आंख में भी खूबसूरती तलाशने के काम में जुट गए।पर वीनू इतने भले आदमी ना निकले ,उन्होंने हल्ला कर दिया कि वह किसी भी हालत में यह शादी नहीं करेंगे।

लड़की वालों ने उन्हें धोखा दिया है, लड़की का फोटो दूसरा भेजा और शादी के लिए लड़की दूसरी भेज दी। रंग रूप से लेकर पत्थर की आंख तक हर मामला धोखाधड़ी का है। वीनू की देखादेखी, उनके रिश्तेदार, फिर बाकी बराती भी हल्ला मचाने में अपनी जुबानों का योगदान देने लगे।कुछ ही देर में विवाह स्थल युद्धस्थल की छटा देने लगा।लड़के वाले बारात वापस ले जाने को आमादा थे तो लड़की वाले किसी भी तरह शादी करने को। इधर यह महाभारत चल रहा था उधर अर्जुन रूपी मन्नू बाबू मछली की आंख यानी दुल्हन पर नजरों के तीर चलाए जा रहे थे। उनकी पूरी कोशिश थी कि वह दुल्हन के मेकअप के पीछे छिपी सुंदरता और इकलौती आंख में नशीलेपन को खोज डालें। पर पता नहीं क्या था कि इस बार वह अपनी कोशिशों में सफल नहीं हो पा रहे थे।

इसी बीच किसी ने मन्नू का नाम पुकारा तो उनकी तंद्रा टूट गई। देखा तो सारी बारात वापस जाने को खड़ी थी। मन्नू भौचक्के रह गए। उन्होंने नए सिरे से मामला समझा फिर उन्होंने वीनू को समझाया कि ऐसे किसी की लड़की का दिल तोड़ना ठीक नहीं है। उन्हें बरात वापस लेकर नहीं जाना चाहिए।इसी लड़की से शादी कर लेनी चाहिए। "यह सुनकर घराती और खुद दुल्हन तो प्रसन्न भए। पर वीनू को उनकी बात कतई पसंद नहीं आई। वह उन पर भड़क गए। इस पर मन्नू उन्हें शादी टूटने के खतरे गिनाने लगे, साथ ही वह सुंदर बीवी के नुकसान और बदसूरत बीवी के लाभ भी बताने लगे।अब तो वीनू के तन बदन में आग सुलग गई। भड़क कर बोले, "ऐसा है तो तुम ही इस लड़की से शादी क्यों नहीं कर लेते। वैसे भी तुम्हारी शादी तो अब होने वाली है नहीं।"

उनके इतना कहते ही वीनू के अम्मा बाबा से लेकर कई बाराती तक यही राग अलापने लगे। ये बाराती बारातियों वही लोग थे जिनकी शादियों में मन्नू उनकी दुल्हनों के साथ घूरा घूरी कर चुके थे। यहां तक कि मन्नू के सगे बड़े भाई तक इस भीड़ में शामिल थे ,जिनकी बारात मन्नू की ताका ताकी की वजह वापस आते आते बची थी। लोगों के घेराव से मन्नू तो अब फंस लिए थे। उन्होंने खूब आना कानी की पर लोग भी अपना पिछला हिसाब चुकाने को आमादा थे। उन्हें भला ऐसे कैसे छोड़ देते।वीनू को भी बचने का एक ही उपाय मन्नू की शादी के रूप में सूझ रहा था, उनकी तो मज़बूरी थी। सो जब उन्होंने मन्नू को पीछे हटते देखा तो बोले, "क्यों जी, अभी तक तो तुम्हे दुल्हन बहुत पसंद थी, उसको घूर घूर कर देख रहे थे, अब क्या हो गया, अब शादी के लिए हां क्यों नही भरते? मन्नू मिमियाए, "वो तो मैं ऐसे ही देख रहा था। मेरी तो आदत है, मैं तो हर दुल्हन को ऐसे ही देखता हूं।" वीनू को गाड़ी पटरी से उतरती लगी तो वह बोले, "अच्छा, ये बताओ, तुम्हे यह लड़की पसंद है या नहीं? मन्नू ने अबकी बार दूल्हे की दृष्टि से दुल्हन का निरीक्षण किया।

उसके चेहरे से लेकर उसके हाथ पैरों तक तक कैट स्कैन किया। उसकी आंखों की तरफ एक बार और गौर से देखा। पर सारे निरीक्षण ने उन्हें यही बताया कि मामला ठीक ना है। लड़की ने यानी दुल्हन ने उन्हें चुगद की तरह खुद को ताड़ते पाया तो उसे उन पर प्यार उमड़ आया। वह बोल उठी, "क्यों जी अभी तक तो तुम मुझे टुकुर टुकुर देखे जा रहे थे, अब बोलते क्यों नहीं, मैं तुम्हें पसंद हूं ना? अब मन्नू क्या जवाब देते, उन्हें उगलते बना ना निगलते। उन्होंने मरे से मन से मन से कहा, हां पसंद तो हो पर ...। "अभी वह बात पूरी कर भी नहीं पाए थे कि लड़की के बाप ने ऊंचे स्वर में घोषणा कर दी कि लड़के को लड़की पसंद है, वह शादी के लिए तैयार हैं। "यह सुनते ही हल्ला मच गया। मन्नू खूब चीखे–चिल्लाए। विवाह स्थल से भागने की कोशिश भी की पर सफल नहीं हो पाए। लोगों ने भागने नहीं दिया। इन लोगों में घरातियों से ज्यादा, मन्नू के यार दोस्त,रिश्तेदार शामिल थे जिन्होंने उन्हें फेरे होने तक पकड़कर रखा। इस प्रकार मन्नू बाबू शादी शुदा की पदवी को प्राप्त भए।

भगवान जैसा घर तुमने मन्नू का बसाया, वैसा ही सारे दुश्मनों का बसाना।

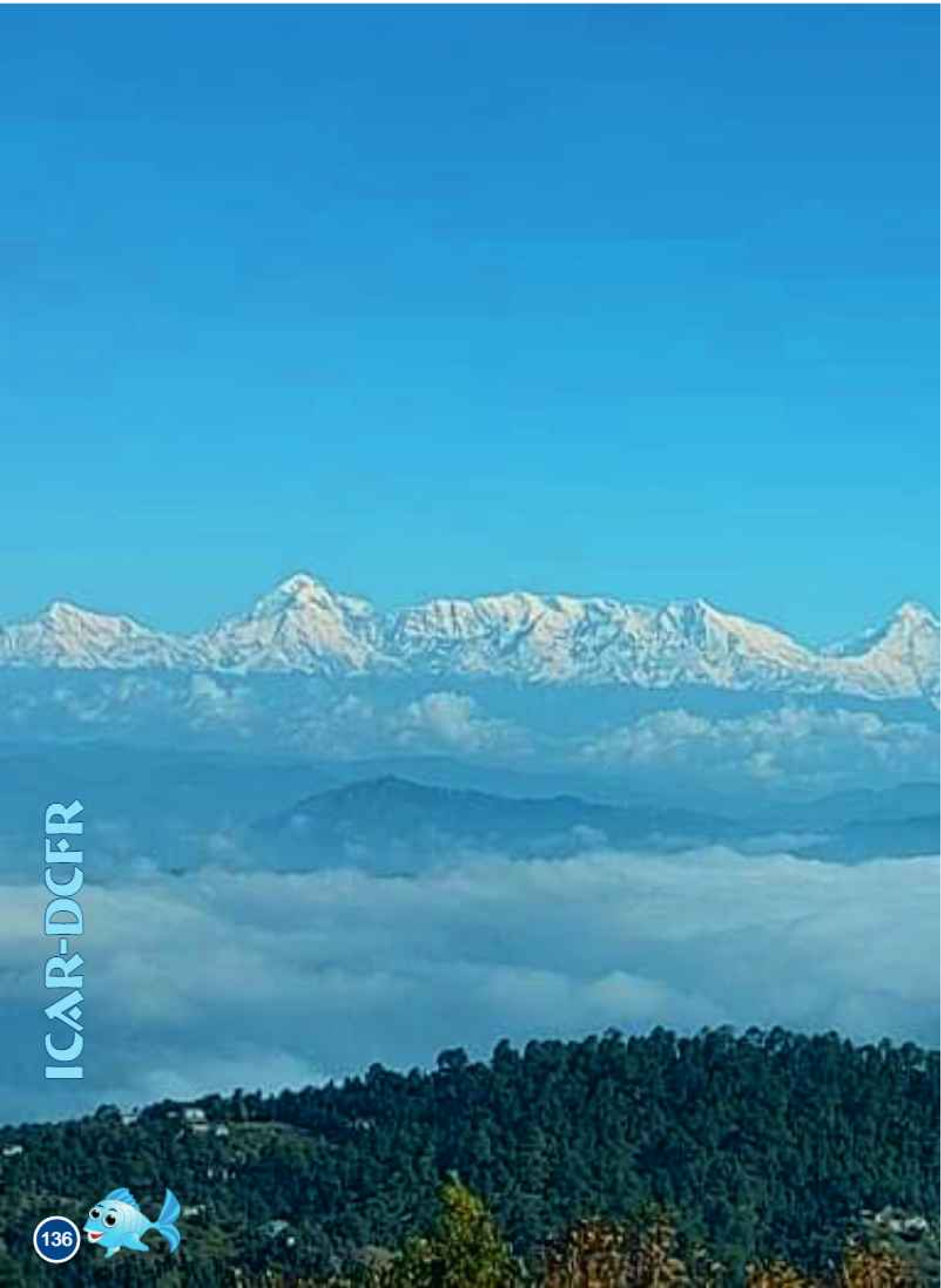

अन्य

सूर्य मन्दिर: मार्तण्ड

मनोज कुमार जोशी
श्रीनगर मण्डल, जम्मू

प्रसिद्ध सूर्य मंदिर मार्तण्ड जम्मू कश्मीर राज्य के अनंतनाग जिले में मार्तड नामक स्थान पर स्थित है। इसके अतिरिक्त इस जगह को खीरबल, महन (मार्तण्ड का अपभ्रंश) और रणवीरपुर नाम से जाना जाता है। यह स्थान श्रीनगर से 70 किमी. दूर (पहलगाम) अमरनाथ यात्रा को जाने वाले मार्ग पर पड़ता है। यहाँ से जिला मुख्यालय अनंतनाग 10 किमी0 दूर है। मार्तड संस्कृत भाषा में सूर्य के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होता है। संस्कृत शब्द मृत और अंड को मिलाकर मार्तण्ड बना है,जिसका अर्थ है जो मृत अंडे से उत्पन्न हुआ है। मार्तण्ड महात्मय में वर्णित पौराणिक कथा के अनुसार कश्यप ऋषि की पत्नि अदिति ने एक मृत अर्थात् जीव विहीन अंडे से सूर्यदेव को जन्म दिया था जो अदिति की तेरहवीं संतान थे और विष्णु के सूर्यावतार में मार्तण्ड के रूप में प्रतिष्ठित हुये। नीलमत पुराण जिसमें कश्मीर के इतिहास का वर्णन है उसमें इस स्थान को मार्तण्डतीर्थ कहा गया है।

इस मंदिर का निर्माण कर्कोट राजवंश के महाप्रतापी राजा ललितादित्य मुक्तापीड जिनका शासन काल 724 ई से 760 ई तक रहा था। उनके शासन काल में इस मंदिर का निर्माण करवाया गया था। प्रसिद्ध कश्मीरी इतिहासकार कवि कल्हण रचित ग्रन्थ राजतरंगिणी में भी इसका उल्लेख है। उसके अनुसार लोहार वंश के प्रथम शासक कलश ने मार्तण्ड मंदिर में प्रतिष्ठित ताम्र निर्मित सूर्य प्रतिमा को खंडित कर दिया था। सूर्य की इस प्रतिमा के रूप करे ताम्रस्वामित कहते थे। इसके पश्चात राजा कलश अत्यंत बीमार पड़ गया तो उसने अपने जीवन के अंतिम समय में मार्तण्ड तीर्थ की मात्रा को और सूर्य की प्रतिमा का ध्वंस करने के उपरांत तथा भॆयकर रूप से रूग्ण होने को सूर्यदेव का प्रकोप माना तथा अपने को सूर्यदेव

के प्रकोप से रक्षा एवं दीर्घायु कामना के लिये सूर्यदेव की स्वर्ण प्रतिमा की पुनः स्थापना मार्तड मंदिर में की। इसकी स्थापना के कुछ दिन उपरांत प्रागंण में ही सूर्यदेव के चरणों में राजा कलश ने अपने प्राण त्याग किये। राजा कलश का पुत्र हर्ष (1089 ई–1101 ई) राज्य का उत्तरधिकारी नियुक्त हुआ। कल्हण कृत राजतंरिगिणी में उसका वर्णन अत्यन्त क्रूर शासक के रूप में है। उसने अपने शासन काल में मार्तड के सूर्य मंदिर को छोड़कर अपनी राजधानी रणस्वामिन स्थित एक भी मंदिर नहीं छोड़ा जिसकी प्रतिमा न लूटी गयी हो। मार्तड के सूर्य मंदिर में चौदहवी (14वी) शती के अंत तक विधि विधान से पूजा अर्चना सम्पन्न होती रही।

मुस्लिम शासक सुल्तान सिकंदर (1389–1413 ई0) के द्वारा मार्तण्ड मंदिर को विध्वंश कर दिया गया। प्रसिद्व इतिहासकार जोनराजा अपने वर्णन में लिखता है कि मुस्लिम शासक सिकंदर का सेनापति जो धर्म परिवर्तन कर मुस्लिम बन गया था उसने कोई भी मंदिर को तब तक नहीं छोड़ा जब तक कि वह पूर्ण रूप से ध्वस्त न हो गया। जोनराज यह भी उल्लेख करता है कि सुल्तान जैनुल आबदीन(1420–1470 ई0) ने मार्तण्डरेश में रसीले गन्नों की खेती करवाई। कल्हण के बाद प्रज्ञा भट्ट और शुक्र ने अपनी चर्तुथ राजतरंगिणी में सुल्तान फतह शाह से लेकर मुगल बादशाह अकबर की कश्मीर विजय का विवरण दिया है। उसके अनुसार मार्तण्ड के तलहटी वाले भाग में सुल्तान मोहम्मद शाह के शासन काल (1533 ई0) के अंतिम चरण में उसके तथा कासगर के सुल्तान सईद खान के मध्य युद्व हुआ था। कासगर की फौज का सेनापति बाबर का चचेरा भाई हैदर दुबलट ने किया था। उसने अपनी किताब तारीख–ए–रसीदी में लिखा है कि यहॉ की जनसंख्या का एक वर्ग अभी भी सूर्यदेव की पूजा करते हैं और यह सम्प्रदाय अपने को शमसुद्दीन कहता है। प्रज्ञा भट्ट और शुक्र ने अपनी चर्तुथ राजतंरिगणी में बादशाह अकबर की मार्तड यात्रा का विवरण दिया है। अकबर ने बाह्मणों को मोतियो से सुसज्जित गायें दान में दे दी थी। 'आइनेअकबरी' में लिखा है कि मार्तण्ड एक छोटा सा परगना है जहॉ ब्राहमण जाति के लोग निवास करते है। यह एक पहाड़ी पर स्थित है। कभी यहॉ एक भव्य मंदिर होता था। पहाड़ी के ढलान पर एक झरना है जिसके सम्मुख एक जलकुण्ड बनाया गया है, जिसमें प्रचुर संख्या में मछलियॉ है। इस स्थान की पवित्रता के कारण कोई भी व्यक्ति मछलियों को न ही नुकसान पहुँचाता है और न ही उनका भोजन हेतु शिकार करता है।

स्थापत्य

मार्तण्ड का सूर्य मंदिर कश्मीर के वास्तुकला और स्थापत्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मुख्य मंदिर एक विशाल आयताकार प्राकार के मध्य में स्थित है। मंदिर का गर्मगृह आयताकार है उसके आगे मुख्य मंडप है। उसके आगे मंडप है। मंडप के दोनों ओर द्विकक्षीय भवन निर्मित किये गये है। यह मंदिर एक ऊँचे चबूतरे पर स्थित है। जिसमें प्रवेश हेतु सीढ़ियों (सोपान) का प्रावधान है। मंदिर का शिखर पूर्णतया टूटा हुआ है। मंदिर के मुख्य द्वार तथा ऊँची मेहराबों से यह अनुमान लगता है कि इसका शिखर अत्यन्त विशाल एवं भव्य रहा होगा। यद्यपि मौसम एवं पर्यावरण की दुर्गमता के कारण मंदिर की स्थापत्य कला एवं नक्कासिया जर्जर एवं धुमिल हो चुकी है परंतु कुछ मूर्तियॉ एवं अलंकरण के माध्यम से यह जानकारी मिलती हैं। यहॉ पर सूर्य, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, पार्वती, गंगा, यमुना आदि देवताओं की मूर्तियॉ उत्कीर्ण की गयी थी। दण्डि और पिंगल के साथ अश्व पर सवार सूर्य की प्रतिमा दर्शनीय है। गर्मगृह मूर्तिविहीन है। मार्तण्ड का सूर्य मंदिर प्राचीन संस्मारक एवं पुरातत्व स्थल एवं अवशेष अधिनियम 1958 के प्रावधानों के अंतर्गत राष्ट्रीय महत्व का स्मारक घोषित है। इस स्मारक का संरक्षण भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण श्रीनगर मंडल करता है।

नारी शक्तिः सबल नारी सुंदर विश्व

शारदा मालरा
मुख्य उद्यान अधिकारी कार्यालय, नैनीताल

नारी को मातृशक्ति कहा गया है। नारी का सुन्दरतम रूप भी माँ का रूप ही है। स्त्री हो या पुरूष सबको धरा पर लाने वाली माँ ही है। राजा हो या रंक माँ का रूप किसे नहीं याद। जन्म से लेकर होश संभालने तक माँ ही बच्चे की पल–प्रतिपल संभाल करती है। बच्चे को जन्म के बाद बोलना, चलना, खाना–पीना आदि आता। साये की तरह उसके साथ रहने वाली माँ ही उसे सम्भालती, संवारती, पालती–पोषती और बड़ा करती है। नारी अबला नहीं है,जैसा कि प्रायः नारी के लिए कह दिया जाता है। वास्तविकता तो यह है कि नारी सबल भी है और यह सबल बनाने वाली भी है। थोड़ा पीछे जाकर देखें तो हम पाते है कि जगत माता बुद्वन्ती जी, शहंशाह बाबा अवतार सिंह जी के साथ सत्य के प्रचार अभियान की एक मजबूत कड़ी के रूप में निरंतर कार्य करती रही। अतिथि सत्कार और गुरसिखों को अपार प्यार देना उनके स्वभाव में था। उनकी पुत्रबधु और बाबा गुरबचन सिंह जी की जीवन संगिनी निरंकारी राजमाता कुलवंत कौर जी एक पूर्ण गुरसिख का साकार रूप थी। भक्ति उनके रोम–रोम से अभिव्यक्त होती थी। ज्ञान को आत्मसात करने की उनकी लगन अन्त तक यथावत कायम रही। वे अपनी ओजपूर्ण वाणी से सम्पूर्ण जगत का कल्याण करती रही। बाबा गुरूवचन जी के साथ वे प्रचार अभियान में साए की तरह साथ रही। उनके दिव्य गुणों से ही उन्हे इतना सत्कार–सम्मान मिला।

मातृशक्ति का उत्तम स्वरूप जगतमाता बुद्ववंती जी और ममतामयी निरंकारी राजमाता जी का करूणा और भक्तिमय सुन्दर स्वरूप आज संसार के सामने है। उनके जीवन के बारे में जितना कुछ जानने को मिलता है उतना और जानने को अभिलाषा उत्पन्न होती है। आज के परिवेश में भी यह आवश्यक है कि घर–परिवार में बेटियाँ समान रूप से सम्मान पाएँ और सबको आगे बढ़ने के समान अवसर उपलब्ध हो। अगर ऐसा होगा तभी समाज,संसार का रूप निखरेगा और विश्व स्वर्ग सा सुन्दर बनेगा।

नारी शक्ति प्रेम की एक अद्भुत मिशाल है। नारी शक्ति में मानवता की सेवा का ऐसा जज्बा होता है कि सेवा करने का आत्म स्फूर्त जुनून पैदा हो जाए। नारीशक्ति विश्व की आधी आबादी है। नारी को पीछे रखकर विश्व को आगे ले जाना सम्भव नहीं होगा। मोटर साईकिल के दोनो पहिए ठीक होंगे तो वाहन सुचारू रूप से गतिशील रहेगा और तेजी से आगे बढ़ेगा। नारी शक्ति सबल हो सक्षम हो ताकि घर–परिवार, राष्ट्र और विश्व का रूप सुन्दरतम होता चला जाए।

परिश्रम करने की उम्र में अगर आराम करोगे
तो आराम करने की उम्र में परिश्रम
गाँधीजी

भारत सरकार की राजभाषा नीतिः एक जानकारी

अमीत कुमार जोशी
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र की पहचान के तौर पर चार चीजें आवश्यक होती है और ये है उस देश का राष्ट्रीय झंडा, राष्ट्रीय गान तथा राष्ट्रीय भाषा एवं राजभाषा। भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तक में देश की राजभाषा के संबध में है जो कि क्रमशः संसद सदस्यों तथा विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा हिन्दी अथवा अंग्रेजी के अलावा अपनी मातृभाषा में प्रश्न पूछ सकने के अधिकार के संबध में है। संविधान के अनुच्छेद 343 (1)के अनुसार हिन्दी,संघ की राजभाषा है। अनुच्छेद 343 (2)के अनुसार संविधान के लागू होने के 15 वर्षो की अवधि तक अर्थात् 25 जनवरी,1965 तक संघ सरकार के कार्यो में अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने की व्यवस्था की गई थी।

अनुच्छेद 343 (3) में संसद को यह अधिकार दिया गया कि वह अधिनियम पारित करके 26 जनवरी,1965 के बाद भी सरकारी कामकाज में अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने के बारे में व्यवस्था कर सके। तदनुसार, इस शक्ति का प्रयोग करते हुए राजभाषा अधिनियम 1963 पारित किया गया जिसे 1967 में संशोधित किया गया। राजभाषा अधिनियम के अधीन राजभाषा नियम वर्ष 1976 में संसद के दोनों सदनो में भाषा नीति संबधी एक संकल्प पारित किया गया जिसे 18 जनवरी, 1968 को अधिसूचित किया गया था। इस संकल्प के पैरा 1 के अनुसार हिन्दी क प्रसार तथा विकास और संघ के विभिन्न सरकारी प्रयोजनों के लिए इसके उत्तरोत्तर प्रयोग में गति हेतु प्रत्येक वर्ष एक गहन और विस्तृत कार्यक्रम तैयार करने और उसे कार्यान्वित करने का दायित्व केन्द्रीय सरकार को सौंपा गया। इसके अनुपालन में राजभाषा विभाग द्वारा हर वर्ष में एक वार्षिक कार्यक्रम बनाया जाता है, जिसमें केन्द्रीय सरकार के सभी कार्यालयों द्वारा उस एक वर्ष में हिन्दी में काम करने के लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं।

राजभाषा नीति के अन्तर्गत निम्नलिखित 4 प्रमुख प्रावधान है

पहला प्रावधान यह है कि राजभाषा अधिनियम की धारा 3 (3) में उल्लिखित 14 कागजात जैसे–सामान्य आदेश, अधिसूचनाएं, संकल्प, प्रेस विज्ञप्तियां, संविदाएं, करार, संसद के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले कागजात आदि द्विभाषी रूप में अर्थात हिन्दी और अंग्रेजी में एक साथ जारी किए जाएं।

दूसरा प्रावधान यह है कि हिन्दी राज्यों तथा उन राज्यों को जिन्होने केन्द्र सरकार के साथ हिन्दी में पत्राचार करना स्वीकार कर लिया है, को भी मूल पत्रादि हिन्दी में भेजे जाए।

तीसरा प्रावधान यह है कि हिन्दी राज्यों में स्थित केन्द्र सरकार के कार्यालयों के साथ पत्राचार में भी हिन्दी का प्रयोग किया जाएं।

चौथा प्रावधान यह है कि कही से प्राप्त हिन्दी पत्रादि के उत्तर हिन्दी में ही दिए जाएं।

क, ख एवं ग क्षेत्र के राज्य/संघ शासित क्षेत्र

राजभाषा नीति के अनुपालन के विचार से राजभाषा नियम, 1976 में देश में क, ख एवं ग क्षेत्र बनाए गए हैं। क क्षेत्र में बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली तथा अण्डमान निकोबार द्वीप समूह संघ शासित क्षेत्र शामिल है। शेष सभी राज्य ग क्षेत्र में आते है।

कुछ कार्य ऐसे है जो राजभाषा अधिनियम और राजभाषा नियम के अनुसार शत प्रतिशत हिन्दी में या विभाषी रूप में करने अपेक्षित है। इनमें राजभाषा अधिनियम की धारा 3(3) का अनुपालन, हिन्दी पत्रों का उत्तर हिन्दी में भेजा जाना, क तथा ख क्षेत्रों के कार्यालयों में क और ख क्षेत्रों की राज्य सरकारों तथा जनता के साथ हिन्दी में पत्र–व्यवहार करना, कार्यालयों के लिए

आवश्यक उपकरण द्विभाषी ही खरीदना आदि शामिल हैं। कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए मंत्रालयों/विभागों में हुई कार्यान्वयन की प्रगति की जानकारी और समीक्षा, उनके द्वारा भेजी जाने वाली प्रगति रिर्पोट के आधार पर राजभाषा विभाग द्वारा की जाती है। आप की विस्तृत जानकारी एवं सुलभ संदर्भ के लिए नीचे राजभाषा विभाग अनुदेशों का सारांश दिया जा रहा है जिससे आप राजभाषा को लागू करने में अपना पूरा सहयोग दे सकें। जहाँ हमें पत्राचार में हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग करना है, वहीं कुछ विशिष्ट प्रयोजनों के लिए हमें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का साथ–साथ प्रयोग करना है। आइये,एक नजर हम अपनी जिम्मेदारियों पर भी डाल लें:–

जिम्मेदारियाँ

1. कही से भी प्राप्त हिन्दी पत्रों का उत्तर अनिवार्यतः हिन्दी में ही दिया जाना चाहिए।
2. पत्राचार के दौरान अंग्रेजी के जो शब्द हिन्दी में मिल–जुल गए है जैसे बैंक, टाइपिस्ट, टेलीफोन इत्यादि शब्दों को ज्यों का त्यों देवनागरी लिपि में लिखा जा सकता है।
3. हिन्दी पत्र–व्यवहार में अंग्रेजी के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप 1,2,3,4,5,6,7,8,9,0 का प्रयोग होना चाहिए।
4. प्रायः एक जैसे पत्रों/स्मरण पत्रों, परिपत्रों आदि को कम्प्यूटर में हिन्दी में फीड कराके उनकी फोटो कॉपियाँ रखवा ली जाएं और आवश्यकता पड़ने पर उनका प्रयोग किया जाए। इससे पत्राचार की प्रतिशतता में वृद्धि हो सकती है।

हिन्दी तथा अंग्रेजी का एक साथ प्रयोग

1. सभी प्रकार की सूचनाएं द्विभाषिक रूप में जारी की जानी चाहिए।
2. प्रशासनिक कार्यालयों में सभी परिपत्र, संकल्प, टेंडर, नोटिस, करार, आदि द्विभाषी रूप में जारी किए जाने चाहिए।
3. रबड़ की मोहरे द्विभाषी होनी चाहिए।
4. लिफाफे और पत्राकं पर कार्यालय का नाम द्विभाषी रूप में होना चाहिए।
5. सभी साइन बोर्ड, नामपट्ट, काउन्टर बोर्ड द्विभाषिक रूप से दर्शाए जाने चाहिए।
   हिन्दीतर भाषी प्रदेशों में साइन बोर्ड, नामपट्ट आदि त्रिभाषिक रूप में प्रदर्शित किए जानक चाहिए। ऐसी स्थिति में भाषाओं का क्रम निम्न प्रकार होगा:
   1. प्रदेश की राजभाषा 2. हिन्दी 3. अंग्रेजी
6. फाइलों, रजिस्टरों, फार्मों आदि की छपाई द्विभाषी रूप में ही होनी चाहिए।
7. अधीनस्थ कार्यालय का नाम द्विभाषी रूप में दर्शाया जाए।
8. सम्पूर्ण भारत के लिए दिए जाने वाले विज्ञापन हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में एक ही तारीख को जारी किए जाने चाहिए। हिन्दी का विज्ञापन हिन्दी समाचार पत्र में अंग्रेजी का विज्ञापन अंग्रेजी समाचार–पत्र में दिया जाना चाहिए।
9. संस्थान के निमंत्रण पत्र द्विभाषी/त्रिभाषिक रूप से छपवाने चाहिए।
10. कार्यपालकों/अधिकारियों के विजिटिंग कार्ड द्विभाषी रूप में छपवाने चाहिए।
11. संस्थान की सभी कारों में संस्थान का नाम पहले हिन्दी में तथा बाद में अंग्रेजी में दिया जाना चाहिए।
12. हिन्दी भाषी क्षेत्रों में कार्यरत कर्मचारियों को दिए जाने वाले ज्ञापन, आरोप–पत्र आदि हिन्दी में दिए जाने चाहिए। हिन्दीतर भाषी क्षेत्र में भी यदि कोई कर्मचारी यह चाहता है कि उसे कोई भी पत्र आदि हिन्दी में दिया जाए तो उसकी व्यवस्था की जानी चाहिए।

अन्य दायित्व

1. प्रत्येक तिमाही समाप्त होने के सात दिनों के भीतर तिमाही रिपोर्ट संबधित कार्यालय को भेज दी जानी चाहिए।
2. हिन्दी में प्राप्त और उत्तरित पत्रों तथा हिन्दी में किए जा रहे सभी कार्यों का अलग से विधिवत रिकार्ड रखा जाना चाहिए।

भारत का संविधान (आठवीं अनुसूची) अनुच्छेद344 (1) और अनुच्छेद351

भाषाएं

1.	**असमिया / |ssamese**
2.	बंगला / Bangla
3.	गुजराती / Gujarati
4.	हिन्दी / Hindi
5.	कन्नड़ / Kannada
6.	कश्मीरी / Kashmiri
7.	तमिल / Tamil
8.	मलयालम / Malyalam
9.	तेलुगु / Telegu
10.	मराठी / Marathi
11.	उर्दू / Urdu
12.	उड़िया / Oriya
13.	पंजाबी / Panjabi
14.	संस्कृत / Sanskrit
15.	सिन्धी / Sindhi
16.	कोंकणी / Konkani
17.	मणिपुरी / Manipuri
18.	नेपाली / Nepali
19.	डोगरी / Dogri
20.	सन्थाली / Santhali
21.	बोडो / Boda
22.	मैथिली / Maithili

राजभाषा कार्यान्वयन–समस्याएं और समाधान

राजभाषा और राष्ट्रभाषा की अवधारणाएं अलग–अलग है। राजभाषा से आश्य सरकारी कामकाज की भाषा से है। किसी देश के भिन्न–भिन्न भाषी परस्पर सम्पर्क में आने पर जिस भाषा के माध्यम से पारस्परिक विचार विनिमय,सामाजिक और सांस्कृतिक आदान प्रदान करते है, वही उस देश की राष्ट्रभाषा अथवा सम्पर्क भाषा होती है। सैकडो वर्षो से हिन्दी देश के विभिन्न भागों में सम्पर्क भाषा के रूप में लाई जाती रही है 14 सितम्बर,1949 को हमारी संविधान सभा ने हिन्दी की लोकप्रियता, वैज्ञानिकता, सफलता, व्यापकता और बोधगम्यता को ध्यान में रखकर इसे देश की राजभाषा स्वीकार किया।

हिन्दी के प्रयोग की स्थिति

हिन्दी को देश की राजभाषा बने 67 वर्ष हो गए है। हिन्दी का प्रचार–प्रसार करने और हिन्दी में प्रशिक्षण देने के लिए भारत सरकार द्वारा निरंतर प्रयास किया जा रहा है। हिन्दी कार्यशालाएं और अखिल भारतीय संगोष्ठियाँ आयोजित की जाती है। केन्द्रीय सरकार की सभी कार्यालयों में द्विभाषिक यांत्रिक/ इलैक्ट्रानिक सुविधायें मुहैया कराई गई है और इन सभी के मानीनिटरिंग के लिए एक अलग–अलग विभाग–राजभाषा विभाग बनाया गया है, प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केन्द्रिय हिन्दी समिति गठित की गई है। केन्द्रिय सरकार के कार्यालयों में राजभाषा कार्यान्वयन समितियां और नगरों में नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियां बनाई गई है। इन सबसे अलग एक संसदीय राजभाषा समिति भी गठित की गई है जो हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की समीक्षा कर अपनी रिपोर्ट संस्तुतियों के साथ राष्ट्रपति महोदय को प्रस्तुत करती है।

वार्षिक कार्यक्रम

राजभाषा विभाग द्वारा प्रति वर्ष एक वार्षिक कार्यक्रम तैयार किया जाता है और उसमें निर्धारित लक्ष्यों का प्राप्त करने के लिए सकारात्मक और सक्रिय प्रयास करने का केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों/विभागों और कार्यालयों के सचिवों/अध्यक्षों आदि से अनुरोध किया जाता है।

हिन्दी प्रशिक्षण

हिन्दी न जानने वाले लाखों कर्मचारियों को हिन्दी में प्रशिक्षण दिया जा चुका है। भारत सरकार के लगभग सभी मंत्रालय/विभाग और अधिकांश अधीनस्थ कार्यालय राजभाषा नियम 1976 के नियम 10(4) के अधीन अधिसूचित किये जा चुके है। प्रत्येक वर्ष सितम्बर माह में हिन्दी दिवस/सप्ताह/पखवाड़ा मनाया जाता है। हिन्दी में काम करने के लिए कर्मचारियों को प्रेरित और प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से इस

दौरान प्रतियोगितायें और अनेकानेक कार्यक्रम आयोजित किए जाते है और प्रतिभागियों को पुरस्कृत किया जाता है। तरह–तरह की प्रोत्साहन योजनायें चलाई जा रही है। इतना सब होने और करने के बावजूद राजभाषा के रूप में हिन्दी के प्रगामी प्रयोग में अपेक्षित प्रगति नहीं हो पा रही है। क्या वजह है इसकी? राजभाषा के इस पहलू पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।

कुछ उपयोगी सुझाव

1. केन्द्रिय सरकार के मंत्रालयों/विभागों और कार्यालयों में हिन्दी में प्रवीण तथा हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले सभी स्तरों पर अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए हिन्दी में काम करना अनिवार्य बनाया जाये तथा हिन्दी में किये गये काम को उनके निष्पादन से जोड़ा जाये।
2. सेवा में आने पर परिवीक्षा काल में ही हिन्दी, हिन्दी टाइप और हिन्दी आशुलिपि में प्रशिक्षण देने का काम पूरा कर लेने की अनिवार्य व्यवस्था की जाये।
3. नियमित और पत्राचार दोनों विधियों के अंतर्गत हिन्दी प्रशिक्षण अंग्रेजी की बजाय प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से दिया जाये इससे अंग्रेजी का वर्चस्व स्वतः कम होगा और हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं का वर्चस्व और प्रयोग निश्चित रूप से बढ़ेगा।
4. जहाँ तक संभव हो द्विभाषिकता की स्थिति तुरन्त समाप्त की जाये। आवश्यक होने पर अहिन्दी भाषी क्षेत्रों को अंग्रेजी की बजाय संबधित राज्यों की राजभाषाओं में अनुवाद उपलब्ध करानक की व्यवस्था की जाये।
5. वरिष्ठ कार्यपालकों/शासनाधिकारियों को हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने, उपलब्ध संसाधनो का हिन्दी में काम करने के लिए समुचित उपयोग करने और राजभाषा नियमों का अनुपालन सुनिश्चित कराने तथा निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए व्यक्तिगत तौर पर जवाबदेह बनाया जाये इसकी समुचित मानीटरी की जाये।
6. स्कूली और उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी की बजाय–अनिवार्य रूप से हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं को बनाया जाए।
7. अखिल भारतीय प्रतियोगी परीक्षाओं में मात्र हिन्दी माध्यम की व्यवस्था कर देना ही पर्याप्त नहीं होगा इनमें अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त की जाये।
8. प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षण देने का माध्यम हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं को बनाया जाये।
9. लोगों की यह आम धारणा ही नहीं बल्कि आज वास्तविकता है कि अंग्रेजी सीखने से रोजगार के अवसर खुल जाते हैं। सरकार अगर नौकरियों में अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त कर दे तो अंग्रेजी के प्रति लोगो का मोह अपने आप कम हो जायेगा।
10. राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए, भाषायी संरचना और सामंजस्य के लिए यह आवश्यक है कि देवनागरी को सभी भारतीय भाषाओं को लिखने के लिए राजभाषा लिपि के रूप में अपनाया जाये। इसमें सभी भारतीय भाषाओं को लिखने की क्षमता है। देवनागरी लिपि के माध्यम से सभी भारतीय भाषाओं का लिप्यंतरण किया जा सकता है और उन्हें सीखा भी जा सकता है। इससे सभी भाषाएँ हिन्दी के करीब आयेंगी। उनका आपसी आदान– प्रदान और संवाद बढ़ेगा। राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता सुदृढ़ होगी।
11. राजभाषा विभाग द्वारा प्रतिवर्ष जारी वार्षिक कार्यक्रम को और अधिक व्यावहारिक और कार्यान्वयनशील बनाया जाये। साथ ही कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और निर्धारित लक्ष्यों के प्राप्ति की सही और वास्तविक स्थिति की मानीटरी गम्भीरतापूर्वक की जाये।
12. तिमाही प्रगति रिपोर्ट प्रपत्र में से अनावश्यक और अव्यावहारिक मदों को निकालकर इसे संसदीय राजभाषा समिति की निरीक्षण प्रश्नावली और मूल्यांकन रिपोर्ट प्रपत्र के अनुरूप बनाया जाये ताकि हिन्दी में हो रहे काम–पत्र व्यवहार, टिप्पण और मूल कार्य को इसमें ठीक–ठीक दर्शाया जा सके। साथ ही इसी रिपोर्ट से निरीक्षण प्रश्नावली के विभिन्न कालमों का भरा जाना सुनिश्चित हो सके। विद्यमान तिमाही प्रपत्र में अंग्रेजी

मे प्राप्त पत्रों को दर्शाने के लिए कोई कालम नहीं है।

13. हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन केवल औपचारिकता पूरी करने के लिए न किया जाये। इनमें राजभाषा नीति की जानकारी देने के साथ–साथ हिन्दी में काम करने का प्रमुखता से अभ्यास कराया जाये।
14. हिन्दी दिवस/हिन्दी पखवाड़ा आदि का आयोजन उत्सव के रूप में न करके आत्म विश्लेषण और हिन्दी प्रयोग की स्थिति की समीक्षा करके उसे आगे बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाये जिसमें वास्तविक उपलब्धियों की समीक्षा की जाये और निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कार्यवाही की जाये।
15. कार्यपालकों द्वारा हिन्दी में लिखी जाने वाली छोटी–छोटी टिप्पणियां यहां तक की हिन्दी में हस्ताक्षर भी कर्मचारियों को हिन्दी में काम करने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करेंगे।

भारत विश्व का सबसे बड़ा, प्रबुद्ध और सुदृढ़ प्रजातंत्र है। प्रजातंत्र में हमेशा जनता को मालूम होना चाहिए कि देश की सरकार क्या करती है,क्या सोचती है। जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप और उसी की सलाह से सब काम होना चाहिए। इसके लिए यह जरूरी है कि जनता और सरकार का संबध बहुत करीब का हो। इसे विदेशी भाषा, अंग्रेजी, जिसे देश की केवल 2 प्रतिशत जनता जानती है, में सरकारी कामकाज करके पूरा नहीं किया जा सकता। अंत मे, देश का विकास राजभाषा हिन्दी को सही अर्थो में अपना कर ही हो सकता है। भाषा का महत्व केवल सरकारी कामकाज के निष्पादन तक सीमित नहीं है। भाषा केवल अभिव्यक्ति की ही नहीं हमारी संस्कृति की भी परिचायक है। इससे हमारा राष्ट्रीय गौरव, सांस्कृतिक आस्मिता और आत्मसम्मान व्यापक तौर पर जुड़ा हुआ है। देश की सामाजिक संस्कृति और उसके सर्वागीण विकास के लिए हम विदेशी भाषा पर निर्भर नहीं रह सकते। हमें अपनी राष्ट्रभाषा/राजभाषा हिन्दी को हर क्षेत्र में राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय हर मंच पर पूरी निष्ठा और आत्मविश्वास के साथ दृढतापूर्वक स्थापित करना होगा। यही हमारे लिए गौरव की बात होगी।

वेद पढ़ना आसान है किन्तु जिस दिन आपने किसी की वेदना को पढ़ लिया तो समझिये ईश्वर को पा लिया।

महात्मा बुद्ध

सेला पास में प्रेम और देशभक्ति की गाथा

अजय सिंह रावत
नैनीताल, उत्तराखण्ड

राइफल मैन जसवंत सिंह रावत की अनोखी प्रेम कहानी और शहादत कल्पना की तरह ही खूबसूरत है। वह 1962 के चीनी आक्रमण के दौरान अरुणाचल प्रदेश में तैनात थे, जहां कार्यवाही के दौरान उनकी मृत्यु हो गई। उनका स्मारक तवांग जिले में सेला दर्रे के आगे बनाया गया है। दर्रा समुद्र तल से 13,700 फीट की ऊंचाई पर है और रणनीतिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण है। यह तवांग शहर को जोड़ता है, जो सेला दर्रे से तेजपुर और गुवाहाटी तक 78 किमी तक फैला है।

गढ़वाल राइफल्स के कर्नल एच.एस. रौतेला (सेवा निवृत्त) के अनुसार, उन्हें वीरता के लिए सेना पदक से सम्मानित किया गया था, जसवंत सिंह 4 गढ़वाल राइफल्स में सेवारत थे। नूरानांग के युद्ध में उनकी बटालियन द्वारा प्रदर्शित साहस अनुकरणीय था। कामांग सेक्टर में यह एकमात्र बटालियन थी, जिसे बैटल ऑफ ऑनर के दुर्लभ सम्मान से नवाजा गया था। नूरानांग घाटी तवांग और सेला के बीच स्थित है। नवंबर 1962 में हमले के अंतिम चरण के दौरान, जसवंत सिंह एक पहाड़ी पर भारतीय चौकी पर अकेले रह गये था और उन्होने चीनी सैनिकों को तीन दिनों तक अकेले ही रोके रखा। वह बंकर से बंकर फायरिंग की ओर भागे तथा ऐसा भ्रम पैदा किया जैसे कि वहां कई लोग तैनात हैं। इस कार्यवाही के दौरान उन्हें दो स्थानीय मोनपा लड़कियों नामतः सेला और उसकी छोटी बहन नूरा ने सहायता प्रदान की। सेला जसवंत सिंह से बहुत प्यार करती थी। उसके पिता उनके रिश्ते के खिलाफ थे लेकिन उन्होंने लड़ाई के बाद दोनों ने शादी के बंधन में बंधने या एक साथ मरने का फैसला किया था। जब वे पद पर थे तब दोनों बहनें सुनसान छावनी से उनके लिए भोजन और गोला–बारूद लेकर आई थीं। चीनी आग के गोलों से डर गए और सोचा कि पहाड़ी की बहुत दृढ़ता से किलेबंदी गयी है, लेकिन जल्द ही जसवंत को सेला के पिता ने धोखा दिया और उसने चीनीयों को सच्चाई बता दी। गढ़वाल राइफल्स के एक प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल आर.सी.डी. जोशी ने कहा, "लड़ाई इस प्रकार समाप्त हो गई जब चीनियों को पता चला कि पोस्ट को एक अकेले सैनिक द्वारा संचालित किया जा रहा था।" ऐसा माना जाता है कि ग्रेनेड के फटने से सेला की मौत हो गई और नूरा को पकड़ लिया गया और बाद में छोड़ दिया गया। गोला–बारूद की कमी से भागते हुए जसवंत सिंह को जब लगा कि उन्हें किसी भी समय पकड़ा जा सकता है तो उन्होने अपनी आखिरी गोली से खुद को मार लिया।

चीनियों ने जसवंत सिंह के शव का सिर काट दिया और उसे अपने साथ ले गए। हालाँकि, युद्ध विराम के बाद, चीनी कमांडर, जो उनकी बहादुरी और देश के प्रति प्रेम से बहुत प्रभावित था, ने सम्मान के प्रतीक के रूप में जसवंत सिंह की पीतल की मूर्ति के साथ सिर लौटा दिया। कहानी के एक अन्य संस्करण के अनुसार, चीनी अग्रिम को 72 घंटे तक एक हाथ से रोकने के लिए एक जवाबी हमले की योजना बनाने के बाद, वह बुरी तरह से घायल हो गये और पकड़ लिये गये तथा उन्हे फांसी पर लटका दिया गया। जब सेला को जसवंत सिंह की सर्वोच्च वीरता और उनके निधन के बारे में पता चला, तो उसने एक पहाड़ी से छलांग लगा दी और अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली। सेला दर्रा, जैसा कि स्थानीय लोगों का मानना है, उनके वीरतापूर्ण पराक्रम की स्मृति में रखा गया था। जसवंत सिंह को बाद में उनकी वीरता के लिए मरणोपरांत 'महावीर चक्र' से सम्मानित किया गया। आज उनकी धैर्य और प्रेम कहानी की कथा तवांग घाटी और आसपास के गांवों में गूंजती है।

कर्नल एस.के. सिंह (सेवानिवृत्त), जो इस क्षेत्र में तैनात थे, ने कहा, "उसी सेक्टर में एक

और झड़प में उन्होंने और दो अन्य सैनिकों त्रिलोक सिंह नेगी और गोपाल सिंह गोसाईं ने एक सुविधाजनक बिंदु पर एक चीनी मशीन गन पर कब्जा कर लिया। अपनी जान जोखिम में डालकर, उन्होंने चीनी बंकरों में बहुत करीब से हथगोले फेंके।" जसवंत सिंह की वीरता और बलिदान की गाथा आज भी इस सेक्टर में तैनात सभी सैन्यकर्मियों को प्रेरित करती है। जिस स्थान पर उन्होंने देश के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी, उस स्थान पर उनकी प्रतिमा और निजी सामान के साथ एक छोटा मंदिर बनाया गया है। यह क्षेत्र अब जसवंत गढ़ के नाम से जाना जाता है। एक संगमरमर की पट्टिका उनकी और उनकी बटालियन के 161 अन्य लोगों को बहादुरी के लिए याद करती है। रक्षा सेवाओं के लोग या इस मार्ग से गुजरने वाला कोई भी नागरिक यहां अपना मत्था टेकना चाहता है। वह एक संरक्षक संत के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जो भारतीय सैनिकों की रक्षा करते हैं और लोकप्रिय रूप से 'बाबा जसवंत सिंह' के नाम से जाने जाते हैं। जसवंत सिंह के जूते हर सुबह गंदे पाए जाते थे, क्योंकि वह अंधेरे की आड़ में क्षेत्र में सभी अप्रिय गतिविधियों पर नजर रखने के लिए रात में गश्त के लिए जाते थे। यह वहाँ तैनात यूनिट की जिम्मेदारी है कि वह जसवंत सिंह के लिए खाना परोसे, उनके बिस्तर लगाए, (जो हर सुबह उठा लिया जाता है), उनका जूते पॉलिश करे, उनकी वर्दी और सामान बनाए रखे और हर रोज उनके प्रशंसकों का मेल वितरित करता रहे।

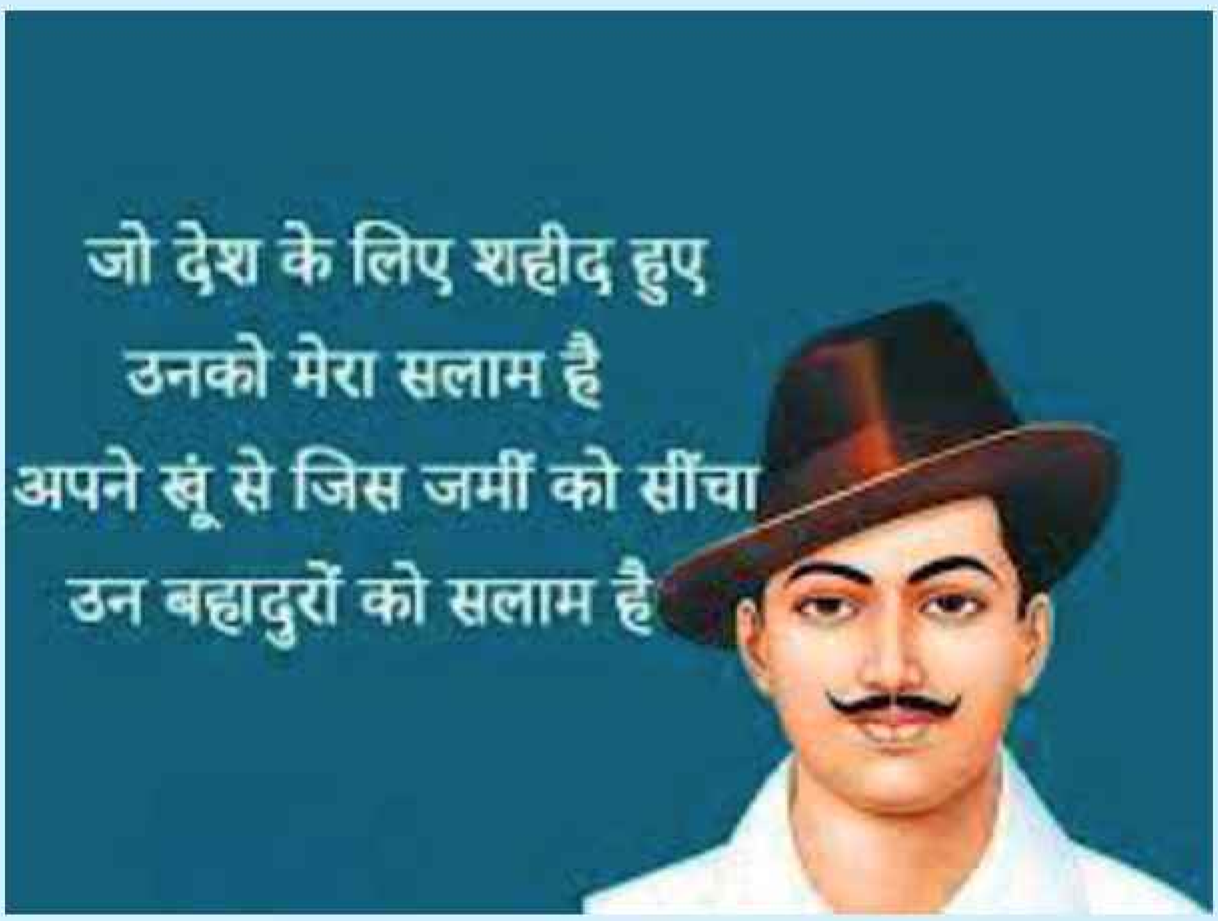

मछली चित्रित एशियाई डाक टिकट

रमेश सोमवंशी
ए–336, राजेन्द्रनगर, बरेली (उ.प्र.)

डाक टिकट की उत्पत्ति का मूल्य ध्येय यह प्रमाण था कि इस का शुल्क प्राप्त कर लिया गया है। डाक टिकट प्रारंभ होते ही इस के जारीकर्ता देश के अन्य ध्येय इसके साथ जुड़ गये यथा जारीकर्ता देश की कला, इतिहास व प्राकृतिक संशाधनों का प्रचार–प्रसार। अनेक देशों में मछली एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संशाधन एवं लोकप्रिय खाद्य है। साथ ही यह सामान दानी पर अत्याधिक सजावटी वस्तु भी है। अतः ये अपरिहार्य कारणों से प्रतीक–चिन्ह बनीं। वास्तव में डाक टिकट जैसी वस्तु पर सर्वप्रथम अमेरिका के मैसाचुसेटस में सन् 1755 में कॉड मछली का चित्रण किया गया। हालांकि सन् 1865 में अमेरिका के ही न्यूफाऊंड लैण्ड में सन् 1865 में गोंद से चिपकाने वाले जारी किये गये डॉक टिकट में पुनः कॉड मछली का चित्रण किया गया। वर्तमान समय में अनेक देशों द्वारा मछलियों पर अनेक रंग–बिरंगे व आकर्षक डाक टिकट जारी किये गये हैं। कुछ देशों द्वारा इन पर इतने अधिक टिकट जारी किये गये है कि इससे पूरी की पूरी किताब बन सकती है। मछलियों पर सर्वप्रथम सन् 1865 से 1975 तक के वैश्विक डाक टिकटों का वर्णन 'बायोफिलाटेली' नामक सामयिक पत्रिका में सन् 1977 में प्रकाशित हुआ। इस लेख में मछलियों पर मुख्य ध्येय के डाक टिकट सम्मिलित किये गये। कुछ मछली चित्रित अन्य प्रकार के डाक टिकट थे–(I) मछली डाक टिकट की डिजाइन का एक हिस्सा थी, (II) डाक टिकट पर अंकित मछली 'स्टाइलिश' या डिजाइन का थोड़ा हिस्सा थी तथा (III) डाक टिकट मछली के मूलभाव पर था परंतु उसमें मछली का चित्रण नहीं था।

मछलियों पर जारी प्रथम डाक टिकटः कॉडफिश, न्यूफाकंड लैण्ड, अमेरिका, 1937

फिशबेस : मछलियों पर वैश्विक सूचना प्रणाली का प्रतीक–चिन्ह

चित्रों के स्रोत : इंटरनेट से साभार

मछली चित्रित वे डाक टिकट अच्छे माने जाते हैं जिनमें मछली का प्रमुखतः से चित्रण हो व मछली की प्रजाति मान्य हो। मछली का नाम या उपनाम डाक टिकट पर अंकित हो तथा वह सरलता से चित्र के द्वारा पहचानी जा सके। डाक टिकटों पर विविध प्रजाति की मछलियों का चित्रण होताहै जैसे अत्यंत छोटी विख्यात तथा सर्वाधिक लोकप्रिय गप्पी या रैनबो से सार्कव्हेल मछली तक। डाक टिकटों पर विभिन्न वर्गीकृत प्रजाति की मछलियों यथा सतही समुद्र की कोरलरीफ के बीच रहने वाली व रंग–बिरंगी ट्रिगर मछली से शार्क मछली तक चित्रित होती हैं।

मछली चित्रित डाक टिकटों को पहचानने के लिये वैश्विक 'फिशबेस' डाटाबेस को प्रयुक्त किया जा सकता है। वास्तव में 'फिशबेस' मछलियों की वैश्विक प्रजातियों का डाटाबेस है। इसमें मछलियों से सम्बन्धित विविध प्रमाणिक जानकारियां यथा वर्गीकरण, जैवमिती, व्यवहार, वितरण, नैसर्गिक वास व चित्र पाये जाते हैं। इस डाटाबेस को 1996 में डैनियल पॉली तथा रेनरफ्रीस नामक वैज्ञानिकों ने प्रारंभ किया था तथा यह सर्वाधिक उपयोगी तथा संदर्भित किया जाने वाला वेब/डाटाबेस है। इसका नियमित अद्यतनीकरण किया जाता है। इसकी सहायता से डाक टिकटों पर चित्रित मछलियों को सरलता से पहचाना जा सकता है। फिशबेस में मछली चित्रित 2000 डाक टिकटों को आच्छादित करने का ध्येय हैं। इसमें सम्मिलित किये गये डाक टिकट की उत्तम स्कैनिंग की जाती है तथा इनका फोटो स्टाइलर कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर द्वारा श्रेष्ठ कंट्रास्ट प्राप्त किया जाता है।

जैसा कि हम पूर्व में ही कह चुके हैं कि वर्तमान में विभिन्न देशों ने मछलियों पर इतने अधिक डाक टिकट निकाले हैं कि इनकी चर्चा करना व इनके चित्र प्रस्तुत करना इस छोटे से लेख में संभव नहीं हैं। अतः वर्तमान लेख को केवल एशिया के देशों के डाक टिकटों तक ही सीमित किया गया है। एशिया के प्रत्येक देश ने भी मछलियों पर कई या डाक टिकटों की श्रृंखला निकाली है अतः स्थानाभाव के कारण इस लेख में प्रत्येक देश का मात्र एक डाक टिकट ही सम्मिलित किया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार एशिया में 48 देश हैं। यह महाद्वीप उत्तरी, केन्द्रीय, पूर्वी, दक्षिणी–पूर्वी, दक्षिणी तथा पश्चिमी क्षेत्रों में बांटा गया है तदानुसार इन देशों के डाक टिकट प्रस्तुत किये गये हैं।

इंटरनेट खोज के दौरान यह भी ज्ञात हुआ कि वर्तमान में हांगकांग व मकाऊ, चीन के विशेष प्रशासित क्षेत्र हैं। ताईवान को भी चीन के अन्तर्गत माना जाता है। मात्र तिमोर–लेस्ते देश को छोड़कर एशिया के सभी 47देशों ने मछलियों की विभिन्न प्रजातियों पर अत्यन्त सुंदर डाक टिकट जारी किये हैं। इन डाक टिकटों पर मछलियों के आम या वैज्ञानिक नाम दिये गये हैं। इनके विषय में अधिक जानकारी 'फिशबेस' सूचना तंत्र से प्राप्त की जा सकती है।

तालिका–1 एशिया के देशों द्वारा मछलियों के जारी डाक टिकट

उत्तरी एशिया	

<table>
<tr><td></td><td colspan="2">रूस</td></tr>
<tr><td>मध्य एशिया</td><td>
</td><td>
</td></tr>
<tr><td></td><td>कजाखिस्तान</td><td>ऊजबेकिस्तान</td></tr>
<tr><td></td><td>
</td><td>
</td></tr>
<tr><td></td><td>किरगिस्तान</td><td>तुर्कमेनिस्तान</td></tr>
<tr><td></td><td>
</td><td></td></tr>
<tr><td></td><td>तजिकिस्तान</td><td></td></tr>
<tr><td>पूर्वी एशिया</td><td>
</td><td>
</td></tr>
<tr><td></td><td>मंगोलिया</td><td>चीन</td></tr>
<tr><td></td><td>
</td><td>
</td></tr>
<tr><td></td><td>हांगकांग (चीन)</td><td>मकाऊ (चीन)</td></tr>
</table>

ICAR-DCFR

ताईवान

जापान

उत्तरी कोरिया

दक्षिणी कोरिया

थाईलैंड

वियतनाम

कम्बोडिया

लाओस

फिलिपींस

मलेशिया

	इंडोनेशिया	ब्रूनाई
	सिंगापुर	
दक्षिणी एशिया		
	अफगानिस्तान	पाकिस्तान
	भारत	नेपाल
	म्यानमार	

	भूटान	बांग्लादेश
	मालद्वीप	श्रीलंका
पश्चिमी एशिया		
	ईरान	ईराक
	सीरिया	जार्डन
	लेबनान	साईप्रस

आर्मेनिया

अजरबैजान

इजराइल

टर्की

साऊदी अरब

यमन

कतर

दुबई(यूएई)

ओमान

कुवैत

बहरीन

जार्जिया

फिलिस्तीन

चित्रों के स्रोत: इंटरनेट से साभार

भारत ने मछलियों पर बहुत कम डाक टिकट जारी किये हैं। सन् 1981 में नीले रंग के 5 पैसे का डाक जारी टिकट सर्वाधिक प्रसिद्ध व सुलभ है। इस पर विख्यात हिल्सा, पाम्फ्रेट तथा झींगा मछलिया चित्रित हैं। एक अन्य डाक टिकट सन् 2019 में कर्नाटक की स्थानिक प्रजाति *पुनटियस कर्नाटिकस* को मत्स्य महाविद्यालय, मैंगलोर की स्वर्ण जयंती (सन् 1969–2019) के सुअवसर पर जारी किया गया। इस डाक टिकट के अन्य चित्र इंटरनेट पर सुलभ नहीं हैं। एक अन्य शुभकामनाएं शीर्षक के 4 रूपये के डाक टिकट पर मछलियां, स्टारफिश तथा कोरल चित्रित हैं। राशि श्रृंखला के अंतर्गत 'मीन राशि' पर भारतीय डाक विभाग ने सन् 2010 में एक डाक टिकट जारी किया है। इस पर दो स्टाइलिश मछलियों के चित्र अंकित हैं। भारतीय डाक विभाग प्रायः मित्र राष्ट्रों के साथ संयुक्त डाक टिकट भी जारी करता है। सन् 2009 में फिलीपींस के साथ बुटाडिंग शार्क मछली तथा गंगा नदी की डाल्फिन पर संयुक्त डाक टिकट जारी किया गया। भारतीय डाक विभाग ने सन् 1991में समुद्री स्तनपायी यथा समुद्री गाय व नदी की डाल्फिन पर डाक टिकट जारी किये हैं। भारत में समुद्री जीवों पर भी कुछ डाक टिकट जारी किये हैं जो कि इस लेख की विषय वस्तु में नहीं आते है अतः उन्हें यहां सम्मिलित नहीं किया गया है।

तालिका–2: भारत द्वारा मछलियों के जारी डाक टिकट

<table>
<tr><td>
</td><td>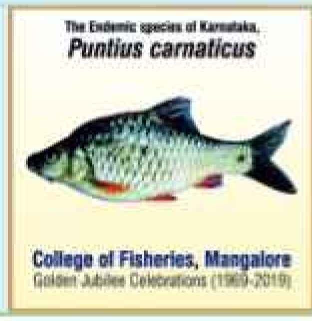
</td></tr>
<tr><td>हिल्सा, पाम्फ्रेट तथा झींगा मछलियाँ, 1981</td><td>कर्नाटक की स्थानिक मछली प्रजाति पुनटियस कर्नाटिकस, 2019</td></tr>
<tr><td>
</td><td>
</td></tr>
<tr><td>शुभकामनाएं: मछली, स्टारफिश तथा कोरल चित्रित, 2003</td><td>मीन राशि: दो स्टाइलिश मछलियाँ, 2010</td></tr>
<tr><td colspan="2">
</td></tr>
<tr><td colspan="2">भारत–फिलिपींस द्वारा जारी संयुक्त डाक टिकट: फिलिपींस की बुटाडिंग शार्क मछली तथा भारत की गंगानदी की डाल्फिन, 2009</td></tr>
<tr><td>
</td><td>
</td></tr>
<tr><td>गंगा नदी की डाल्फिन, 2009</td><td>फिलिपींस की बुटाडिंग शार्क मछली, 2009</td></tr>
<tr><td></td><td></td></tr>
</table>

समुद्री स्तनपायीः नदी की डाल्फिन,1991

समुद्री स्तनपायीः समुद्री गाय ,1991

चित्रों के स्रोतः इंटरनेट से साभार

वर्तमान इंटरनेट व सोशल मीडिया यथा फेसबुक व्हाटसप, टिवटर आदि के युग में डाक टिकट संग्रह का शौक लोगो में बहुत कम हुआ है। सन् 1970–90 के दसक में बच्चों में यह सौख लोकप्रिय था। बच्चे डाक टिकट संग्रह करते थे। विदित है कि इंटरनेट, मोबाईल व अन्य संचार माध्यमों के कारण डाक व डाक टिकटों का प्रचलन भी बहुत कम हुआ है। अतः अब यह नितांत आवश्यक है कि विश्व विद्यालयों,शोध संस्थानों व संग्रहालयों में विशिष्ठ डाक टिकट संग्रह होना चाहिये ताकि हमारी अगामी पीढ़ी डाकटिकटों के माध्यम से भारत की संस्कृति, इतिहास, प्राकृतिक संसाधन इत्यादि के विषय में कुछ जान सके। आशा है कि प्रस्तुत लेख से एशियाई देशों द्वारा जारी किये गये मछली चित्रित डाक टिकटों की जानकारी आपको रोचक लगी होगी।

हमारे लोकपर्व एवं वैज्ञानिक तर्क

हेमन्त बिष्ट
खुर्पाताल, नैनीताल

त्यौहार जीवन की एक रसता की ऊब को तोड़ते हैं, हमारे जीवन में मनोरंजन, उल्लास और आनन्द भरकर हमारे जीवन चक्र को सरस बनाते है। यह सामाजिक सामूहिकता का भाव कराते है,हमारे जीवनयापन, सामाजिक संस्कृति, प्रथाओं, मान्यताओं, विश्वासों, आदर्शो, नैतिक, धार्मिक और सामाजिक मूल्यों की झाँकी प्रस्तुत करते है। यदि हमारे पहाड़ के संदर्भ में बात की जाए तो हमारे कृषि पर्व, ऋतु पर्वो की परम्परा धार्मिक विश्वासों से कही अधिक हमारे लोक जीवन की आवश्यकताओं से यह पर्व जुड़े प्रतीत होते हैं। उत्तराखण्डी पर्व भी हमारे श्रमसाध्य जीवन में हँसी–खुशी भरने या फिर हमारी कृषि पद्वतियों की जॉच परख, अच्छी फसल की खुशी,फसल के प्रथम हिस्से को देवताओं को समर्पण, प्राकृतिक शक्तियों को प्रसन्न करना इन्ही क्रिया क्लापों से उपजे प्रतीत होते है। हिन्दू कलैण्डर के अनुसार चैत्र से ही नए वर्ष का शुभारम्भ होता है। खेतों में सरसों दैण फूलने लगती है, जंगल बुरांश से सज जाते हैं चैत्र की संक्राति को फूल संक्राति कहते है। चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा को हम लोग पव सम्वतसर सुनकर हम नव वर्ष मनाते है। ऋतु गणना में दो महीने चैत्र–वैशाख बसंत के है लेकिन बसंत पंचमह माघ शुक्ल पंचमी को मनायी जाती है। बसंत पंचमी तो बसंत के आगमन की सूचक है, माना जाता है कि बसंत के आगमन की खुशी में शेष ऋतुओं ने बसंत को आठ–आठ दिन दे दिए थे, इसलिए बसंत पंचमह चालीस दिन पहले प्रकट हो जाती है। चैत्र कृष्ण प्रतिपदा से चालीस दिन पहले यह मनायी जाती है। पहाड़ में बसंत पंचमी को 'सिरि पंचमि' कहा जाता है।

इसको मनाए जाने के पीछे भी बड़ा ही वैज्ञानिक आधार है यह माना जाता है कि बर्फ–ओले से ढ़की धरती जिसमें घास–पात, पंछी कीट, पेड़–पौधे, जीव–जन्तु सभी सुस्त पड़ जाते है। 'सिरि पंचमि' के दिन से सबका काया–कल्प होने लगता है। कुमाऊनी में कहा जाय तो ''य दिन बै सबोकि सिरि काव बदल जै'' अर्थात् धरती का रूप बदल जाता है, धरती जाग जाती है, इसीलिए कुमाऊ में इसे 'सिरि पंचमि' कहते है। इस पर्व को हम ऋतु पर्व और रबि की फसल की जॉच पड़ताल के रूप में देखते है। घर के सयाने 'जौ'के तिनड़ो (पत्तियों) को हमारे शीर्षो पर रखकर कृषि को सम्मान और हमें आशीर्वाद देते है। बल्कि अपने–अपने गौशालाओं की चौखटों पर,जौ के तिनड़ो को गोबर से सजावटी तरीके से चिपकाते है, जो अच्छी कृषि की प्रतियोगिता या प्रदर्शन माना जा सकता है।

फूल देई पर्व हमारा प्रमुख त्यौहार है, इसके वैज्ञानिक तथ्य की ओर बढ़पे से पहले उस कथा की ओर चलते है जो इसकी वैज्ञानिकता के तर्को की ओर हमें बढ़ाती है। कथा प्रचलित है कि शिवजी शीतकाल में अपनी तपस्या में लीन थे। ऋतु परिवर्तन हुआ,कई वर्ष बीत गए लेकिन शिव की तन्द्रा नहीं टूटी। मॉ पार्वती, नन्दी और सभी गण चिंतित हो गए। नई ऋतु का उल्लास समाप्त हो गया था। सृष्टि नीरस हो गई। मॉ पार्वती की दृष्टि प्योली के फूलों में पड़ी। उन्होने सभी गणों को पीले वस्त्र पहना कर बच्चों का रूप दे दिया। जैसे किसी गहरी नींद में सोए व्यक्ति को किसी बच्चे ने जगा दिया तो वह कुछ नहीं होता ठीक उसी तरह गण जब बच्चों के रूप में देव क्यारियों से सरसों, (दैण), बुरांश आदि के फूल लाए, निंगाल की टोकरी में रखकर आए तो सम्पूर्ण कैलाश महक गया,शिव जी तन्द्रा में थे। गण बच्चों के रूप में देली अर्थात् द्वार पर पहुँचे। पहले उन्होंने तन्द्रा तोड़ने के लिये क्षमा मॉगी। शिव तन्द्रा से जाग गए। सभी ने कहना प्रारम्भ किया फूल देई, छम्मा देई, बारम्बार, नमस्कार बच्चे क्षमा का उच्चारण छम्मा करते है। इस प्रकार उसी परम्परा का निर्वहन करते हुए आज भी बच्चे कहते है।

फूल देई, छम्मा देई, बारम्बार, नमस्कार
तू देली सौ बारम्बार नमस्कार, नमस्कार
दैणी द्वार, भर भकार, फूल देई, छम्मा देई

भर भकार अर्थात् समृद्वता, सम्पन्नता शीतऋतु में सुप्त धरती का जागृत होना, प्रथम त्यौहार को बच्चों और फूलों के साथ मनाया जाना अर्थात् प्रकृति की अनमोल देन पुष्प और बच्चें यदि शुभकामना दे तो पूरा वर्ष शुभ होगा। चैत्र एक गते को फूल देई,चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा को नव सम्वतसर तथा वैशाख मास की पहली गते बिषु त्यार अर्थात् विषुवत संक्राति जो मुख्य रूप से फसल कहने पर खुशी के प्रदर्शन का प्रतीक है। हमारे प्रमुख त्यौहारों में हरेला अर्थात् कर्क संक्राति का विशेष महत्व है। हरेला कृषि पर्व है, बीजों का परीक्षण व फसल की उपासना का पर्व हरेला है, श्रावण मास की एक गते को हरेला मनाया जाता है। खेत की मिट्टी को निंगाल के पात्रों में रखकर पॉच या सात प्रकार के बीज बोकर नौ दिनों तक खेती की प्रक्रियाओं को पूरा किया जाता हैं। बुआई, सिंचाई, गुड़ाई और रक्षा के उपायों को पूरा करके एक प्रयोगशाला के रूप में हरेला बढ़ता हुआ सभी देखते हैं। अँधेरे में रखने का उद्देश्य एक तो प्रकाश की खोज में पौधों का बड़ा होना हैं, और दूसरा प्रकॉश की कमी में इनका पीला होकर सुन्दर दिखने हेतु पीलापन लाना है। धार्मिक गाथा के अनुसार मासांत के दिन भगवान शिव की बारात राजा हिमालय के यहाँ पहुँची और और कर्क संक्राति को विदा हुई। इसलिए शिव परिवार के डिकारे (प्रतिमॉए) बनाकर पूजे जाते है। हरेला काट कर, भगवान को समर्पित करना जहाँ एक ओर कृषि उत्पाद को भगवान को समर्पित करना है वही इसी हरेले की वृद्वि की, विकास की जाग्रति की शुभ कामनॉए एवं आशीष देते है कहते हैं–

जी रया, जागि रया, य दिन य मास भेटने रया,
लाख हरयाव, लाख बग्वाव, धरती जस चाकव,
अगाश कस उच्च, स्याव कसि बुद्वि,
स्यू कस तराण,दुब जस पड्ढुरि जये,
बुक जस फुल जये, जाठि टे कि दिशा
मैदान जये मौ जस मिठ,

बिगौत कस चिट..............त्यार खुट कान झन
जुड़ा पोथी

जीते रहना, जागृत रहना। यह दिन यह मास बार–बार जीवन में आए, लाख हरेले, लाख दिवाली मनाना, धरती सा विशाल–व्यापक, आकाश सा ऊँचा, सियार जैसी तीव्र बुद्वि हो, शेर जैसी ताकत हो, दूब की तरह अंकुरित होना, बंकिल या वनस्पति की तरह श्वेत सर अर्थात् दीघायु पाना, तेरी आयु इतनी हो कि लाठी के सहारे तक बूढ़ा होना, शहद सा मीठा, बिगौता सा सफेद होना, तेरे पॉव कभी कांटा तक ना चुभे अर्थात् छोटे से छोटा कष्ट तक तुझे ना हुए"। जीते रहने का आर्शीवाद तो सभी देते है लेकिन जागृत रहने का आर्शीवाद हमारी परम्पराओं का वैथिट्य है। पर्व की वैज्ञानिकता पर दृष्टि डाले तो हम पाएंगे, इन पंक्तियों में मिट्टी का उपजाऊपन, बीजों का अंकुरण क्षमता का परीक्षण करके हम, आगे की कृषि योजना बनाते हैं। भाद्र पद एक गते को "ओलगिया" अर्थात् सिंह संक्राति हमारा विशेष पर्व है। ओलगिया के दिन गाबे (अरबी, गडेरी) की पत्तियॉ ईश्वर को चढ़ाई जाती है, उड़द (मास) की दाल भिगाकर उसकी बेडू रोटियॉ बनाई जाती है (स्टॅफ रोटियॉ) और घी के साथ खायी जाती है, वर्षा काल में उगी सब्जियॉ पहले ईश्वर को समर्पित की जाती है,फिर खाई जाती है,यह भी एक कृषि पर्व है।

ग्रीष्म काल के बाद वर्षा और फिर शरद, शीत आती है। वो खाद्य जिन्हें ग्रीष्म ऋतु में नहीं खाया जाता, तब वह नुकसान करते है, ठण्डी ऋतुओं में उन्हें खाया जाना अनिवार्य होता है, इसलिए इस दिन सक अधिक कैलोरी वाले खाद्य प्रारम्भ किये जाते है। मान्यता है कि इस दिन घी का सेवन जरूरी है, घी का सेवन और सिर में घी चुपड़ा जाना आवश्यक होता है। कहते है कि इस दिन जो घी खाता लगाता नहीं है वह अगले जन्म में 'गनेल' घोघा बन जाता है। अगले जन्म ही क्यों, यदि पर्याप्त ऊर्जा वाले भोज्य हम नहीं लेंगे तो ऊर्जाहीन होकर घोंघे की तरह सुस्त पड़े रहेंगे। यही इसका वैज्ञानिक तर्क है। आश्विन मांस की

प्रथम गते को सूर्य सिंह राशि से कन्या राशि में प्रवेश करते है। इसलिये इसे कन्या संक्राति भी कहते है। इस त्यौहार के विषय में कई मत मतांतर है, कई लोक कथाएं है,लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से देखे तो यह भी कृषकों का ही पर्व है। सामान्य रूप से कन्या सक्रांद की बजाय इसे खतडुवा पर्व कहा जाता है।

लोक कथाओं से ज्यादा तर्क संगत लगता है कि वर्षा ऋतु में कई कीटाणु बढ़ जाते है। आश्विन प्रारम्भ होने के बाद मौसम शुष्क होने लगता है। वर्षा ऋतु में सीलन के कारण उत्पन्न कीटाणुओं से गायों को, पशुओं को कई रोग हो जाते है, इस दिन मशालें बनाकर उनमें पाती (आर्टीभीसिया), भांग (कैन्नेविस) आदि के तने, पत्तियाँ बाँधकर पूरे घर गोशॉला में मशाल जलाकर घुमायी जाती है, इस वैज्ञानिक आधार से तो यही लगता है।

मशाल की गर्मी वर्षा ऋतु में उपजे कीटाणुओं को समाप्त करते है और अन्त में एक बड़ी आग में उन मशालों को जलाया जाता है। कई दादी–नानी का कथन है कि इस दिन के बाद एक 'खताड़ा' रजाई– गद्दा ढ़कने के बराबर जाड़ा शुरू हो जाता है, इसलिए इस पर्व को खतडुवा कहते है। प्रारम्भ में संचार के साधन कम होने के कारण अपनी जीत की खुशी का प्रदर्शन करने हेतु बड़ी आग जलाते थे, मशाले जलाकर दूर तक प्रदर्शन करते थे, इसलिये कुछ कथांए प्रचलित हो गयी है, प्रख्यात साहित्यकार प्रो0 देबसिंह पोखरिया द्वारा लिखित आलेख में कहा गया है कि ऐसे नाम इतिहास में कहीं दर्ज नहीं है। हाँ यह पर्व गौ रक्षा के लिये मनाया जाता है, इसलिए शींयों की बीमारियों से सुरक्षा के रूप में यह तर्क सत्य के नजदीक लगता है कि 'गाय की जीत, खतडुवे की हार' इस नारे का अर्थ खोजने की आवश्यकता है कि गाय की रक्षा का नारा तो स्वाभाविक है, क्या खतडुवा किसी रोग व्याधि को तो इंगित नहीं करता? यह वास्तव में ऋतु पर्व है क्योंकि ऋतु फलों का उपयोग इसे इस तर्क के समीप लाता है। ककड़ी का प्रसाद वितरण ककड़ी के बीज को मस्तक पर लगाना..................आदि। चलते– चलते सूर्य का धनु राशि से मकर राशि में प्रवेश करना अर्थात् उत्तरायण की ओर मुड़ना मकर संक्राति है। मकर संक्राति सभी जगह मनाई जाती है, लेकिन उत्तराखण्ड़ में इसे उतरैणी या मकरैणी कहते है। उतरैणी मनाए जाने का विधि विधान हम सभी जानते है। लेकिन इसका वैज्ञानिक पक्ष हमारे पूर्वजों ने जरूर अपने मन मस्तिष्क में रखा होगा। दो ऋतुओं के संधिकाल में मन, बुद्वि स्थिर नहीं रह सकते इसलिए यह त्यौहार मन, बुद्वि और चेतना को परिष्कृत करने का त्यौहार है। यहॉ पर सभी स्थानीय परम्पराओं पर बात करना जरूरी होगा।

दक्षिण भारत में चावल और दूध की खीर बनाकर पोंगल मनाते है, महाराष्ट्र में तिल, गुड़, बिहार में तिलवा बनते है, पंजाब में तिल, गुड़, गजक खाते है लोहड़ी में, आसाम की भोगली बीहू में चावल पीठा, नारियल का लड्डू। पोंगल में जहॉ स्त्रियॉं गीले वस्त्र पहनकर खुले मैंदान में जलाई आग पर चावल दूध पकाती है। वहीं उत्तराखण्ड में पूर्व रात्रि में आग जलाकर, जागरण किया जाता है, 'जै जिया हो जै जिया' कहकर। उत्तराखण्ड में ऑटे, गुड़ के पकवान 'घुघुते' बनाए जाते है और अगले दिन कौओ को खिलाए जाते है। हालांकि इस पर कई लोक कथाएं जन श्रुतियॉं हम सुनते आए है लेकिन एक तर्क जो व्यक्तिगत रूप से मुझे अच्छा लगता है वह है कि अधिकांश पक्षी ऋतु परिवर्तन के साथ माइग्रेशन करते है, लेकिन कौआ अपना स्थान नहीं छोड़ता जाड़ो में भोजन की कमी होती है। हम इस त्यौहार के पकवान कौए को ही देते है। अपना स्थान प्रेमी, संदेश प्रेमी कौआ, उन्हें ले जाकर घास के लूटों में छिपा लेते है और जाड़ो में अपना पोषण करता है।

ऋतु फलों का ही उपयोग,इस त्यौहार में होता है। हॉं बच्चों द्वारा जब पकवान घुघते कौआ को दिये जाते है, उन्हें आमंत्रित किया जाता है। पुकारा जाता है तो यह पक्तियों भी बच्चों में कविन्त प्रतिभा जाग्रत करने हेतु सक्षम है काले कव्वा काले.......................................शीत

ऋतु के बाद बसंत और ग्रीष्म आती है संक्रमण काल है तो खिड़की का भोग, खिचड़ी का दान किया जाता है। खिचड़ी में शीत और ग्रीष्म दोनों ऋतुओं के लिए उपयुक्त खाद्य होते है। चावल–ठण्डी तासीर उदड़–गरम तासीर जो हमें संक्रमण में बचने और आने वाली ऋतु के लिए तैयार करते है। कुल मिलाकर यदि हम लोक पर्वो की बात करें तो उनको मनाए जाने के तरीके, तथा उनसे जुड़ी कथॉए भी कहीं न कहीं वैज्ञानिक तथ्यों व तर्कों से जुड़ी प्रतीत होती है।

उत्तराखण्ड का लोकपर्व– फूलदेई

शब्दों को कोई भी स्पर्श नहीं कर सकता,
पर शब्द सभी को स्पर्श कर जाते है।
विनोबा भावे

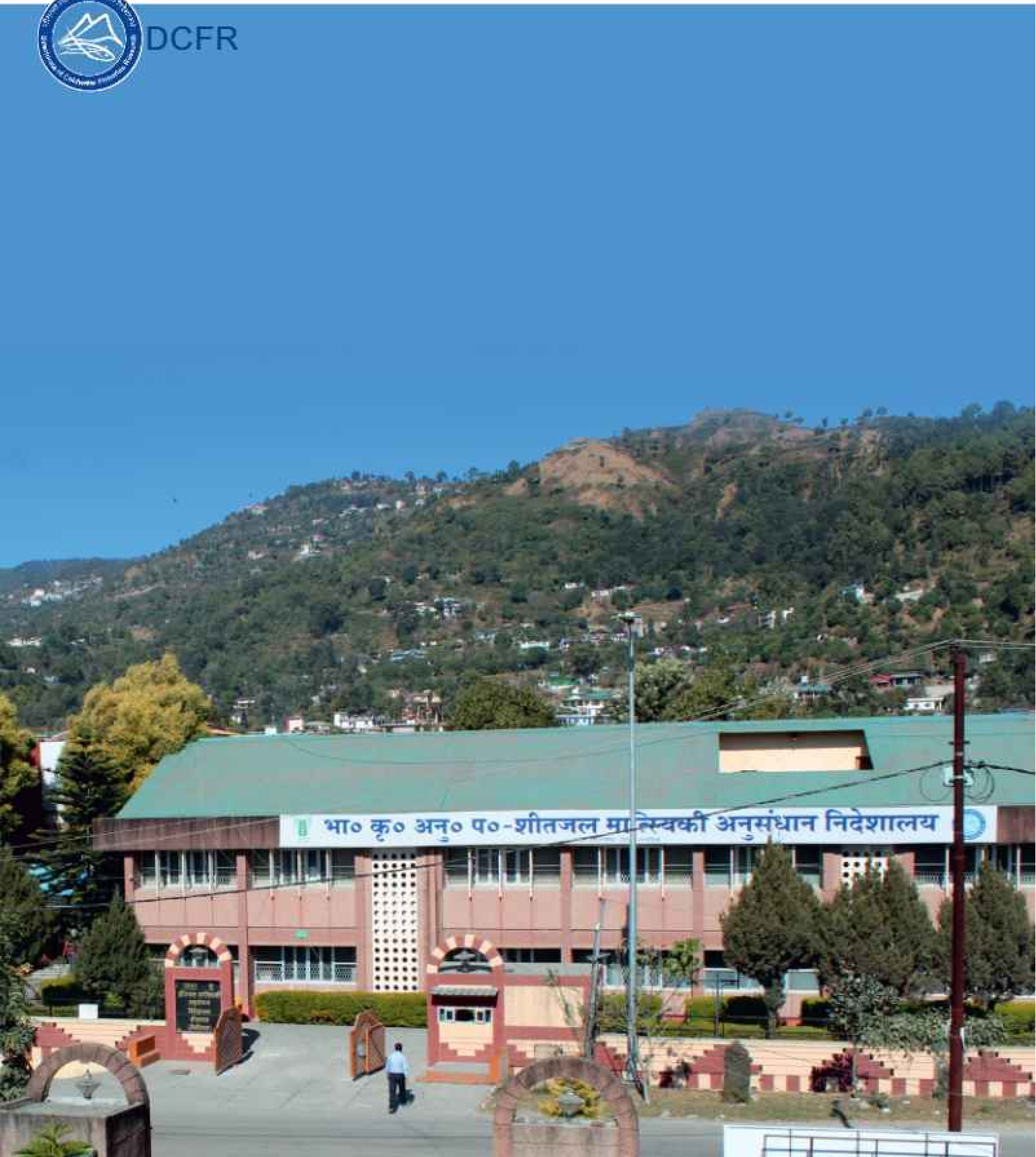
भा० कृ० अनु० प०-शीतजल मात्स्यकी अनुसंधान निदेशालय